महिलाओं से

[नारी-जीवन की समस्याओं का विवेचन]

लेखक—

महात्मा गाँधी

अनुवादक

श्री अनन्त प्रसाद विद्यार्थी एम० ए०

श्री गान्धी ग्रन्थागार

सी १४७ सेनपुरा

बनारस

सन् १९४७] [मूल्य ४)

दो शब्द

महात्मा गान्धी की ७४ वीं वर्षगाँठ के अवसर पर सेंट्रल जेल बनारस में एकत्र भिन्न-भिन्न जगहों के नज़रबन्द कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं ने सर्वसम्मत्ति से यह प्रस्ताव पास किया कि जिस तरह महात्मा जी के लेखों एवम् वक्तव्यों का संग्रह अंग्रेजी में "गान्धी सीरीज़" के नाम से प्रकाशित हुआ है, उसी तरह उनकी कृतियों का हिन्दी अनुवाद भी "गान्धी ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित कराया जाय। जिससे गान्धी-विचार के सम्बन्ध में फैली हुई गलत फ़हमियाँ दूर हों और सर्वसाधारण को गान्धी-साहित्य सुलभ मूल्य में एक ही जगह से मिलता रहे।

पुस्तक व्यवसायी होने के कारण प्रकाशन-कार्य मुझे सौंपा गया और मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। गान्धी ग्रन्थावली के आकार-प्रकार, संग्रह, प्रकाशन आदि की रूपरेखा जेल में ही तैयार कर ली गई। सिर्फ जेल से बाहर आने की प्रतीक्षा थी।

निर्धारित योजना के अनुसार गान्धी जी की सारी कृतियों का हिन्दी अनुवाद पन्द्रह खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। ग्रन्थावली का पहिला खण्ड विद्यार्थियों से प्रकाशित हो चुका है, और थोड़ी ही समय में इसकी कई हज़ार प्रतियाँ बिक चुकी हैं। दूसरा खण्ड महिलाओं से, आपके हाथ में है। शेष तेरह खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित हो रहें हैं।

बन्धुओं! जीवन में अध्ययन का स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। पर अध्ययन होना चाहिए उन पुस्तकों का, जो प्रकाशक के आर्थिक लाभ की दृष्टि से नहीं वरन् मानव जात के उत्थान मे सहायक होने की दृष्टि से निकाली जाती हैं। गान्धी भारत के युगकर्त्ता और महान विचारक हैं। उनकी कृतियाँ जीवन-युद्ध में अग्रसर होने के लिये प्रकाशस्तम्भ का काम देंगी, ऐसा मेरा विश्वास हैं।

—संचालक

महत्वपूर्ण सम्मति

श्री गान्धी ग्रन्थागार के संस्थापक श्री रमा शंकर लाल श्रीवास्तव विशारद महात्मा गान्धी जी के व्यक्त विचारों का संग्रह कर बड़ा ही उपयोगी और प्रशंसनीय काम कर रहे हैं। वर्तमान भारत के महात्मा जी युगकर्त्ता कहे जा सकते हैं और उनकी छाप राष्ट्र के सभी अङ्गों पर पड़ी है। श्री रमाशङ्कर लाल जी ने ऐसा प्रबन्ध किया है कि देश के एक एक समूह के प्रति गान्धी जी के क्या आदेश और उपदेश हैं, उसे पृथक-पृथक ग्रन्थों में संग्रह किया जाय। हमारे सामने ग्रन्थमाला का प्रथम खण्ड है, जिसमें विद्यार्थियों के प्रति महात्मा जी के सन्देशों का संग्रह है। अवश्य ही प्रकाशक ने बड़े परिश्रम से भिन्न-भिन्न स्थानों से खोज कर इन लेखों और वक्तव्यों का एकत्र किया है। हमें कोई सन्देह नहीं है कि इन सब अमूल्य शब्दों को दोहरा कर पढ़ने और मनन करने से हम सब का लाभ होगा। जैसी स्थिति इस समय देश की हो गई है और जैसी गलत-फ़हमियाँ फैलाई जा रही हैं, उनमें ऐसे ग्रन्थों का विशेष मूल्य और इनके अध्ययन की विशेष आवश्यकता है।

श्री प्रकाश बी० ए० एल एल बी० (कैंटब)
बार-ऐट-लॉ, एम० एल० ए० (सेंट्रल)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

विषय पृष्ठ

महिलाओं से

हिन्दू पत्नी

नीचे एक भाई के लम्बे पत्र का सारांश दे रहा हूँ जिसमें उन्होंने अपने विवाहिता बहन के दुख का वर्णन किया है:—

"थोड़े समय पहले मेरी बहन का विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ हो गया जिसके चारित्रय से हम अनजान थे। वह व्यक्ति बाद में इतना लम्पट और विषयी साबित हुआ है कि अनन्त व्यभिचार और विषय भोग करते हुए भी उसकी वासना तृप्त नहीं होती। मेरी अभागिनी बहन को विवाह के बाद शीघ्र ही पता चला कि उसके "स्वामी" दिन दिन निर्बल होते चले जा रहे हैं उसने उन्हें समझाया। लेकिन वह इसके इस औद्धत्य को सह न सके और उसे 'सबक सिखाने' की गरज से उसके सामने ही व्यभिचार करने लगे। वह उसे बेतों से मारते खड़ी रखते औंधी टांगतें और भूखों मरने को विवश करते हैं। एक बार अपने 'स्वामी' की व्यभिचार लीला का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए बहन एक खम्भे से बांध दी गई, जिससे वह भाग न सके। मेरी बहन का हृदय टूक टूक हो गया है। उसकी निराशा की हद नहीं। उसके सन्ताप को देखकर हमारा हृदय जल उठता है। लेकिन हम लाचार हैं कृपा कर कहिये हम या हमारी बहन क्या करें? हिन्दू धर्म की शर्म भरी अवस्था का एक चित्र है—उस हिन्दू धर्म में जिसमें स्त्रियों को न अधिकार प्राप्त है न

रियायतें ही, अगर आदमी निर्दय और हृदय हीन हैं। तो बेचारी स्त्री का कोई सहारा इस दुनियाँ में नहीं। आदमी अपने जीवन में चाहे जितना व्यभिचार करे, चाहे जितनी शादियाँ करे कोई उसकी ओर अंगुली उठाने वाला नहीं। लेकिन स्त्री जहाँ एक बार ब्याही गई उसे सर्वथा अपने स्वामी की दया का पात्र बनकर रहना पड़ता है। एक दो नहीं हजारों बहनें इस अन्याय का शिकार बनकर रात दिन अति स्वर से रोती कलपती रहती हैं। जब तक हिन्दू धर्म से ये और ऐसी ही अन्य बुराइयों का नाश नहीं होता, क्या उन्नति की आशा की जा सकती है ?"

पत्र लेखक एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं उन्होंने अपने सारे पत्र में अपने बहिन के दुःखों का रोमांचकारी चित्र खींचा है। इस सारांश में वे सब सारी बातें नहीं आ सकतीं। पत्र लेखक ने अपना पूरा नाम और पता भी भेजा है। उन्होंने हिन्दू धर्म की जो निन्दा की है। वह असीम दुःख की वेदना का परिणाम होने से क्षम्य भले हो, किन्तु उनका यह सर्वव्यापी कथन उदाहरण के आधार पर खड़ा किया गया है। अतः अतिरंजित है। क्योंकि आज भी लाखों हिन्दू ललनाएँ अपनी गृहस्थी की रानी बनकर पूर्ण सन्तोष और सुख की जिन्दगी बिताती हैं। वे अपने पतियों पर इतना प्रभुत्व प्रेम के कारण उन्हें प्राप्त होता है। पत्र लेखक ने निर्दयता का जो उदाहरण पेश किया है वह हिन्दू धर्म की बुराई का चिन्ह नहीं, बल्कि मनुष्य स्वभाव में निहित उस बुराई का नमूना है जो किसी एक ही जाति या धर्म के मनुष्यों में नहीं पाई जाती, बल्कि सब जातियों और सब धर्मों के मनुष्यों में मिलती है। क्रूर पति के खिलाफ़ तलाक दे देने की प्रथा से भी उन स्त्रियों की रक्षा नहीं हुई है। जो न तो अपना अधिकार जताना जानती हैं, न जताना चाहती हैं। अतएव सुधारकों को चाहिए कि वे और नहीं तो सुधारों के

खातिर ही अतिरंजन करने या अतिशयोक्ति से काम लेने से बाज आयें।

तथापि इस पत्र में जिस घटना का उल्लेख किया गया है वैसी घटना हिन्दू समाज के लिए सर्वथा असाधारण नहीं है। हिन्दू संस्कृति ने स्त्री को पति की अत्यधिक गुलाम बनाकर उसे पति के सर्वथा आधीन रखकर बड़ी भारी भूल की है। इसके कारण पति कभी कभी अपने अधिकार का दुरुप योग करते हैं और पशुवत व्यवहार करने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह के अतिचार का उपाय कानून का आश्रय लेने में नहीं, बल्कि विवाहिता स्त्रियों को सच्चे अर्थ में सुशिक्षित बनाने और पतियों के अमानुषी अत्याचार के विरुद्ध लोकमत जागृत करने में है। प्रस्तुत मामले में जिस उपाय से काम लेना चाहिए वह अत्यन्त सरल है। इस संकट ग्रस्त बहन के दुःख को देखकर रोने या अपने लाचारी का अनुभव करने के बजाय उसके भाई और दूसरे रिश्तेदारों को चाहिए कि वे उसकी रक्षा करें। उसे यह समझावें, तथा विश्वास दिलावें कि एक पापी दुराचारी पति को खुशामद करना या उसकी संगति की आशा रखना उसका कर्तव्य नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है उसका पति उसकी जरा भी चिन्ता नहीं रखता-तनिक भी पर्वा नहीं करता। अतएव कानूनी बंधन को तोड़े बिना ही वह अपने पति से अलग रह सकती है और अपने आप यह अनुभव कर सकती है कि उसका ब्याह कभी हुआ ही नहीं अवश्य ही एक हिन्दू पत्नी के लिए, जो तलाक नहीं दे सकती इस सम्बन्ध में कानून की रू से भी दो मार्ग खुले हैं, एक तो मारपीट करने के कारण पति को सजा दिलाने का और दूसरा उससे जीविका के लिए आजीवन सहायता पाने का। लेकिन अनुभव से मुझे पता चला है कि अगर सर्वदा नहीं तो बहुधा तो अवश्य ही यह उपाय निरर्थक से भी बुरा सिद्ध हुआ है। इसके

कारण किसी की सती स्त्री को कभी सुख नहीं मिला, उल्टे पति का सुधार असम्भव नहीं तो कष्ट साध्य जरूर बन गया है। समाज को इस रास्ते कदापि न जाना चाहिए। पत्नी को तो किसी हालत में भी नहीं। प्रस्तुत मामले में तो लड़की के माता पिता उसको निबाह लेने में सब तरह समर्थ हैं। लेकिन जिन सताई हुई स्त्रियों को आश्रय प्राप्त न हो, उन्हें भी आश्रय देनेवाली अनेक संस्थाएँ देश में दिन दिन बढ़ रही हैं। एक और प्रश्न रह जाता है। वे युवती स्त्रियाँ जो अपने क्रूर पति का साथ छोड़कर अलग होती हैं या जिन्हें पति स्वयं घर से निकाल देते हैं। जो तलाक से मिलने वाली सुविधा नहीं प्राप्त कर सकतीं, अपनी विषयेच्छा को कैसे तृप्त करेंगी। मेरे विचार में यह कोई इतना गम्भीर प्रश्न नहीं है। क्योंकि जिस समाज ने युगों से तलाक की प्रथा को त्याज्य मान रखा है। उस समाज की स्त्रियाँ एक बार वैवाहिक जीवन का कटु अनुभव पा लेने पर दुबारा विवाह करना ही नहीं चाहतीं। जब किसी समाज का लोकमत इस तरह की सुविधा प्राप्त करना चाहता है तो मेरे विचार में वह उसे निःसन्देह मिल भी जाती है। पत्र लेखक के पत्र से जहाँ तक मैं समझ सका हूँ उनकी यह शिकायत तो नहीं है कि पत्नी अपनी विषयेच्छा तृप्त नहीं कर सकतीं। शिकायत तो पति की भयंकर और बेलगाम व्यभिचार की है जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ। मनोवृत्ति को पलट देना ही इसका उपाय है। हमारी अनेक और-और बुराइयों के समान ही बेवसी की भावना भी एक काल्पनिक बुराई है दूषित कल्पना के कारण शोक और दुःख का जो साम्राज्य समाज में फैला हुआ है वह थोड़े से मौलिक विचार और नये दृष्टि कोण के पाते ही नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। ऐसे मामलों में मित्रों और रिश्तेदारों को चाहिए कि वे अत्याचार के शिकार को शिकारी के पंजे से छुड़ा कर ही सन्तोष न कर बैठो। बल्कि ऐसी

स्त्री को समझा कर उसे सार्वजनिक सेवा के योग्य बनाने का प्रयत्न करें। इन स्त्रियों के लिए इस तरह की शिक्षा पति के शंका स्पद सहवास से कहीं अधिक सुखद और लाभप्रद होगी।

एक महिला मित्र के प्रश्न

मेरी एक स्त्री मित्र ने जिन्हें मेरी बुद्धि और सत्यता पर कुछ विश्वास है, मुझसे पेचीले प्रश्न किये हैं। मैं इन प्रश्नों को इस भय से टाल जाना चाहता था कि उनके उत्तर से ऐसे पति क्रुद्ध होकर विवाद के लिये न उद्यत हो जाँय जो अपने अधिकारों के लिये सशंकित रहा करते हैं। पर ऐसे सशंकित पति मुझे क्षमा करेंगे क्योंकि वे जानते हैं कि मुझमें और मेरी स्त्री में कभी कभी खटपट होते हुये भी मैंने स्वयं विवाहित जीवन के चालीस वर्ष सुख से व्यतीत किया है।

पहला प्रश्न

पहिला प्रश्न उपयुक्त और समयानुकूल है (वास्तविक प्रश्न मराठी भाषा में है और मैंने उसका स्वतन्त्र रूप से अनुवाद कर दिया है)।

"क्या किसी स्त्री अथवा पुरुष को केवल रामनाम कहने से ही और बिना राष्ट्र सेवा किये ही आत्मज्ञान हो सकता है। मैं यह प्रश्न इसलिये करती हूँ कि कुछ बहिनों की धारणा है कि उन्हें घरबार के काम करने और कभी कभी ग़रीबों की सहायता करने के अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।"

इस प्रश्न ने केवल स्त्रियों को ही नहीं बल्कि बहुत से पुरुषों को भी उलझन में डाल रक्खा है और मेरे लिये तो भार स्वरूप हो ही

गया है। मेरा दर्शन-शास्त्र के उस बाद के अनुयायियों से भी परिचय है जो पूर्ण निष्क्रियता और समस्त प्रयत्नों की निष्फलता की शिक्षा देता है मैं इस मत से उस समय तक सहमत नहीं हो सकता जब तक कि मैं स्वयं इसका विश्लेषण न कर सकूँ। मेरे विचार से उन्नति करने के लिये प्रयत्नशील होना आवश्यक है और यह प्रयत्न यह सोच कर ही न किया जाय कि उसका परिणाम लाभदायक ही होगा। 'रामनाम' अथवा इसी प्रकार का कोई नाम आवश्यक है, जपने के लिये नहीं बल्कि आत्मशुद्धि के लिये जिससे आपके प्रयत्न में सहायता मिले और आप यह अनुभव करें कि आपका कोई पथ प्रदर्शक है अतः 'राम-नाम' अथवा कोई अन्य नाम 'प्रयत्न' का स्थानापन्न कदापि नहीं हो सकता। वह तो आप को ठीक मार्ग बताने में तथा आपके साहस को बढ़ाने में सहायक हो सकता है। यदि सारा प्रयत्न निष्प्रयोजन ही हैं तो कुटुम्ब की चिन्ता और कभी कभी ग़रीबों की सहायता ही से क्या लाभ? पर इसी प्रयत्न में ही राष्ट्र-सेवा के कीटाणु विद्यमान हैं और मेरे विचार से राष्ट्र-सेवा का अर्थ है—मानव-सेवा—कौटुम्बिक-सेबा की ओर अधिक ध्यान न देना भी राष्ट्र-सेवा है। निःस्वार्थ कुटुम्ब सेबा करने से मनुष्य राष्ट्र-सेवा की ओर प्रेरित होता है। 'राम-नाम' मनुष्य को विरक्त तथा दृढ़ बनाता है और कठिन परिस्थितियों में चित्त को डांवा डोल नहीं होने देता। मेरे विचार से सबसे अधिक ग़रीब की सेवा तथा अपने और उसके बीच कोई भेद न मान कर मनुष्य को आत्म-ज्ञान हो सकता है, अथवा नहीं।

दूसरा प्रश्न

"हिन्दू धर्म के अनुसार सबसे महान आदर्श यह है कि स्त्री पूर्ण रूप से पति भक्त और पति से संबद्ध हो चाहे पति प्रेम का अवतार

हो अथवा पिशाच ही क्यों न हो। यदि पत्नी के सम्बन्ध में यही चरित्र उत्तम माना जाय तो क्या पति की ओर से विरोध किये जाने पर भी पत्नी को राष्ट्र सेवा कार्य करना चाहिये? अथवा उतना ही करना चाहिए जितना करने के लिए पति उसे आज्ञा दे?"

पति के सम्बन्ध में मैं राम को और पत्नी के सम्बन्ध में सीता को अपना आदर्श मानता हूँ। परन्तु सीताराम की दासी नहीं थी अथवा यूँ कहिए कि दोनों एक दूसरे के दास तथा दासी थे। राम ने सदैव सीता के विचारों का आदर किया। यदि प्रेम सच्चा है तो किया गया प्रश्न उठता ही नहीं और जहाँ सच्चा प्रेम नहीं है वहाँ पति-पत्नी का कोई बन्धन ही नहीं है। पर आजकल का हिन्दू कुटुम्ब एक पहेली के समान है। पति तथा पत्नी का जब विवाह होता है, दोनों एक दूसरे के सम्बन्ध मे कुछ नहीं जानते। प्रथा के द्वारा सुरक्षित धार्मिक स्वीकृति और विवाहित जीवन के भली प्रकार चलने के कारण अधिकांश हिन्दू घरों मे शान्तिमय समय व्यतीत होता है। परन्तु यदि स्त्री अथवा पुरुष के विचार असाधारण हुये तो आपस में खटपट होने की संभावना है। पति के सम्बन्ध में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जाता। कर्तव्य के विचार से वह यह आवश्यक नहीं समझता कि अपनी पत्नी की इच्छाओं का भी उसे ध्यान रखना चाहिये, वह पत्नी को जिसे अपने पति के विचारों से ही संतुष्ट रहना पड़ता है प्रायः अपनी इच्छाओं को दबाना पड़ता है। मेरे विचार से यह समस्या हल की जा सकती है। मीराबाई ने हमें इसका हल बताया है। पत्नी को अपने विचारों के अनुसार चलने का पूर्ण अधिकार है और मृदुल बनकर तथा निर्भय होकर किसी भी परिणाम के लिये उद्यत रहना चाहिये जबकि उसे विश्वास हो कि उसका निश्चय न्याययुक्त है और वह एक उच्च अभिप्राय के लिये पति के सम्मुख अड़ गई है।

तीसरा प्रश्न

यदि पति माँसभक्षी है और पत्नी मांस खाना पाप समझती है तो क्या पत्नी को अपने ही विचारों के आधार पर चलना चाहिये ?

क्या उसे प्रेमयुक्त उपायों से पति द्वारा मांस-भक्षण अथवा इसी प्रकार के उसके अन्य कार्य छुटाना चाहिये ? अथवा क्या वह पति के लिये मांस पकाने के लिये बाध्य है या इससे भी पतित कार्य अर्थात् यदि पति उसे मांस खाने के लिये कहे तो क्या वह मांस खाने के लिये बाध्य है ? यदि आप यह कहते हैं कि पत्नी को अपने विचारानुकूल चलना चाहिये तो एक सम्मिलित कुटुम्ब इस दशा में कैसे चल सकता है जबकि एक तो दूसरे को विवश करता है और दूसरा विरोध करता है ?

इस प्रश्न का आंशिक उत्तर दूसरे प्रश्नोत्तर में दिया जा चुका है। पत्नी अपने पति द्वारा किये अपराधों में सम्मिलित होने के लिये बाध्य नहीं है। यदि वह किसी कार्य को अनुचित समझती ही है तो उसे केवल उचित कार्य ही करना चाहिये। पर इस विचार से कि पत्नी का कार्य घर का प्रबन्ध करना है और भोजन बनाना है और पति का कर्तव्य परिवार के लिये धनोपार्जन है, और पति तथा पत्नी दोनों यदि पहिले से ही मांस खाते रहे हों तो पत्नी परिवार के लिये माँस बनाने के लिये बाध्य है। दूसरी ओर यदि किसी शाक-भक्षी परिवार में पति मांसभक्षी हो जाता है और पत्नी को मांस पकाने के लिये विवश करना चाहता है तो वह किसी प्रकार भी इस कार्य के लिये बाध्य नहीं है यदि वह उसे करना बुरा समझती है। परिवार में शान्ति का वास अत्यावश्यक है। पर इसका अन्त केवल यहीं नहीं है। मेरे विचार से विवाहित जीवन में उतना ही व्यवस्थित होना तथा नियमानुसार चलना चाहिये जितना कि अन्य जीवन में।

जीवन कर्तव्य, आचरण परीक्षा है। विवाहित जीवन का लक्ष्य इस जन्म तथा पुनर्जन्म में परस्पर भलाई करना है। मानव-सेवा भी इस जीवन का ध्येय है। विवाहित जीवन में यदि एक नियमों का पालन तोड़ देता है तो दूसरे को यह अधिकार प्राप्त है कि वह न्याययुक्त बन्धन को तोड़ दे। बन्धन तोड़ने का कार्य मानसिक है, शारीरिक नहीं। तलाक़ का निषेध है। पति अथवा पत्नी केवल उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिये ही अलग होते हैं जिसके लिये उनका बन्धन हुआ था। हिन्दू धर्म के अनुसार दोनों का दर्जा बराबर है। पर इसमें संदेह नहीं कि चलन कुछ दूसरा ही है और पता नहीं कब से। इसमें बहुत से दोष आ गये हैं। मुझे कदाचित् यह भी नहीं मालूम कि हिन्दू धर्मानुसार आत्म-ज्ञान के लिये स्त्री अथवा पुरुष जो चाहे करने के लिये स्वतन्त्र है। स्त्री अथवा पुरुष का जन्म केवल आत्म-ज्ञान के निमित्त ही हुआ है।

स्मृति में स्त्रियों का स्थान

एक सज्जन ने वेजवादा से प्रकाशित होने वाले इंडियन स्वराज्य का एक अङ्क मेरे पास भेजा है। इसमें स्मृतियों में स्त्रियों का स्थिति पर एक लेख है। इस लेख में बिना कुछ परिवर्तन किये निम्न उद्धरण दे रहा हूँ :—

पत्नी को चाहिए कि वह पति को सदा ईश्वर के रूप में माने, चाहे वह चरित्रहीन, कामी और पतित ही हो। (मनु, ५—१५४)

स्त्रियों को अपने पतियों के कहने के अनुसार चलना चाहिए। यह उनका सबसे बड़ा कर्तव्य है। (याज्ञवल्क्य १—१८)

स्त्री के लिए कोई अलग यज्ञ अथवा उपवास नहीं है। उसे अपने पति की सेवा से स्वर्ग लोक में ऊँचा स्थान मिलता है (मनु ५—१४५)

जो स्त्री अपने पति के जीवित रहते उपवास और यज्ञ करती है, वह ऐसा करके अपने पति का जीवन कम करती है, वह नरक जाती है, जो स्त्री पवित्र जल की कामना करती है उसे चाहिए कि वह अपने पति के चरण अथवा उसका सारा शरीर जल से धोवे और उस जल को पीवे। ऐसी स्त्री को सबसे ऊँचा स्थान मिलता है। (ऐतरेय १३६—१३७)

स्त्री के लिए अपने पति से बढ़कर दूसरा ऊँचा लोक नहीं है। जो स्त्री अपने पति को खुश नहीं रखती वह मृत्यु के बाद पति लोक को नहीं जा सकती। इसलिए उसे अपने पति को कभी अप्रसन्न न करना चाहिए। (वशिष्ट २१—१४)

जो स्त्री अपने पिता के परिवार पर गर्व करती है और अपने पति की आज्ञा का उलंघन करती है, राजा को चाहिए कि उसे बहुत से लोगों के सामने कुत्ते से नुचवाये (मनु ८—३७१)

जो स्त्री अपने पति की आज्ञा का उलंघन करती है। उसके हाथ का खाना किसी को नहीं खाना चाहिए। ऐसी स्त्री को इन्द्रिय लोलुप मानना चाहिए (अङ्गिरस, ६६)

यदि पति दुराचारी हो अथवा मद्यप हो अथवा शारीरिक व्याधि से पीड़ित हो और पत्नी उसकी आज्ञाओं का उलंघन करे तो उसे तीन महीने तक अपने बहुमूल्य कपड़ों और गहनों से वंचित रखना चाहिए। (मनु १०—७८)

यह सोचकर दुःख होता है कि स्मृतियों में ऐसे श्लोक हैं, जिन पर उन पुरुषों की श्रद्धा नहीं हो सकती जो अपनी ही भांति स्त्री की स्वाधीनता की कामना करते हैं और उसे समस्त जाति की माता

मानते हैं। दुःख यह सोचकर और बढ़ जाता है कि सनातनियों की ओर से प्रकाशित होने वाले एक पत्र में ये श्लोक इस प्रकार छपे हैं जैसे वे धर्म के अंग हों। स्वभावतः स्मृतियों में ऐसे श्लोक हैं जो स्त्री को उसका उचित स्थान प्रदान करते हैं। और उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं प्रश्न उठता है कि उन स्मृतियों का क्या किया जाय, जिनमें ऐसे श्लोक हैं जो उसी में दिये हुए अन्य श्लोकों के विपरीत और नैतिक भावना के विरुद्ध हैं। मैं इन पृष्टों में अनेक बार लिख चुका हूँ कि धर्म ग्रन्थों के नाम पर जो कुछ छपता है, उसमें सभी को ईश्वर की वाणी अथवा देव वाणी के रूप में नहीं लेना चाहिए। लेकिन हर कोई यह तय नहीं कर सकता कि कौन सी बात अच्छी और प्रामाणिक है। तथा कौन सी बात बुरी है। इसलिए एक ऐसी अधिकारी संस्था की आवश्यकता है, जो धर्म ग्रन्थों के नाम पर जो सब छपा है उसका संशोधन करे, ऐसे श्लोकों को छांट दें जिनका नैतिक मूल्य नहीं है। और जो धर्म और नीति के विरुद्ध हैं। तथा ऐसा संस्करण हिन्दुओं के पथ प्रदर्शन के लिए उपस्थित करे। यह विचार इस पवित्र कार्य के मार्ग में बाधक न होना चाहिए कि सर्व साधारण हिन्दू और धार्मिक नेता माने जाने वाले व्यक्ति ऐसी संस्था की बात प्रामाणिक नहीं मानेंगे। जो काम सचाई से और सेवा भाव से किया जायगा वह समय बीतने पर अपना प्रभाव डालेगा और निश्चय ही उन लोगों की सहायता करेगा जो इस प्रकार की सहायता बुरी तरह चाहते हैं।

स्त्री और वर्ण

"वर्ण का तात्पर्य अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों का समूह नहीं है, यह केवल कर्तव्य और धर्म को निर्धारित करता है। वह स्त्री जो अपने कर्तव्य को जानती है और उसका पालन करती है, अपने

उच्च पद का अनुभव करती है। वह घर की मालिक है, रानी है, दासी नहीं।"

एक माननीय मित्र लिखते हैं

"वर्ण के सम्बन्ध में अभी हाल में जो कुछ आपने लिखा है उससे पता चलता है कि वर्ण के सिद्धान्त पर जो आपने थोड़ा प्रकाश डाला है वह केवल पुरुषों के लिये ही लागू होता है। तो फिर स्त्री के लिये क्या है? किस बात से स्त्री का वर्ण निश्चित किया जायगा? कदाचित आप यह कहेंगे कि विवाह के पूर्व स्त्री का वही वर्ण होगा जो उसके पिता का होगा और विवाह के पश्चात उसका वर्ण पति के समान होगा। तो क्या इसका यह तात्पर्य है कि आप मनु की कुप्रसिद्ध कहावत का समर्थन करते हैं कि स्त्री अपने जीवन में किसी भी समय स्वतंत्र नहीं हो सकती, अर्थात् बिवाह के पूर्व वह माता पिता के रक्षण में, विवाहोपरान्त पति के रक्षण में और विधवा होने पर अपने बच्चों के रक्षण में रहे?"

"जो कुछ भी हो पर यह सत्य है कि यह युग स्त्री की सम्मति लेने का है और निस्संदेह उसने स्वतंत्र धंधे की खोज के लिये पुरुष के साथ बराबरी का पद ग्रहण कर लिया है। आज कल तो यह प्रायः देखा गया है कि स्त्री किसी स्कूल की अध्यापिका है और उसका पति लेन देन का रोज़गार करता है। इन परिस्थितियों से स्त्री का वर्ण क्या होगा? वर्ण मिश्र विभाजन के अनुसार पुरुष अपने माता-पिता के धंधे को ही अपनायेगा अतः उसका वर्ण माता-पिता के समान होगा और इसी प्रकार स्त्री भी अपने माता पिता के वर्ण को ही अपनायेगी, और उनसे आशा भी यही की जाती है कि विवाहोपरान्त भी वे अपने अपने वर्णों अथवा धंधों को नहीं छोड़ेंगे। उनके बच्चों का वर्ण क्या होगा? अथवा वर्ण का चुनाव बच्चे स्वयं स्वतंत्र रूप से करेंगे! यदि ऐसा ही हो तो माता पिता के वर्ण

को अपनाने के सिद्धांत था क्या होगा जिसका वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आप दावा करते हैं।"

आज कल की परिस्थितियों में यह प्रश्न करना मेरे विचार से व्यर्थ है। जैसा कि मैंने अपने लेख में बताया है आज कल वर्णों के सम्बन्ध में गड़बड़ी होने के कारण वास्तव में वर्ण हैं ही नहीं। वर्ण का सिद्धान्त चलता ही नहीं। आजकल का हिन्दू समाज अव्यवस्थित है और चारों वर्ण केवल नाम के ही है। यदि हम वर्ण के अनुसार विचार करें तो आजकल हर एक स्त्री अथवा पुरुष के लिये केवल ही वर्ण है, अर्थात हम एक शूद्र हैं।

वर्ण धर्म के अंश पर जैसा कि मेरा विचार है, एक लड़की का वर्ण उसी प्रकार अपने पिता के समान होगा जिस प्रकार कि उसके भाई का। विभिन्न वर्णों के बीच विवाह बहुत कम होते हैं। अतः विवाहोपरान्त की लड़की के वर्ण में कोई अन्तर नहीं होता। परन्तु यदि पति का वर्ण पत्नी के वर्ण से भिन्न हो तो विवाहोपरान्त पत्नी का वर्ण पति के समान हो जायगा और उसे पिता का वर्ण छोड़ना होगा। इस प्रकार वर्ण से बदलने से न तो किसी पर कलंक ही आता है और न तो किसी की योग्यता पर ही संदेह होता है क्योंकि इस नव जीवन के युग में वर्ण के आधार पर चारों वर्ण सामाजिक विचार से बराबर हैं।

मैं इसे नियम के रूप में नहीं मानता कि पत्नी अपने पति से स्वतंत्र होकर अपना कोई धंधा अपनायेगी। उसके लिये यही काफी है कि वह बच्चों की देख भाल करे और घर संभाले। सुव्यवस्थित समाज में परिवार चलाने का अतिरिक्त भार उस पर नहीं होना चाहिये। पुरुष का धर्म है कि वह गृहस्थी चलाये और स्त्री घर का प्रबन्ध करे और इस प्रकार दोनों एक एक दूसरे के कार्य में योग तथा सहायता देते रहेंगे।

इस प्रकार स्त्री के अधिकारों का न तो हनन होता है और न उसकी स्वतंत्रता ही छीनी जाती है। मैं मनु के इस कथन से सहमत नहीं हूँ कि 'स्त्री स्वतंत्र नहीं हो सकती।' इससे यही पता चलता है कि जिस समय उन्होंने यह नियम बनाया था उस समय स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन रक्खी जाती थीं। हमारे साहित्य में पत्नी को अर्द्धांग' और 'सहधर्मिणी के नाम से सम्बोधित किया गया है। इसलिये यदि पति पत्नी को देवी कह कर संम्बोधन' करे तो कोई हँसी की बात नहीं है। परन्तु अभाग्यवश एक समय ऐसा आया जब कि स्त्री के बहुत से अधिकार छीन लिये गये और उसका पद नीचा कर दिया गया। परन्तु उसका वर्ण ज्यों का त्यों रहा, क्योंकि वर्ण का तात्पर्य अधिकारों अथवा बिशेषाधिकारों का समूह नहीं है यह केवल कर्तव्य और धर्म को निर्धारित करता है। हमें कोई कर्तव्य, विहीन नहीं कर सकता जब तक हम स्वयं ऐसा न चाहें। वह स्त्री जो अपने कर्तव्य को जानती है। और उसका पालन करती है वही अपने उच्च पद का अनुभव करती है वह घर की मालिक है, रानी है, दासी नहीं।

अब मुझे इस सम्बन्ध में कदाचित् अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मेरे कथनानुसार यदि समाज में स्त्री का उपरोक्त कर्तव्य माननीय है तो उसके बच्चों के वर्ण की समस्या का अंत हो जाता है और उस दशा में पति अथवा पत्नी के वर्ण में कोई भेद नहीं रह जाता।

माहिलाओं की स्थिति

एक मित्र जिन्होंने सफलता पूर्वक अभी तक विवाह की इच्छा का विरोध किया है लिखते हैं।

"कल मलाबारी हॉल बम्बई में माहिलाओं की एक समिति की बैठक हुई जिसमें कई सुन्दर व्याख्यान दिये गए और कई प्रस्ताव पास किये गए। शाम के लिए शारदा-बिल का विषय निर्धारित था। हम लोग बहुत प्रसन्न हैं कि आप लड़कियों के लिए १८ साल की अवस्था विवाह के लिए उपयुक्त समझते हैं। दूसरा महत्वपूर्ण विषय, जिस पर बाद विवाद हुए उत्तराधिकार के नियम थे। यदि आप 'नव जीवन' 'या' यंग इण्डिया' में इस विषय पर एक जोर दार लेख लिखते तो बड़ी ही सहायता मिलती। स्त्रियों को जन्म जात अधिकारों की प्राप्ति के लिए भीख मांगना या लड़ना क्यों पड़े ? यह एक अजीब करुण और हास्यास्पद बात है कि स्त्रियों से ही उत्पन्न पुरुष उनके विषय में ऊँची ऊँची बातें करे और सज्जनता-पूर्वक उनके लिए उचित भाग देने का वादा करे। यह देने की बात कितनी निरर्थक है ? किसी से छीनी गई वस्तु को वापस देने में कौन सी वीरता और सज्जनता है ? किस विषय में स्त्रियाँ पुरुषों से कम है ? उनका उत्तराधिकार पुरुषों से कम क्यों हो ? दोनों का अधिकार समान क्यों न रहे ? दो दिन पहले हम कुछ लोगों के साथ इसी बात पर बाद विवाद कर रहे थे। एक महिला ने कहा, हम लोग इस कानून में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहती और पूर्ण सन्तुष्ट हैं। यह बिलकुल उचित है कि लड़का जिसके पीछे पारिवारिक रीतियाँ और नाम चलते हैं उसे अधिक भाग मिलना चाहिए। वह परिवार का स्तम्भ है।" हम लोगों ने पूछा और आप का लड़कियों के विषय में क्या विचार है, बीच ही में एक युवक बोल पड़े ओह। दूसर उनकी देख-भाल करेगा" दूसरा। सदा दूसरा। यह दूसरा व्यक्ति ही सारे झगड़ों की जड़ है। दूसरे की आवश्कता ही क्यों हो ? ऐसा क्यों मान लिया जाय कि कोई दूसरा रहेगा ? लोग ऐसे बातें करते हैं जैसे लड़कियाँ कोई गट्ठर हों जिनका भार किसी दूसरे पुरुष के मिलने

तक उनके पिता का परिवार उठाए और जब वह मिल जाय, तो उसे छुटकारे की साँस के साथ सौंप दिया जाय। यदि आप लड़की होते, तो क्या सचमुच आपको इस बात पर क्रोध न आता।

पुरुष ने स्त्रियों के प्रति जो अत्याचार किए हैं उन पर क्रोध आने के लिए मुझे लड़की होने की आवश्यकता नहीं। मैं 'उत्तराधिकार' को स्त्रियों के लिए बहुत कम मानता हूँ। उत्तराधिकार से कहीं बड़ी बुराई का वर्णन शारदा बिल में है। लेकिन मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई सुलह नहीं करना चाहता। कानूनन उन्हें पुरुषों की अपेक्षा किसी प्रकार शक्ति हीन नहीं रखना चाहिए। मैं तो लड़कों और लड़कियों के साथ पूर्ण-समानता का व्यवहार करना चाहता हूँ। जैसे जैसे स्त्रियों को अपनी शक्ति का ज्ञान होता जायगा, (जैसा कि उनकी शिक्षा के अनुपात से अवश्य होगा), वे स्वयं जिस असमानता की दृष्टि से देखी जाती हैं, उससे घृणा करने लगेंगी।

किन्तु कानून की असमानता हटाना अपर्याप्त होगी। इस बुराई की जड़ जितना बहुत लोग समझते हैं, उससे कहीं गहरी है वह मनुष्य के हृदय में शक्ति और समृद्धि के प्रति जो लालच की भावना है, उसमें तथा और नीचे पारस्परिक-वासना में हैं। मनुष्य ने सदा से शक्ति चाही है और सम्पत्ति पर उसका अधिकार होने से उसे शक्ति मिलती है। पुरुष अपनी मृत्यु के उपरान्त प्रसिद्ध भी चाहता है जो शक्ति पर निर्भर है। यदि सम्पत्ति उत्तरोत्तर टुकड़ों में बँटती जाय, (जैसा पुरुष और स्त्री के साथ समानता का व्यवहार करने पर अवश्य ही होगा) तो ऐसा नहीं हो सकता। इसीलिए सम्पति का उत्तराधिकार अधिकांश रूप से सबसे बड़े लड़के को मिलता है। बहुधा स्त्रियाँ विवाहित हैं और कानून के विरुद्ध होने पर भी, वे अपने पति की शक्ति और सुविधाओं में भाग लेती हैं। वे अपने

पति की पत्नी होने में ही गर्व मानती हैं। और यद्यपि वे असमानता के व्यवहार के विरुद्ध जहाँ कहीं बाद विवाद होता है, आवाज उठाती हैं, जब कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न आयेगा, तो वे अपनी इन वर्तमान सुविधाओं को छोड़ने के लिए प्रस्तुत न होंगी।

अतः मैं चाहूँगा कि भारतीय शिक्षित महिलाएँ अनुचित कानूनों के विरोध के साथ साथ इस बुराई की जड़ को ही नष्ट करने की चेष्टा करें। स्त्री त्याग और सहन शीलता का अवतार है और सामाजिक जीवन में उसके आगमन का परिणाम समान का परिशोधन, और सम्पत्ति संग्रह तथा असंयत आकांक्षाओं का दमन होना चाहिए उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि लाखों पुरुष ऐसे हैं जिनके पास आने वाली पीढ़ी को देने के लिए कोई सम्पत्ति नहीं। उनसे हमें यह सीखना चाहिए पैत्रिक सम्पत्ति का न होना और अच्छा है। चरित्र और शिक्षा के लिए जो सुविधाएँ माता पिता सन्तान को देते हैं, वही ऐसी सम्पत्ति है जो वे अपनी सन्तानों के बीच समान रूप से बाँट सकते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे बालक बलिकाओं को स्वावलम्बी बनाएँ जिससे वे अपने पसीने के बल से जीविका उपार्जन कर सकें। इस प्रकार छोटे बच्चों के पालन पोषण का भार स्वाभाविक रूप से बड़े बच्चों पर आएगा। अगर धनी लोग अपने बच्चों को खानदानी जायदाद के गुलाम बनाने की आकांक्षा की जगह पर ऐसी शिक्षा दें कि वे स्वतंत्र हो सकें तो उनके बच्चों के स्वभाव से आडम्बर प्रियता जाती रहेगी। खानदान की जायदाद पर निर्भर रहने से उद्योग की प्रवृत्ति मर जाती है और ऐश्वर्य और आलस्य में पलने वाली कामनायें बल पाती हैं। जाग्रत महिलाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे युगों पुरानी इस प्रथा का पता लगा कर नष्ट करने का प्रयत्न करें।

पारस्परिक वासना भी स्त्रियों के विकास को रोकने वाले कारणों में से रही है, इस विषय में उदाहरण की आवश्यकता नहीं। अज्ञात रूप से स्त्री ने पुरुष को कई प्रकार से अप्रत्यक्ष सूक्ष्म तरीकों से घेर रखा है और पुरुष ने उसी प्रकार अज्ञात रूप से स्त्री पर अधिकार जमाने को व्यर्थ चेष्टाएँ की हैं और इसके परिणाम स्वरूप दोनों के विकास में बाधा पड़ी है। इस प्रकार यह एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसके सुलझाने के लिए भारतमाता की शिक्षित पुत्रियो की आवश्यकता है। उन्हें पाश्चात्य ढङ्ग के अनुकरण की आवश्यकता नहीं, वह वहीं के लिए उचित है उन्हें भारतीय वातावरण और भारतीय मेधावियों के अनुरूप ढङ्ग का उपयोग करना चाहिए। इनके हाथ बली, नियंत्रणशील, शोधनकारी और दृढ़ होने चाहिए जिससे वे हमारी संस्कृति की अच्छी बातों को सुरक्षित रख सकें और निकृष्ट तथा अधोशील को बिना संकोच अलग कर सकें। यह सीता, द्रौपदी, सावित्री और दमयन्ती जैसी स्त्रियों का कार्य है, न कि पुरुषों की नकल करने वाली स्त्रियों का।

———

महिलाओं के प्रति व्यवहार

कटक की श्रीमती सरला देवी लिखती हैं—

"क्या आप ऐसा नहीं मानते कि हमारे यहाँ स्त्रियों के प्रति जो दुर्व्यवहार किया जाता है वह उतना ही भयानक रोग है जितना अस्पृश्यता? मैं जितने राष्ट्रीयता वादी युवकों के सम्पर्क में आई हूँ उनमें ६० प्रतिशत का दृष्टि कोण पाशविक है। भारतीय असहयोगियों में से कितने ऐसे हैं जो स्त्रियो को भोग विलास का

साधन नहीं समझते ? क्या आत्मशुद्धि जो सफलता के लिए अनिवार्य है, बिना स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन किए सम्भव है ?"

मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि स्त्रियों के प्रति जो व्यवहार किया जाता है, 'अस्पृश्यकता के बराबर ही भयानक रोग हैं। श्रीमती सरला देवी ने इस कुप्रथा के विषय में अधिक बढ़ा कर कहा है। और न तो असहयोगियों के प्रति किया गया दोषारोपण ही माना जा सकता है। अतिशयोक्ति से किसी विषय का महत्व कम ही होता है। साथ ही मुझे यह स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं कि पूर्ण-स्वराज प्राप्त करने के लिए पुरुषों के हृदय में स्त्रियों के लिए जो आदर और पवित्रता की भावना है, उसे कहीं अधिक विकसित और परिष्कृत करना पड़ेगा। माननीय एँड्रूयूज, ने श्रीमती सरला देवी की अपेक्षा कहीं अधिक सत्य बात कही है "अपनी पतित बहनों की मान-हानि पर दृष्टि-पात करने का हमारा साहस नहीं होता" कोई भी असहयोगी बड़े जोश के साथ यह कहता हुआ पाया जा सकता है कि कुमार्ग पर जाने वाली इन बहनों में से बहुतों ने अपने को असहयोग के लिए 'रिजर्व' कर रखा था, यह हमारे लिए एक अपमान जनक बात है।

इस विषय में जो पारित्रिक संगठन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, सहयोगियों और असहयोगियों में कोई भेद नहीं हो सकता। हम पुरुषों को जब तक एक भी स्त्री हमारी वासना के वशीभूत रहे, लज्जा से अपना सिर नीचा किए रखना चाहिए। ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति को अपनी वासना का साधन बनाकर हम पशुओं से भी नीचे उतरें, इसकी अपेक्षा मैं पुरुष-जाति का सर्वनाश देखना चाहूँगा। किन्तु यह केवल भारतवर्ष ही का प्रश्न नहीं, बल्कि सारे संसार का प्रश्न है। और मैं इन्द्रिय सुख से पूर्ण आधुनिक कृत्रिम जीवन के विरोध करता हूँ और लोगों से प्राचीन सात्विक जीवन ग्रहण करने

को कहता हूँ, (जिसका द्योतक चरखा है) क्योंकि मैं जानता हूँ कि बिना सादगी के हम अपनी इस पाशविक स्थिति से ऊपर नहीं उठ सकते। मैं अपनी महिलाओं के लिए अधिक से अधिक स्वाधीनता चाहता हूँ। बाल विवाह से मुझे घृणा है और विधवा बालिका को देखकर मैं काँपने लगता हूँ तथा स्त्री के देहान्त के पश्चात् तुरन्त विवाह करने वाले पुरुष को देखकर मैं क्रोध से पागल हो उठता हूँ। मैं ऐसे माता पिता को जो अपनी बलिकाओं को बिलकुल अशिक्षित और अज्ञान रखते हैं, और किसी सनाढ्य व्यक्ति के साथ विवाह करने के लिए उनका पालन पोषण करते हैं, बड़ी नीची दृष्टि से देखता हूँ। किन्तु इस दुःख और क्रोध के साथ साथ मैं इसकी कठिनाइयों को भी अनुभव करता हूँ। स्त्रियों को वोट देने का अधिकार और कानूनी समानता अवश्य मिलनी चाहिए परन्तु यह प्रश्न यहीं नहीं समाप्त होता। केवल यह वहाँ से प्रारम्भ होता है जहाँ स्त्रियाँ राष्ट्र के राजनीतिक निर्माण पर डालने लगती हैं।

मेरा क्या उद्देश्य है, इसके लिए मैं एक सज्जन मुसलमान मित्र के बाद बिंवाद को उद्धृत करूँगा जो उनके और........के बीच हुआ था और जिसका वर्णन उन्होंने मुझसे बड़े सुन्दर रूप से किया था। वे स्त्रियों के समर्थकों की एक सभा में बैठे थे और उन्हें ऐसी जगह देखकर एक महिला-मित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। और उसने उनसे वहाँ उपस्थित होने का कारण पूछा। मुसलमान मित्र ने बताया, "मेरे यहाँ आने के दो मुख्य और दो गौण कारण हैं। मेरे शैशव काल में ही मेरे पिता का देहान्त हो गया, अतः मेरे विकास का पूर्ण श्रेय मेरी माँ को है। फिर मेरा विवाह एक स्त्री से हुआ जो मेरे जीवन की सच्ची सहचरी थी। अब मेरे कोई पुत्र नहीं, केवल चार लड़कियाँ हैं जो सभी बहुत छोटी हैं और उनसे मुझे पिता के रूप में बड़ा स्नेह है। क्या यह आश्चर्य जनक

बात है कि मैं स्त्रियों का समर्थक हूँ। मुसलमानों पर यह सबसे बड़ा दोषारोपण यह किया जाता है कि वे स्त्रियों के प्रति उदासीन रहते हैं।

इस्लाम स्त्रियों के लिये समानता का व्यवहार सिखाता है और मेरा विचार है कि पुरुष ने अपनी वासना के लिए स्त्री को पतित किया है। और उसकी आत्मा के स्थान में उसने उसके शरीर की उपासना में यहाँ तक सफलता पाई है कि आज स्त्री को यह भी सात नहीं कि वह जो शारीरिक सौंदर्य की ओर इतनी झुकी रहती है, उसके गुलामी का चिन्ह है।" इतना कहते कहते उनका गला भर आया। "यदि ऐसा नहीं है तो हमारी पतित बहनें शारीरिक सौंदर्य में इतना मन क्यों लगाती हैं? क्या हमने उनकी आत्मा को कुचल नहीं डाला है?" अपने को सँभालने के बाद उन्होंने कहा, "नहीं, मैं स्त्रियों के लिए कृत्रिम स्वतंत्रता ही नहीं चाहता बल्कि उन सभी बन्धनों को तोड़ देना चाहता हूँ जो उन्हें उनकी इच्छा से बाँधे हुए हैं।" इसलिये वे सज्जन अपनी लड़कियों को एक स्वतंत्र पेशे के योग्य बनाना चाहते थे।

इस बादविवाद को और वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। मेरी इच्छा है कि मेरे सम्बाद दाता इन मुसलमान मित्र की बात पर ध्यान पूर्वक विचार करें और फिर प्रश्न को सुलझाने की चेष्टा करें। स्त्रियाँ अवश्य ही, यह अपने मन से निकाल दें कि वे पुरुषों की वासना के पात्र हैं। उनकी उन्नति पुरुषों की अपेक्षा उन्हीं के हाथों में है। यदि उन्हें पुरुषों की समानता प्राप्त करनी है, तो उन्हें अपने पतित के लिये भी शारीरिक सौंदर्य की ओर मन न देना चाहिए। मेरे ध्यान में नहीं आता कि सीता ने एक भी क्षण शारीरिक सौंदर्य द्वारा राम को प्रसन्न करने में बिताया होगा।

———

स्त्रियों का पुनर्जीवन

बम्बई भगिनी समाज के वार्षिक अधिवेशन में व्याख्यान देते हुए गांधी जी ने कहा,

यह जानना आवश्यक है कि स्त्रियों के पुनर्जीवन से हमारा क्या तात्पर्य है। इसमें स्त्रियों के जीवन की पहले से ही कल्पना कर ली गई है और यदि ऐसा है तो हमें देखना चाहिये कि पुनर्जीवन का प्रश्न उठा क्यों और कैसे ? इन बातों पर अधिक सोच विचार करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। समस्त हिन्दुस्तान की यात्रा करने में मैंने अनुभव किया है कि सभी वर्तमान आन्दोलन हमारी जनता के थोड़े से लोगों तक ही सीमित हैं जो कि एक वृहत प्रकाश कुंज में एक चिनगारी के समान हैं।

करोड़ों स्त्री और पुरुष इस प्रचार से अनभिज्ञ हैं और हमारे देश के ८५ प्रतिशत लोग अपना जीवन, उनके आस पास जो हो रहा है उनमें बिना हाँथ बँटाए बिता रहे हैं। ये स्त्री और पुरुष अनजान होने पर भी अपने जीवन में कुशलता और सफलता पूर्वक भाग लेते हैं। दोनों को या तो एक सी शिक्षा मिलती है या मिलती ही नही। फिर भी वे एक दूसरे की यथोचित सहायता करते हैं। उनके जीवन में जो भी अपूर्णता है, उसका कारण शेष १५ प्रतिशत लोगों के जीवन में मिलेगा। यदि भगिनी-समाज की हमारी बहनें इन ८५ प्रतिशत लोगों के जीवन का निकट से अध्ययन करें तो उन्हें एक सुन्दर सामाजिक कार्यक्रम मिलेगा।

अपने निरीक्षण को मैं ऊपर आए हुए १५ प्रतिशत लोगों तक ही सीमित रखूँगा, फिर भी स्त्रियों और पुरुषों की उभयनिष्ट कमजोरियों पर विचार विनिमय करना संगत नहीं। हम जिस विषय को समझने जा रहे हैं वह पुरुषों के अपेक्षा कृत स्त्रियों का पुनर्जीवन है।

नियमों के नियन्ता अधिकतर पुरुष रहे हैं। और पुरुषों ने इसमें सदा ईमानदारी और न्याय नहीं किया है। स्त्रियों का सुधार करते समय हमें सब से अधिक ध्यान उन चीजों को हटाने पर देना चाहिए जिन्हें शास्त्रों ने स्त्रियों के लिए जन्मजात कहा है। इसे कौन और किस प्रकार करेगा ? मेरी राय में हमें इस कार्य के लिये हमें सीता दमयन्ती द्रौपदी की भाँति दृढ़ और आत्मसंगत नारियों का निर्माण करना होगा। इस प्रकार की स्त्रियो को समाज उसी आदर से देखेगा जिससे इनकी पुरातन प्रतिकृति को। उनकी वाणी में वही शक्ति होगी जो शास्त्रों में है। स्मृतियों में उनके विषय में जो ऊट पटाँग बातें कहीं है, उन पर हमें लज्जा आयेगी। और हम उन्हें भूल जाँयगे। इस प्र।ार के विद्रोह हिन्दू समाज में पहले भी हुये हैं और आगे भी होंगे और इनसे हमारा विश्वाश और बढ़ता है। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारा यह संगठन शीघ्र ऐसी स्त्रियाँ पैदा करने में सफल हो।

हम स्त्रियों के पतन के मुख्य कारणों पर विचार कर चुके हैं और उन आदर्शों पर भी हम प्रकाश डाल चुके हैं, जिनसे उनकी वर्तमान दशा में सुधार हो सकता है। निश्चय ही इन आदर्शों को समझने वाली स्त्रियों की सख्या बहुत कम होगी, इसलिये 'हम साधारण स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं, (यदि वे करना चाहें)' इसपर विचार करेंगे। उनकी सब से पहली कोशिश यह होनी चाहिए कि अधिक के अधिक स्त्रियों के मन में उनकी वर्तमान स्थिति का सच्चा और उचित ज्ञान जगाये। मैं यह नही समझता कि ऐसा साहित्यिक शिक्षा ही के द्वारा किया जा सकता है। इससे तो हमारे उद्देश्य की पूर्ति अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो जायसी और इतनी लम्बी अवधि आवश्यक नही, ऐसा मैंने हर कदम पर अनुभव किया है। स्त्रियाँ बिना किसी प्रकार की साहित्यिक शिक्षा दिये, उन्हें उनकी शोचनीय दशा का ज्ञान

कराया जा सकता है। स्त्री पुरुष की सहचरी हैं, उसमें पुरुष के समान ही हर प्रकार कीबौद्धिक शक्ति होती है और पुरुष के हर छोटे से छोटे कार्य में भाग लेने का और उसी की भाँति स्वाधीनता का अधिकार है। जिस प्रकार पुरुष को अपने क्षेत्र में प्रमुख स्थान मिला है उसी प्रकार स्त्री को अपने क्षेत्र में मिलना चाहिए। ऐसा लिखना पढ़ना सीखने के फल स्वरूप नहीं वरन् स्वाभाविकतः होना चाहिए। किन्ही प्रचलित सामाजिक कुरीतियों के बल से कुछ मूर्ख और निकम्मे लोगो को स्त्रियों के ऊपर वे अधिकार प्राप्त हैं जिनके वे बिल्कुल अयोग्य हैं। हमारे बहुत से कार्य तो स्त्रियों के दुर्दशा के कारण बीच में हीं समाप्त हो जाते हैं और इस प्रकार हमारी चेष्टाओं का समुचित फल नही मिलता। हम लोगों की वैसा ही दशा है जैसी छोटी बातों की ओर ध्यान देने वाले और बड़ी बातों की ओर से ला परवाह, रोजगारी की होती है जो अपने व्यपार में पर्याप्त पूँजी नही लगाता।

वैसे तो बिना पढ़े लिखे इस दिशा में काफी काम किया जा सकता है, फिर भी मेरा दृढ़ विश्वास है कि बिना उसके सदा काम नहीं चल सकता। पढ़ने लिखने से मस्तिष्क की वृद्धि और विकास होता है और हमारे अच्छे कार्यों के करने की चेतना आती है। ऐसा कह कर मैं पढ़ने लिखने की उचित उपयोगिता ही समझ रहा हूँ। स्त्रियों की अशिक्षा के कारण पुरुषों को उनसे अधिक अधिकारों का उपयोग करने में कोई न्याय नहीं। परन्तु इन स्वाभविक अधिकारों-की रक्षा में समर्थ होने के लिए, उनमें सुधार करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है, और फिर बिना शिक्षा के करोड़ों लोगों को आत्म ज्ञान प्राप्त होना असम्भव है। बहुत सी पुस्तकें निर्दोष आनन्द देने वाली है लेकिन बिना शिक्षा के उनका आनन्द हम नहीं प्राप्त कर सकते।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि बिना शिक्षा के पुरुष पशुओं से अधिक ऊँचे नहीं रहता। अतः शिक्षा स्त्रियों के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार पुरुषो के लिये किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों को एक हीं प्रकार का शिक्षा दी जाय। सब से पहले तो हमारी गवर्मेन्ट की शिक्षा-पद्धति में बहुत सी कमियाँ हैं और उससे बहुत कुछ हानि होती है। उसमे दोनों को बचना चाहिए उसकी वर्तमान बुराइयाँ हट जाने पर भा, स्त्रियों के लिए हर दृष्टि कोण से वह उप योगी और उचित नहीं होगी। स्त्री और पुरुष समान है परन्तु एक दूसरा नहीं ले सकता उनका एक अनुपम जोड़ा है, और उनमें से एक दूसरे का पूरक और सहायक है। अतः एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रकार किसी एक के लिए हानि कारक रीति का दूसरे पर भी समान रूप से बुरा प्रभाव पड़ेगा। स्त्रियों का शिक्षा के विषय में बिचार करते समय इस बात का सदा विशेष ध्यान रखना चाहिए। पुरुष का बाहरी बातों में प्रमुख स्थान है अतः उसे उनका विशेष ज्ञान होना चाहिए और दूसरी ओर गृहकार्य स्त्री का क्षेत्र है अतः उन्हें बाल बच्चों के पालन पोषण, उनकी शिक्षा इत्यादि गार्हस्थ्य सम्बन्धी कार्यों की विशेष शिक्षा मिलनी चाहिए। परन्तु इससे यह अर्थ नहीं कि दोनों ज्ञानोपार्जन में कोई दृढ़ और निश्चित दीवार खड़ी की जाय या किसी प्रकार के ज्ञान किसी के लिये बन्द रखे जाँय। किन्तु जब तक दोनों की शिक्षा के माध्यम में उप युक्ति मौलिक सिद्धान्तों का ध्यान न रक्खा जायगा, स्त्री और पुरुष के जीवन का पूर्ण विकास असम्भव है।

मैं कुछ शब्द इस बारे में भी कहना चाहता हूँ कि अंग्रेज़ी की शिक्षा हमारी स्त्रियों के लिए आवश्यक है या नहीं। में इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि साधारण रूप से पुरुषों या स्त्रियों किसी के लिए अंग्रेजी की शिक्षा आवश्यक नहीं। सच पूछा जाय तो जीविका-

उपार्जन तथा राजनैतिक क्षेत्रों के लिए अँग्रेज़ी आवश्यक है और मैं ऐसा नहीं मानता कि स्त्रियों की जीविका के लिये अथवा व्यापार के लिए उद्योग करना उचित है। जो थोड़ी बहुत स्त्रियाँ जो अँग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त करना चाहें या जिन्हें इसकी आवश्यकता हो, पुरुषों के लिए खुले हुए स्कूलों में प्राप्त कर सकती हैं। स्त्रियों के स्कूलों में अँग्रेजी शिक्षा के प्रचार का परिणाम यह होगा कि हमारी असमर्थता और भी बढ जायगी।

मैंने लोगों को बहुधा यह कहते सुना और पढ़ा है कि अँग्रेज़ी साहित्य का सम्पन्न और विस्तृत क्षेत्र स्त्रियों और पुरुषों के लिए समान रूप से खुला होना चाहिए। मैं समझता हूँ इस प्रकार के दृष्टिकोण में कुछ गलत फहमी है और इससे कुछ अशङ्का है। कोई भी इस क्षेत्र को पुरुषों के लिये खुला और स्त्रियों के लिये बन्द नहीं रखना चाहता। वैसे तो कोई किसी को जिसे साहित्यिक रुचि है समस्त ससार के किसी भी साहित्य के अध्ययन से नहीं रोक सकता। किन्तु जब किसी समाज विशेष को ध्यान में रख कर पाठ्यक्रम निश्चित किया जाय तो कुछ थोड़े से लोगों की आवश्यकता की पूर्ति जिन्होने अपने भीतर साहित्यिक रुचि पैदा की है, नहीं की जा सकती। अँग्रेजी की शिक्षा और अध्ययन की ओर कम ध्यान देने के लिए कहने से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि उन्हें जो सुख उससे मिलता है उससे बचित रखे जाय, बल्कि यह कि उससे थोड़े ही परिश्रम से वही सुख स्वाभाविक शिक्षा द्वारा प्राप्त हो सकता है। संसार अमूल्य और सुन्दर रत्नों से भरा हुआ है और वे अँग्रेजी के ही नहीं हैं। दूसरी भाषाएँ भी उसी प्रकार की उच्चकला की जननी होने का गर्व कर सकती हैं। ये सब जनसाधारण के लिए सुगम होना चाहिए और ऐसा तभी हो सकता है जब हमारे यहाँ के शिक्षित लोग हमारी भाषाओं में उसका अनुवाद करें।

केवल शिक्षा का ऐसा कार्यक्रम बना लेने से ही हमारे समाज से बाल-विवाह दूर नहीं होगा और न इससे स्त्रियों को समानता का अधिकार ही प्राप्त हो जायगा। अब हमें बालिकाओं पर विचार करना चाहिए जो शिक्षा के विषय में विवाह के पश्चात् हमारी आँखों से दूर हो जाती हैं। बाल-विवाह के अकथनीय असोच्य पाप को जानते हुए भी मातायें अपनी बालिकाओं की शिक्षा या उनके उजड़े जीवन को सुन्दर बनाने का उत्तरदायित्व लेने का नहीं सोच सकती। जो पुरुष किसी बालिका से विवाह करता है, उसके भीतर कोई परोपकार की भावना नहीं रहतीं, किन्तु उसका उद्देश्य केवल वासना की तृप्ति होती है। इन बालिकाओं को कौन मुक्त करेगा? इस प्रश्न का समुचित उत्तर स्त्रियों के प्रश्न का भी उत्तर होगा। निस्सन्देह इसका सुलझाव कठिन है, पर है वह एक ही, स्पष्टतः स्त्री के प्रश्न को सुलझाने वाला उसका पति ही हैं। विवाहित बालिका से यह आशा करना कि वह अपने पति को ठीक कर लेगी, निरर्थक है। अतएव यह कठिन कार्य वर्तमान अवस्था में पुरुष पर ही डालना चाहिए। यदि मुझसे हो सकता तो मैं विवाहित बालिकाओं का गणना करवाता और उनके सम्बन्धियों का पता लगाता और नैतिक और विनय प्रवचनों द्वारा उन्हें यह समझाने को कोशिश करता कि अपनी सम्पत्ति नाबालिग़ पत्नियों से सम्बन्धित रखकर वे कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं और उन्हें सम्बधान करता कि इस पाप से उनको तब तक छुटकारा नहीं मिल सकता जब तक कि शिक्षा द्वारा वे अपनी पत्नियों को केवल बच्चे जनने योग्य ही न बनावें बल्कि उनको पालने के योग्य भी बनावें और इस बीच में पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें।

इस प्रकार बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें भगिनी समाज के सदस्य कार्य कर सकते। कार्य करने के इतने क्षेत्र हैं कि यदि निश्चित और दृढ़ रूप से चेष्टा की जाय, बड़े बड़े सुधार के कार्य इस समय

स्थगित कर दिये जा सकते हैं और इस प्रकार स्वराज के लिए बिना उसका नाम तक लिए, बहुत बड़ी सेवा की जा सकती है। जब छापे की कलें नहीं थीं और व्याख्यान देने के भी साधन बहुत सीमित थे और आज की तरह जब कि मनुष्य १००० मील प्रतिदिन यात्रा कर सकता है, वह नहीं चल सकता था (वह कठिनाई के साथ २४ मील जा पाता था) उस समय हमारे पास प्रचार करने का एक ही साधन था—हमारे कार्य और उतने असीम शक्ति की आज हम वायु की गति से इधर से उधर व्याख्यान समाचार पत्रों के लिए लेख लिखते फिरते हैं, फिर भी हमें कमी का अनुभव होता है और हमारे निराशा से भरी आवाज़ आकाश में गूंजती रहती है। मैं अकेले इस विचार का मानने वाला हूँ कि पुरातन काल की भाँति हमारे कार्यों का जनता पर कितने भी व्याख्यानों और लेखों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव पड़ेगा। आपके इस ऐसोशियेशन से मेरी यह हार्दिक प्रार्थना है कि आपके सदस्य जो कुछ भी करें उसमें शान्त और ऐसे कामों को अधिक महत्व दें जिनसे दूसरों को कष्ट न पहुँचे।

स्त्री धर्म क्या है ?

एक बहुत पढ़ी-लिखी बहन का पत्र, कुछ हिस्से निकाल देने के बाद यहाँ देता हूँ :—

आपने अहिंसा और सत्याग्रह के जरिए दुनियाँ को आत्मा का गौरव दिखा दिया है। मनुष्य के पशु स्वभाव को जीतने की समस्या इन्हीं दो शब्दों से हल हो सकती है।

उद्योग के जरिए शिक्षा एक महान कल्पना ही नहीं है, बल्कि हम अपने बच्चों को स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो शिक्षा का एक मात्र सही तरीक़ा भी यही है। आप ही ने यह बात कही है और

एक ही वाक्य में शिक्षा की सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तफ़सील तो हालात और तजुर्बे से ही तय हो सकती है। मेरी अर्ज है कि स्त्रियों का सवाल भी जरूर हल कर दें। राजा जी कहते हैं कि हम स्त्रियों का कोई सवाल ही नहीं है। शायद राजनीतिक मानें में न हों। कदाचित धंधे के बारे में भी क़ानून द्वारा हमें निश्चित बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत, मर्द सबके लिए समान रूप में खुले कर दिए जा सकते हैं।

मगर फिर भी हम स्त्री हैं, और स्त्री के गुण-दोष पुरुष से भिन्न हैं, इस बात में अन्तर नहीं पड़ता। हमें अपने स्वभाव के दोषों को दूर करने के लिए अहिंसा और सत्याग्रह के अलावा कुछ और सिद्धान्त भी चाहिए।

पुरुष की तरह स्त्री की आत्मा भी ऊँचा उठने की कोशिश करती है, मगर ऐसे नर को अपनी आक्रमणकारी भावना, काम, वासना और दुख पहुँचाने की पशु-वृत्ति आदि से छुटकारा पाने के लिए अहिंसा और ब्रह्मचर्य की जरूरत है, ठीक उसी तरह नारी को भी कुछ ऐसे उसूलों की आवश्यकता है जिनसे वह अपने स्वभाव के दोष दूर कर सके, क्योंकि वे दोष पुरुष के दोषों से अलग तरह के हैं और आमतौर पर कहा जाता है कि वे प्रकृति से ही स्त्री के साथ लगे हुए हैं। स्त्री होने के कारण ही उसके जो स्वभाविक गुण-दोष हैं, उसका जिस तरह लालन-पालन और शिक्षण होता है, और उसके लिए जैसा वातावरण पैदा हो जाता है, वह सब उसके विरुद्ध पड़ता है।

और ये चीज़ें यानी उसका स्वभाव, उसकी तालीम और उसका वायु मंडल, उसके काम में हमेशा खलल डालती, उसका रास्ता रोकती और आमतौर पर यह कहने का मौक़ा देती हैं कि "आख़िर तो औरत ही है" जब मैं कहती हूँ कि स्त्री होना ही उसके गले का

हार हो गया है, तो मेरा मतलब यही है। मेरे ख्याल से हमारी समस्या ठीक तौर पर हल हो जाए और अपने सुधार का सही तरीक़ा हमारे हाथ लग जाए तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वाभाविक गुण हैं उन्हें बाधक होने के बजाए हम साधक बना सकती हैं। जैसा आपने पुरुषों और बच्चों के बारे में हल बताया है उसी तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतर से होना चाहिए। मैंने स्वभाव, शिक्षा और वातावरण की बात कही है। अपनी बात साफ़ समझाने के लिए मैं एक मिसाल देती हूँ।

.कुदरत ने औरत को कोमल, नरम दिल, हमदर्द और बच्चों की माँ बनाया है। इन चीज़ों का असर उस पर अनजान में भी बहुत होता है। इसलिए जब उसे कुछ करना पड़ता है तो वह बेहद भावुक हो जाती है। मर्दों के सम्पर्क में आने पर बड़ी बड़ी ग़लतियाँ कर बैठती है। जिस वक़्त उसे सख्त रहना चाहिए उस वक्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही .खुश और नाराज हो जाती है, उसे आसानी से अपने पर गर्व हो जाता है और आमतौर पर भोले-पन के काम करती है।

जब मैं आपसे मिलने आई तब हालांकि उस मुलाक़ात की मुझे बड़ी उत्सुकता थी और पहली बात उसका विचार करते करते मुझे नींद भी नहीं आई थी, फिर भी जब मैं आपके सामने गई और आपने मुझे बैठ जाने को कहा तो मैं श्री-देशाई की लम्बी-चौड़ी पीठ की आड़ में जा बैठी। वहाँ से न मैं आपकी बात सुन सकती थी और न आपका मुँह देख सकती थी। यह मेरा कितना भोलापन था। इतना ही नहीं, मैंने देख लिया कि मैं अपनी बात भी नहीं समझा सकती, मेरी ज़बान ही नहीं चलती थी। इसकी वजह मैं यह समझती हूँ कि मेरे स्वभाव पर भावुकता सवार रहती है और आसानी से काबू के बाहर हो जाती है। अवश्य ही, यह खास दोष

तो उचित तालीम से निकल जाता। मगर मैं कह सकती हूँ कि सम्भव है, मैं और कोई ऐसा ही भोलेपन का काम कर बैठूं।

मेरी एक सखी ने मुझे वे उत्तर दिखाए थे जो उसने राष्ट्रीय योजना-उप समिति की स्त्रियों के काम के बारे की प्रश्नावली पर लिख भेजे थे। आप ज़रूर जानते होगे कि ये सवाल नम्बर वार होते हैं और कुछ इस तरह के हैं: देश के जिस भाग में आप रहती हैं वहाँ किस हद तक स्त्रियों को अपने हक़ से सम्पत्ति रखने, हासिल करने, उत्तराधिकार में मिलने, बेचने या दे डालने का अधिकार है?

जिन अनेक काम धन्धों में अलग-अलग योग्यता की स्त्रियों को लगने की ज़रूरत हो सकती है उसके लिये स्त्रियों को उचित शिक्षा और तालीम देने का क्या बन्दोबस्त और सुविधाएँ हैं? वगैरः वगैरः।

मेरी सखी ने प्रश्नों का उत्तर न देकर यह लिखा है: "यह कहना जरा भी सच नहीं है कि प्राचीन काल में स्त्रियों को शिक्षा जैसी कोई चीज मिलती ही न थी"। उसने यह भी लिखा है कि "वैदिक युग में विवाह होने पर पत्नी को कुटुम्ब में तुरन्त प्रतिष्ठा का स्थान दिया जाता था और वह अपने पति के घर का मालिकन बन जाती थी" आदि आदि। उसने मनुस्मृति से भी प्रमाण दिए हैं।

मैंने उससे पूछा कि जब सवाल आज के ज़माने के बारे में पूछे गये हैं तो पुराने रीति-रिवाज का हाल लिखने की क्या जरूरत थी? वह यह सोच कर कि निबन्ध के रूप में उत्तर बढ़िया रहता है कुछ मुंह-ही-मुँह कहती रही और फिर तेज होकर बोली, "श्रीमती... अमुक का जवाब तो मुझसे भी बुरा है।"

मेरी समझ से मेरी सखी की यह भूल ठीक तालीम न मिलने के कारण हुई है और तालीम उसे स्त्री होने के कारण ही नहीं दी गई। यह तो मुहर्रिर भी जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है तो उसके जवाब में दूसरे ही विषय पर निबन्ध नहीं लिखना

चाहिए। मेरे ख्याल में मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते रहने की जरूरत नहीं है। आपको सब प्रकार की स्त्रियों का इतना विशाल अनुभव है कि आप जान गये होंगे कि मेरा यह कहना सही है या नहीं कि जिस अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त से स्त्रियां सुधर सकती हैं, वही उन्हें मालूम नहीं है।

आपने मुझे 'हरिजन' पढ़ने की सलाह दी थी। मैं शौक से पढ़ती हूँ। मगर अब तक अन्तरात्मा के लिए कोई सलाह मेरे देखने में नहीं आई। राष्ट्रीय आज़ादी के लिए कातना और लड़ना तो उस तालीम के कुछ पहलू ही हैं। उनमें समस्या का सारा हल समाया हुआ नहीं दीखता, क्योंकि मैंने ऐसी स्त्रियाँ देखी हैं जो कातती हैं और कांग्रेस के आदर्शों पर अमल करने की कोशिश तो जरूर करती हैं, लेकिन फिर भी वही बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठती हैं जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है। मैं पुरुषों के जैसी नहीं बनना चाहती। लेकिन जैसे आपने पुरुषों की पशु प्रकृति के सुधार के लिए अहिंसा सिखाई है, वैसे हमें भी वह पाठ पढ़ा दीजिए। जिससे हमारा भोले पन का दोष दूर हो जाये। कृपा करके बताइए, हम कैसे अपने स्वभाव का सदुपयोग करें और अपनी बाधाओं को सुविधा बना लें। यह स्त्री होने का भार हमेशा मेरे मन पर रहता है। जब कभी मैं किसी को नाक-भौं सिकोड़ कर यह कहते सुनती हूँ कि "आखिर स्त्री है" तो मेरी आत्मा में वेदना होती है (अगर आत्मा में भी वेदना हो सकती हो तो)। एक पुरुष से मैंने इन बातों की चर्चा की तो वह मेरी हँसी उड़ाकर कहने लगा, आपने हमारे मित्र के घर उस बच्चे को देखा था? वह गाड़ी बना कर खेल रहा था और चग चग करता जब खम्भे के पास पहुँचा तो उसके चौतरफ़ घूमने के बजाय उसने अपने कन्धों से धक्का देकर उसे गिराने की कोशिश की। वह अपने बाल-स्वभाव से यह

समझता था कि मैं उसे गिरा दूँगा। आपकी बात से मुझे वह याद आता है। आप जो कहती हैं वह मनोवैज्ञानिक बात है। आप उसे समझने और सुलझाने का जो प्रयत्न करती हैं उस पर मुझे हँसी आती है।"

स्त्रियों का काम

प्रश्न—आप कहते हैं:—"स्त्री को घर छोड़कर घर की रक्षा के लिए कन्धे पर बन्दूक धरने के लिए कहना या उन्हें प्रोत्साहित करने से स्त्री और पुरुष दोनों का ही नाश होगा। यह तो फिर जंगली बनना हुआ। लेकिन उन करोड़ों महिलाओं के लिए क्या कहियेगा, जो कृषि करती तथा कारखानों में मजदूरी करती हैं। उन्हें भी तो घर त्यागकर जीविका कमानी पड़ती है। क्या आप उद्योग-धन्धों को मिटा देंगे? और फिर वही पाषाण-युग को खींच लावेंगे? क्या यह फिर से जंगली बनना या विनाश का आरम्भ नहीं होगा? आपकी कल्पना में समाज की वह नई व्यवस्था कौन सी होगी, जिसमें स्त्रियों से काम लेने में पाप न होगा?

उत्तर—करोड़ों स्त्रियों को अगर बरबश घर छोड़कर अपनी जीविका कमानी पड़ती है तो यह बुरी बात है। पर यह उतनी बुरी बात नहीं है, जितनी कंधों पर बन्दूक रखना। वास्तव में मज़दूरी करने में कोई बर्बरता नहीं है। अपने घरों की देख भाल करते हुए अगर स्त्रियाँ स्वेच्छा से अगर खेतों पर भी काम करती है तो इसमें मुझे कोई बर्बरता दिखाई नहीं पड़ती। मेरी कल्पना में समाज की जो नई व्यवस्था है उसमें सभी अपने अपने सामर्थ के अनुसार काम करेंगे और उन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य मिलेगा। इस

नई व्यवस्था में स्त्रियाँ थोड़े समय के लिए काम करेंगी, पर उनका मुख्य काम घर की देख भाल करना होगा। चूँकि मैं अपनी नई व्यवस्था में बन्दूक को स्थायी चीज़ नहीं मानता। इसलिए जहाँ तक पुरुषों का सम्बन्ध है वहाँ भी उसका प्रयोग शनैः शनैः कम होता जायगा, जब तक उसका इस्तेमाल होता रहेगा, तब तक उसे एक अनिवार्य बुराई समझकर सहन किया जायगा। पर मैं जान बूझ कर इस बुराई की छूत स्त्रियों को नहीं लगने दूँगा।

स्त्रियों का विशेष कर्त्तव्य

यूरोपीय संकट पर आपने जो लेख लिखा है उसे मैंने बड़े चाव से पढ़ा। यह बिलकुल स्वाभाविक था आप इस समय ऐसा लेख लिखें। जब मानवता सर्वनाश के गर्त्त पर हो आप अपने को कैसे रोक सकते थे ?

प्रश्न यह है कि क्या संसार उस पर ध्यान देगा।

इङ्गलैंड से आए हुए मित्रों के पत्र व्यवहार देखने से पता चलता है कि उस भयानक सप्ताह में लोगों को अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ा। और मैं निश्चय पूर्वक जानता हूँ कि कुछ अंश तक यही बात संसार भर के लिए लागू है। पैशाचिक-साधनों आधुनिक युद्ध के और उनके परिणाम स्वरूप जो भयानक पाशविकता और हत्या होती है, उसकी कल्पना मात्र से ही लोग पहले की अपेक्षा दूसरे ही ढंग से सोचने लगे हैं। एक अँगरेज मित्र ने लिखा है "युद्ध के रुक जाने का समाचार सुनकर लोगों ने जो मुक्ति की साँस ली और ईश्वर के प्रति हर प्राणी ने जो अनुग्रहपूर्ण विचार प्रकट

किए, ऐसी चीजें हैं, जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता।" फिर भी अकथनीय कष्टों का भय अपने निकटवर्ती सम्बन्धियों को खोने की आशङ्का, अपने देश को पराजित देखने की मान हानि, ये ही ऐसे कारण हैं जिनसे लोग युद्ध से घृणा करते हैं। क्या दूसरे राष्ट्र के पराजय से युद्ध रुक जाने पर हम प्रसन्न हैं? क्या यदि मर्यादा के त्याग चर्चा की हमसे की गई होती तो हम और तरह से सोचते? हम युद्ध से इसलिए घृणा करते हैं कि हम जानते हैं, झगड़ों के निर्णय का यह अच्छा मार्ग नहीं है या हमारी यह घृणा हमारे भय और आशङ्का के कारण है? यदि युद्ध को संसार से मिटाना है तो इन प्रश्नों का समुचित उत्तर मिलना आवश्यक है।

"इस संकट के समाप्त होने पर हम क्या देखते हैं? शस्त्री करण के लिये पहले से भी अधिक जोरदार जाति, सभी मुख्य साधनों—पुरुषास्त्री, धन, योग्यता मस्तिष्क—का ऐसा ऐसा विस्तृत और वृहत् अभूतपूर्व संगठन जो युद्ध की प्रतिज्ञा कर रहा है।

कहीं से भी स्पष्ट घोषणा नहीं हो रही है कि "युद्ध नहीं होगा।" क्या यह इस बात का द्योतक नहीं कि युद्ध आज के लिए चाहे समाप्त हो गया हो, किन्तु डैमाक्लिस की तलवार की तरह यह अब भी हमारे सिरों पर लटक रहा है। स्त्री की हैसियत से मुझे दुख है कि हमारी जाति ने संसार की शान्ति स्थापना में वह योग नहीं दिया जो उसे देना चाहिए था। यह जानकर मुझे बड़ा दुःख होता है कि युद्ध भूमि पर सचमुच लड़ने के लिए स्त्रियों का संगठन किया जा रहा है और फिर युद्ध के दिनों में स्त्रियों ही का हृदय निचोड़ा जाता है और उन्हीं की आत्मायें विध्वंस होती हैं, जिनकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती। इन सबका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम लोगों ने हर युग में श्रेष्ठतर भाग क्यों नहीं चुना? हमने निर्मम, पाशविक, और निर्दय शक्ति के समक्ष घुटने क्यों टेके? यह हमारे आत्मिक

विकास की दुखद व्याख्या है। हमने अपने उच्च आदर्श को नहीं समझा। मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि यदि स्त्रियों ने हृदय से अहिंसा के महत्व और उसकी शक्ति को समझा होता तो संसार में शान्ति और सुख ही होते।

"आप हम भारतीय स्त्रियों का प्रोत्साहन और संगठन क्यों नहीं करते? आप हमें अपना दाहिना हाथ बनाने की ओर ध्यान क्यों नहीं देते? कई बार मेरी इच्छा हुई कि आप केवल इसी काम के लिए एक बार भारतवर्ष भर का भ्रमण कीजिए। मुझे विश्वास है कि आपको स्त्रियों का आश्चर्यजनक सहयोग मिलेगा, क्योंकि भारतीय नारियों का हृदय दृढ़ है और संसार में शायद ही किसी और देश की नारियों ने इतना सुन्दर त्याग किया हो। यदि आप हमें कुछ बनाएँ तो हम दुःख और शोक में डूबते हुए संसार को शान्ति का मार्ग बताने में समर्थ हो सकेंगी"—एक महिला इस पत्र को प्रकाशित करते हुए मुझे कुछ हिचक हो रही है। परन्तु मैं अपनी सीमाएँ जानता हूँ। मुझे लगता है कि मेरे भ्रमण करने के दिन समाप्त हो गये। अब तो मुझे चाहिए लेखों द्वारा जो कुछ कर सकता हूँ करूँ किन्तु मौन प्रार्थना में मेरा विश्वास बढ़ता जा रहा है। यह अपने तईं एक कला है और शायद सबसे ऊँचे जिसके लिए अत्यन्त परिष्कृत प्रयत्नों की आवश्यकता है। मैं मानता हूँ कि अहिंसा के सर्वोत्तम रूप का प्रदर्शन स्त्री ही का कार्य है। किन्तु एक स्त्री के हृदय को द्रवित करने के लिए पुरुष की क्या जरूरत। यदि यह पत्र केवल मुझे यह जानकर कि (जैसा माना जाता है) मैं अहिंसा सामाजिक रूप से प्रयोग करने में सबसे बड़ा ज्ञाता हूँ, तो मैं नहीं चाहता कि भारतीय स्त्रियों को उपदेश देता फिरूँ। मैं अपने संवाददाता को यह विश्वास दिलाता हूँ कि मुझमें इच्छा की कमी नहीं जो मुझे उसकी अपील के अनुसार कार्य करने से रोक रही हो। मेरा विचार

है कि यदि कांग्रेस के लोग अपना विश्वास अहिंसा में दृढ़ रक्खे रहे और अहिंसात्मक कार्य क्रम पर पूर्णरूप से मन लगाकर चलते रहे तो स्त्रियाँ स्वयं बदल जायँगी। और सम्भव है उन्हीं में से कोई ऐसी निकल आए जो मेरी अपेक्षा कही आगे निकल जाय, जहाँ पहुँचने को मुझे आशा भी न हो क्योंकि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अहिंसा के विषय में खोज करने तथा निर्भीकता-पूर्वक कार्य करने के लिए अधिक उपयुक्त है। जिस प्रकार मेरा विश्वास है, पाशविक शौर्य में पुरुष स्त्री से बढ़कर है, उसी प्रकार आत्मत्याग में स्त्री पुरुष की अपेक्षा सदा कहीं बढ़कर है।"

महिलाएँ और सैनिकता

योरोप में कई विभिन्न में यह प्रश्न पूछा गया कि स्त्रियाँ सैनिकता के विरुद्ध किस प्रकार लड़े। इटली की एक प्राइवेट ··में गांधी जी से कहा गया कि वे इटली की स्त्रियों कुछ ऐसी बातें बताये जो वे भारत की स्त्रियों से सीख सकें।

पेरिस में महात्मा जी ने कहा, "यदि स्त्रियाँ यह भूल जाँय कि वे पुरुषों से कम शक्ति शाली हैं तो पुरुषों को अपेक्षा युद्ध के विरोध में कहीं अधिक कार्य कर सकती हैं। आप लोग स्वयं सोचिए यदि सिपाहियों और सेना नायकों की मातायें, स्त्रियाँ और बालिकायें उन्हें किसी भी रूप में युद्ध में भाग लेते हुए न देखना चाहें तो क्या हो?"

लासेन में उन्होंने कहा, मैं "नहीं समझता कि मुझ में योरोप की स्त्रियों को संदेश देने की शक्ति है। यदि मेरे संदेश को सुनकर वे क्रोधित न हो, तो मैं चाहता हूँ कि वे अपना भारत की स्त्रियों को ओर

ले जाँय जो गतवर्ष पूर्ण रुप से एकता पूर्वक लड़ने को खड़ी हुई। और मैं सचमुच विश्वास करता हूँ कि योरोप को अहिंसा की शिक्षा उसकी स्त्रियों द्वारा ही मिल सकती है। यह मैं इसका समर्थक हूँ कि नारी आत्मत्याग का साक्षात रूप है किन्तु दुर्भाग्य वश आज उसे इसका ज्ञान नहीं रहा कि उसकी सत्ता पुरुष से कितनी ऊँची है। जैसा कि टाल्सटाय कहा करते थे "स्त्रियाँ पुरुष के वश में होकर चल रही हैं।" यदि वे अहिंसा की शक्ति को समझ लें तो उन्हें पुरुषों से शक्ति हीन समझा जाना कभी पसन्द न होगा।"

स्त्रियों की एक टोली से बात करते हुए उन्होंने कहा, "अहिंसात्मक युद्ध का सब से बड़ा गुण यह है कि स्त्रियाँ उसी प्रकार भाग ले सकेंगी जैसे पुरुष। हिंसात्मक युद्ध में स्त्रियों को ऐसी कोई सुविधा नहीं होती और स्त्रियों ने गत अहिंसात्मक युद्ध में पुरुषो की अपेक्षाकहीं अधिक प्रभाव शाली भाग लिया था। और इसका कारण बिलकुल सीधा-सादा है। अहिंसात्मक युद्ध में अधिक से अधिक सहन शक्ति की आवश्यकता होती है और स्त्रियों से अधिक और पवित्र सहन शक्ति है किस में ? भारतवर्ष की स्त्रियों ने परदे को फाड़ फेका और वे राष्ट्र के लिये लड़ने को मैदान में आगयीं। उन्होंने देखा कि देश उनसे गृहस्थी के कामों के अतिरिक्त कुछ और माँग रहा था। उन्होंने गैर कानूनी नमक बनाये, विदेशी कपड़े और नशीली वस्तुओं की दूकानों पर धरने दिये और ग्राहकों तथा दूकानदारों दोनो को रोकने की चेष्टा की। रात में वे पीने वालों के साथ बड़े साहस और उदारता के साथ उनके अड्डों पर गईं। उन्होंने जेल की सजायें काटीं, और लाठियों की चोटे खाईं, और उनकी तरह बहुत कम पुरुषों ने दिखाई थीं। यदि पाश्चात्य स्त्रियाँ पाशविकता में पुरुषों से जीतना चाहती हों तो भारतीय स्त्रियो के पास कोई संदेश या शिक्षा नहीं है। उन्हें अपने पतियो और बालकों को लोगों की हत्या करने के लिए भेजकर आनन्द

नहीं अनुभव करना चाहिए और उन्हें इस बहादुरी के लिए बधाई ही देनी चाहिए।"

महादेव देसाई

भारतवर्ष की महिलाओं से

दण्डी यात्रा के अवसर पर गांधी जी ने भारतवर्ष की स्त्रियों से एक अपील की थी।...

कुछ बहनों में इस पवित्र संग्राम में भाग लेने की बड़ी उत्सुकता दिखाई देती हैं, यह बहुत स्वस्थ चिन्ह है। इससे यह पता चला कि नमक करके विरुद्ध विदेशी अन्दोलन चाहें जितना आकर्षक क्यों न हो उनके लिए इसमें अपने को सीमित करना हीरे के बदले में कोयला लेना है।

इस अहिंसात्मक संग्राम में उन्हों पुरुषों से कहीं अधिक भाग लेना चाहिए। स्त्रियों को पुरुषों से शक्ति-हीन कहना उन पर दोषा रोपण करना है। यदि शक्ति का अर्थ पाशविकता से है तो सचमुच स्त्री पुरुष की अपेक्षा कम पाशविक होती है किन्तु यदि इससे चारित्रिक शक्ति का अर्थ हो तो स्त्री पुरुष से कहा बढ़कर है। क्या उसमें पुरुष से अधिक बुद्धि, साहस, आत्मत्याग और सहन शक्ति नहीं है? स्त्री के बिना पुरुष की सत्ता ही न होती। यदि हमारे जीवन का उद्देश्य अहिंसा है तो भविष्य का निर्माण स्त्रियों ही के हाथ में है।

यह विचार मेरे मन में बरसों से जमता रहा है जब कभी आश्रम की स्त्रियों ने पुरुषों साथ के चलना चाहा है कि तो मेरे मन में किसी ने कहा है कि वे नमक के कानून को तोड़ने की अपेक्षा कही बड़ा कार्य करने के लिए हैं।

मुझे ऐसा लगता है कि वह कार्य मैं जान गया हूँ। सन १६२१ में पुरुषों द्वारा विदेशी कपड़े तथा नशीली वस्तुओं की दूकानों पर दिया गया धरने को आशातीत सफलता प्राप्त हुई और उसकी असफलता बाद में इस लिए हुई कि उसमें हिंसा आ गई। यदि एक वास्तविक प्रभाव पैदा करना है तो धरना देने का कार्य फिर प्रारम्भ करना पड़ेगा। यदि यह अन्त तक शान्त रहे तो लोगों को शिक्षा देने का सर्वोत्तम मार्ग होगा। इसके लिये बलात्कार से रोकने की नहीं, बरन् भावनायें बदलने की आवश्यकता होगी। और भावनायें बदलने के लिए स्त्रियों से अधिक प्रभाव कौन डाल सकता है?

नशीली वस्तुओं और विदेशी कपड़े का बहिस्कार अन्त में कानून द्वारा ही होगा। किन्तु जब तक नीचे से जोर न लगाया जायगा कानून बनेगा ही नहीं।

इससे किसी को विरोध न होगा कि ये दोनों राष्ट्र के लिए परम-आवश्यक है, नशीली वस्तुओं से लोगों का चारित्रिक शक्ति क्षीण हो जाती है, विदेशी कपड़े से देश की आर्थिक दशा बिगड़ती है और इससे लाखों आदमियों की जीविका छिनती है। प्रत्येक दशा में घर पर आपत्ति आती है और इसे स्त्रियों को ही सहना पड़ता है। वे स्त्रियाँ जिनके पति मद्यपान करते हैं जानते हैं कि इस आदत का कितना घातक परिणाम होता है। हमारे गाँवों की तमाम स्त्रियां यह भी जानती हैं कि बेकारी कैसी होती है। आज चर्खा-संघ में एक लाख से ऊपर स्त्रियाँ और दस हज़ार से कुछ कम पुरुष हैं।

भारत की स्त्रियों को चाहिए कि वे इन दोनों कामों को लें और उनमें विशेष ज्ञान प्राप्त करें, इस प्रकार वे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए पुरुषों से अधिक काम करेंगी। इससे उनमें शक्ति और आत्म विश्वास आयेगा, जिससे अब तक वे दूर रही हैं।

उनकी अपील से विदेशी कपड़े के दूकानदारों, ग्राहकों और नशीली पेय पदार्थों के रोज़गारियों तथा उनका प्रयोग करने वाले लोगों का हृदय अवश्य ही पिघलेगा। कम से कम स्त्रियों से यह आशङ्का नहीं की जा सकती कि वे इन चारों में से किसी के साथ हिंसात्मक व्यवहार करेंगी या करने की इच्छा करेंगी और न सरकार ही इस प्रकार के शान्तिपूर्ण और······ ··········से आँख बचा सकती है।

इसकी विशेषता यह होगी कि इसके आरम्भ करने और चलाने का काम पूर्ण रूप से स्त्रियां के ही हाथ में होगा। जितनी भी सहायता वे चाहें या जितनी भी सहायता की उनको आवश्यकता हो वे पुरुषों से प्राप्त करें परन्तु पुरुष उनके नीचे कार्य करें।

इस काम में हज़ारों शिक्षित और अशिक्षित स्त्रियाँ भाग ले सकती हैं। ऊँची शिक्षा पाई हुई स्त्रियों को इस प्रकार जनता के साथ घुसने, मिलने और उन्हें हर प्रकार की सहायता देने का अवसर मिलेगा।

बिदेशी वस्त्रों के वहिष्कार का अध्ययन करने पर उन्हें पता चलेगा कि खादी बिना यह असम्भव है। मिल मालिक स्वयं स्वीकार करेंगे कि निकट भविष्य में मिलें भारतवर्ष को आवश्यकता भर को कपड़े नहीं तैयार कर सकती। यदि अनुकूल वातावरण हो तो खादी हमारे गाँवों में असंख्य घरों में काती जा सकती है, स्त्रियों को चाहिए कि अपना पूरा बेकारी का समय सूत कातने में लगा कर अनुकूल वातावरण निर्माण करें। खादी का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में सूत कातने पर ही निर्भर है। मार्च के पिछले दस दिनों में मैंने तकली में वह शक्ति पाई है जो कभी नहीं देखी थी हालांकि बहुत सी असुविधायें थी।

इसका प्रभाव आश्चर्यजनक होता है खेल खेल ही में बिन किसी और कार्य में बाधा पहुँचाए मेरे साथियों ने प्रति दिन चार वर्ग गज़ कपड़ा बुनने भर को १२ काउण्ट खादी का सूत काता। युद्ध निरोध के रूप में खादी अजेय है।

दोनों सुधारों का नैतिक फल बहुत महत्व पूर्ण है और राजनैतिक परिणाम भी कम महत्व पूर्ण न होगा। नशीली वस्तुओं का प्रयोग रोकने से २५ करोड़ लगान की कमी होगी और विदेशी कपड़े के वहिष्कार से भारतवर्ष के करोड़ों आदमी मिल कर कम से कम ६० करोड़ की बचत करेंगे। नमक के कर से यह कहीं लाभदायक होगा इन दोनों कामों की सफलता से नमक कर के रद हो जाने की अपेक्षा अधिक अधिक लाभ होगा। दोनों सुधारों के नैतिक मूल्य का अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

लेकिन कुछ बहने कह सकती हैं कि इसमें कोई उत्तेजना और साहसिकता नहीं है। यदि वे पूरा मन लगा कर काम करें तो उन्हें काफी उत्तेजना और साहसिकता मिलेगी। आन्दोलन समाप्त कर चुकने के पहिले सम्भवतः उन्हें जेल जाना पड़ेगा। बहुधा उनकी मान हानि और शारीरिक आघात भी हो सकता है। इस प्रकार की मान हानि और चोट सहन करने का उन्हें गर्व होगा ऐसी सहन शीलता से इसका अन्त भी शीघ्र ही होगा। यदि भारत की स्त्रियाँ मेरी अपील के अनुसार कार्य करना चाहती हैं तो उन्हें शीघ्रता करनी चाहिए। यदि भारतवर्ष भर का कार्य एक साथ न उठाया जा सके तो वे सूबे जो संगठन कर सकते हैं, करें। दूसरे सूबे भी जल्द उसका अनुकरण करेंगे।

मद्यपान का अभिशाप

एक बहिन लिखती हैः—

गाँव में जाने पर जब मैंने सुना कि इन आदमियों में मद्यपान ने भयंकर उत्पात मचा रखा है। तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। कुछ स्त्रियों की आँखों में आंसू भरे हुए थे। वे क्या कर सकती हैं? एक भी ऐसी स्त्री नहीं, जो हमारे बीच से सदा मद्य को बाहर निकाल देने को पसन्द न करती हों। यह न जाने कितने घरेलू दुखों गरीबी और गिरे हुए स्वास्थ्य और शरीर नाश का कारण है। हरब मामूली स्त्री को ही पुरुष के इस दुर्व्यसन का बोझ उठाना पड़ता है। मैं स्त्रियों को क्या करने की सलाह दे सकती हूँ? क्रोध और उसके साथ निर्दयता का सामना करना बड़ा ही कठिन है। मैं कितना चाहती हूँ कि इस प्रान्त के नेता अपना समझ शक्ति, और दिमाक साम्प्रदायिक बटवारा के अन्याय पर खर्च करने की जगह इस बुराई को दूर करने में लग जाते। हम ऐसी मामूली चीजों के लिये असली बातों की उपेक्षा कर रहें हैं, जो हमारे देशवासियों की नैतिक मर्यादा में उन्नति होने पर अपने आप हल हो जा सकती हैं। क्या आप मद्यपान के सम्बन्ध में लोगों से एक लिखित अपील नही कर सकते? इस व्यधि के कारण लोंगो को पूर्णतः महा नाश की ओर जाते देखकर महाशोक होता है।

जो पीते हैं उनसे मैं अपील करुंगा तो वह व्यर्थ जायगी और ऐसा होना लाज़िमी है। वे हरिजन, नहीं पढ़ते। अगर पढ़ते भी हैं तो उपहास करने के लिये पढ़ते हैं। उन्हें मद्यपान की आदत से होने वाली बुराई को जानने की कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। वे उस बुराई से चिपटे हुए हैं। पर मैं इस बहिन को और उसके द्वारा हिन्दुस्तान की समस्त नारियों को याद दिलाना चाहूँगा कि दांडी यात्रा के समय भारत की स्त्रियों ने मेरी सलाह सुनी थी। और

मद्यपान के खिलाफ़ युद्ध करना और चरखा चलाना उनकी विशेषता बन गई थी। इस लेखिका (बहिन) को यह बात याद करनी चाहिए कि हजारों स्त्रियों ने निर्भय होकर शराब की दूकानों पर धरना दिया था और इस दुर्व्यसन में फसे हुए लोगों से अपनी आदत छोड़ देने की उनकी अपील प्रायः सफल हुई थी। अपने स्वेच्छा पूर्वक अंगीकृत इस कार्य में उनको मद्यपतियों की गालियाँ सुननी पड़ी और कभी कभी उनके हाथ मार पीट भी खानी पड़ी। शराब की दूकानों पर धरना देने के अपराध में सैकड़ों जेल गईं। उनके उत्साह पूर्ण कार्य ने सारे देश उनके उत्साह पूर्ण कार्य ने सारे देश पर अद्भुत प्रभाव डाला। पर दुर्भाग्य वश सविनय अवज्ञा के बन्द हो जाने से तथा उसके बन्द होने से पहले से ही, इस काम में ढिलाई आ गई। इस शिथिलता के कारण बनाये इसमें मैं आना नहीं चाहता। किन्तु इस काम से लिए आज भी कार्य कर्त्ताओं की जरूरत है। स्त्रियों की प्रतिज्ञा अधूरी पड़ी है। वह एक खास अवधि के लिये नहीं ली गई थी और वह तब तक पूरी नहीं हो सकती जब तक कि सारे देश में मद्यपान निषेध की घोषणा न कर दी जाय। स्त्रियों का भाग उज्जवलतर था। पुरुष में जो श्रेष्ठतम हैं, उसे अपील करके शराब की दूकानों को सूनीकर मद्य-निषेध की सफलता उनका काम था। अगर उन्होंने अपना काम जारी रखा होता, तो उनकी सद्भावना और शालीनता ने निश्चय ही पियक्कड़ों को उनके इस दुर्व्यसन से उबार लिया होता।

पर अभी कुछ गया नहीं है। आज भी स्त्रियाँ इस आन्दोलन का संगठन कर सकती हैं। जिनके सम्बन्ध में लेखिका ने लिखा हैं। उनकी पत्नियाँ यदि मद्यनिषेध के सम्बन्ध में सच्ची हैं, तो वे जरूर ही अपने पतियों का स्वभाव बदल देंगी। स्त्रियां नहीं जानती कि वे अपने पतियों पर अच्छी दिशा में कितना असर डाल सकती हैं। निस्सन्देह वे अन जाने यह प्रभाव रखती हैं, पर इतना

ही काफी नहीं है। उन्हें इसका ज्ञान भी होना चाहिए और यह ज्ञान उन्हें शक्ति देगा और बतायगा कि वे उन्हें अपने जीवन संगी से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। करुणा कि बात यह है कि अधिकांश स्त्रियां अपने पतियों के कार्यों में दिलचस्पी नहीं लेतीं, वे सोचती हैं कि उन्हें इसका अधिकार नहीं है। उनको यह नहीं समझ पड़ता कि उन्हें ठीक वैसे ही अपने पतियों के चरित्र की रक्षा करने का अधिकार है। जैसे उनके पतियों को उनके चरित्र का अभिभावक होने का अधिकार है किसकी इससे साफ बात और क्या हो सकती है कि पति और पत्नी एक दूसरे के गुण दोष में समान रूप से भागीदार हैं! पर सिवा स्त्री के दूसरा कौन पतियों में उनकी शक्ति और कर्तव्य का भाव जगा सकता है? यह तो असल में मद्यपान के विरुद्ध स्त्रियों के आन्दोलन का एक हिस्सा है।

ऐसी योग्य स्त्रियाँ काफी तादाद में होनी चाहिएँ जो मद्यपान सम्बन्धी आंकड़ों तथा जिन कारणों से मद्यपान की ओर प्रवृति होती है उनका और उनसे छूटने के उपायों का पूरी तरह अध्ययन करें। उन्हें पिछली बातों से सबक़ लेना चाहिए और जानना चाहिए कि पियक्कड़ों से मद्यपान छोड़ देने की अपील करने मात्र से स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस व्यसन को एक रोग समझकर इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में कुछ स्त्रियों को शोधी विद्यार्थियों का रूप ग्रहण करना होगा और इस विषय में अनेक प्रकार के शोध करने होंगे। सुधार के हरेक शाखा में लगातार अध्ययन की, जिससे अपने विषय पर पूरा पूरा अधिकार प्राप्त हो जाय, जरूरत है। जिन सुधार आन्दोलनों की खूबिया स्वीकार की जा चुकी है। उनकी आँशिक या सम्पूर्ण असफलता के मूल में अज्ञान ही रहा है। क्योंकि प्रत्येक कार्य के लिए जो सुधार के नाम पर चलता है जरूरी नहीं कि वह इस नाम से पुकारे जाने के योग्य हो।

नव विवाहितों से

हूदा में गांधी सेवा संघ की वार्षिक सभा में गांधी ने अपनी पोती और महादेव देसाई का लड़की का विवाह संस्कार किया। संस्कार समाप्त होने पर उन्होंने नव विवाहितों से कहा :—

तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरा संस्कारों में वहीं तक विश्वास है जहाँ तक वे हमारे भीतर कर्तव्य का जाग्रति करते हैं। जब से मैंने अपने बारे में सोचना शुरू किया, मेरा यही विचार रहा है। तुम लोगों ने जिन मंत्रों का उच्चारण किया है और जो प्रतिज्ञायें ली हैं, वे सभी संस्कृत में थीं और उनका अनुवाद तुम्हारे वासते किया गया। हमारे यहाँ संस्कृत भाषा थी, क्यों कि मैं जानता हूँ, संस्कृत शब्दों में ऐसी शक्ति है कि किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकती हैं।

पति इस संस्कार के अवसर पर जो इच्छायें प्रकट करता है उनमें से एक यह है कि उसकी स्त्री सुन्दर और स्वस्थ पुत्र की माँ हो। इससे मुझे कोई धक्का नहीं लगा। इसका अर्थ यह नहीं कि सन्तानोपत्ति आवश्यक है,

परन्तु यह कि यदि संतानोत्पत्ति करनी हो तो धर्मिक रूप से विवाह संस्कार होना आवश्यक है। जिसे सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा न हो उसे विवाह करने की बिलकुल आवश्यकता नहीं। वासना की तृप्ति के लिए किया। विवाह ही नहीं है व्यभिचार है। अतः आज के संस्कार का यही अर्थ है कि संभोग तभी किया जाय जब स्पष्टः संतान की इच्छा हो। और ऐसा प्रार्थना के साथ करना चाहिए। इसके पहले का काम प्रेमाचार नहीं है जिसका उद्देश्य लैङ्गिक उत्तेजना और सुख की प्राप्ति है।

इस प्रकार जीवन भर में स्त्री पुरुष केवल एक वार संभोग कर सकते हैं, यदि उन्हें दूसरे सन्तान की इच्छा न हो। जो स्वस्थ नहीं

हैं उनके संभोग करने की आवश्यकता नहीं और यदि वे ऐसा करें तो केवल व्यभिचार होगा। यदि तुमने यह समझा हो कि विवाह वासना-तृप्ति के लिए ही किया जाता है तो इसे भूल जाओ। यह एक अंधविश्वास है। सारे संस्कार पवित्र अग्नि के सामने किए जाते हैं। अग्नि को अपनी सारी बासना भस्म कर डालते हो। मैं तुमसे एक और प्रचलित अंधविश्वास से बचने को कहूँगा। यह कहा जाता है कि निरोध और आत्मसंयम ठीक नहीं और लैङ्गिक भूख की स्वतन्त्र तृप्ति तथा स्वच्छन्द प्रेम नितान्त स्वाभविक है।

इससे अधिक भयानक अंधविश्वास कोई रहा हो नहीं। हो सकता है तुम आदर्श की प्राप्ति में असमर्थ हो, किन्तु इससे यह अर्थ नहीं कि तुम अधर्म को धर्म मानों, और आदर्श को अपवित्र करो। अपनी कमजोरी के समय में जो मैं कह रहा हूँ उसे स्मरण करो। इससे तुम बच सकोगे और दृढ़ होगे विवाह का उद्देश्य ही संयम और वासना का परिस्करण है। यदि इसका कोई और उद्देश्य है तो वह विवाह नहीं और उसका उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति नहो, बल्कि कुछ और ही है।

तुम विवाह द्वारा मित्रता और समानता के सूत्र में बंध रहे हो। यदि एक स्वामी है तो दूसरी स्वामिनी—दोनों जीवन में एक दूसरे का स्वामी, सहायक और सहयोगा हैं। मैं बालकों से यह कहता हूँ 'तुम लड़कियों में ऐसी भावना जगाओ, उनके सच्चे शिक्षक और मार्ग प्रदर्शक बनो। लेकिन कभी उन्हें रोकने या गलत रास्ता दिखाने की चेष्टा मत करो। अपने भीतर बिचारो, शब्दों और कार्यों में साम्य रक्खो। तुम्हारे आत्मा एक हो, तुम्हारे बीच कुछ गोपनीय न रहे।

आडम्बर मत करो। जो तुम्हारे लिये असाध्य हो उसमें अपना स्वास्थ्य मत नष्ट करो। संयम से स्वास्थ्य कभी नहीं बिगड़ता बल्कि वाह्य दमन से। आत्म संयत पुरुष को दिन प्रति दिन आधिक शक्ति और शान्ति प्राप्ति होती है। सब से पहले बिचारों का संयम होना

चाहिए। अपनी कमी का अनुभव करो और जो तुम कर सको उतना ही करो। मैंने तुम को आदर्श बताया है और तुम इसे प्राप्त करने की यथा शक्ति चेष्टा करो। यदि तुम असफल रहे तो दुःख और लज्जा की बात नहीं। मैंने यही बताया है कि यज्ञोपवीत—संस्कार की भाँति विवाह भी एक पवित्र संस्कार और नया जन्म है। मेरे कथन से तुम्हें कमजोरी और भय नहीं मानना चाहिए। बिचार, शब्द और कार्य का पूर्ण सामजस्य प्राप्त कारना ही सदा तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए। बिचारों को पवित्र रक्खो, फिर सब ठीक हो जायगा। बिचारो से अधिक शक्ति शाली कुछ नहीं है। कवि शब्द का और शब्द बिचार का अनुगामी है। सारा संसार एक महान विचार का परिणाम है और जब विचार महान है और पबित्र होता है तो उसका फल महान और पवित्र ही होता है। यह पवित्र आदर्श तुम्हारा कवच बने, यही मेरी कामना है और मैं विश्वास दिलाता हूँ किसी प्रकार की लालच तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकती और न किसी प्रकार की अपवित्रता ही तुम्हें छू सकती है।

जो तमाम संस्कार बताये गये हैं उन्हें याद करो। मधुपर्क संस्कार ही को लो। सारा संसार मधुमय है और सबको अपने अपने भाग लेने पर तुम भी अपना भाग लो। इससे त्यक्त भाव के साथ भाग का बोध होता है।

उनसे से एक वर ने पूछा क्या यदि सन्तानोत्पत्ति न करना हो तो विवाह होना ही नहीं चाहिए।"

निश्चय ही न होना। मैं प्लेटो के मतानुसार किये गए विवाह में विश्वास नहीं करता कुछ लोगों ने स्त्रियों की रक्षा के लिये विवाह किये थे किन्तु उनका शारीरिक एकता का उद्देश्य न था और इस तरह के विवाह बहुत कम हुए भी है। पवित्र विवाहित जीवन के

विषय में जो कुछ मैंने लिखा है, उसे तुम्हें पढ़ना चाहिए। मैं महाभारत में प्रतिदिन जो कुछ पढ़ता हूँ उसका मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। ऐसा कहा गया है कि व्यास ने नियोग किया था वे सुन्दर नहीं, वरन् इसके विरुद्ध ही थे। ऐसा दिखाया गया है कि वे भयानक थे और उन्होंने सयोग के पूर्व अपने सारे शरीर में घी लगाया था। उन्होंने संभोग वासना के लिये नहीं, बल्कि संतानोत्पत्ति के लिए किया था। संतान की इच्छा स्वाभाविक है और जब एक बार यह इच्छा पूरी हो जाय फिर पति पत्नी मिलन की आवश्यकता नहीं।

मनु ने पहले बच्चे को धर्मज कहा है—कर्तव्य की भावना से उत्पन्न किया गया—और उसके बाद वालों को कामज लैङ्गिक सम्बन्धी नियमों का यह सार है और ईश्वर नियम के अतिरिक्त है ही क्या? नियम पूर्वक चलना ही ईश्वर की आज्ञा मानना है। याद रखो तुमसे तीन बार दुहराने को कहा गया था, मैं किसी प्रकार नियमों का उल्लंघन नहीं करूँगा यदि थोड़े भी लोग नियम पूर्वक रहते तो एक हृष्ट पुष्ट और सच्चे पुरुषों और स्त्रियों की जाति बन जाती।

याद रक्खो मुझे अपने विवाहित जीवन का आनन्द तब मिला, जब मैंने बा की ओर वासना की दृष्टि से देखना छोड़ दिया। मैंने उस समय संयम की प्रतिज्ञा ली जब पूर्ण युवक था और समाज द्वारा स्वीकृत रूप से विवाहित जीवन का आनन्द ले सकता था। यकायक मुझे ज्ञात हुआ कि मेरा जन्म एक विशेष संदेश देने को हुआ था। जब मेरा विवाह हुआ था तो मैंने ऐसा नहीं जाना था। लेकिन सचेत होने पर मैंने देखा कि विवाह जिस संदेश को लेकर मेरे हास आया था, विवाह उसी के लिए था मैंने अपना धर्म पहचाना। हमें सच्चा सुख पतिज्ञा लेने के बाद ही मिला। 'वैसे तो बा' दुबली पतली दिखाई देता है किन्तु उनका गठन सुन्दर है और वे सुबह

से शाम तक काम करती हैं। यदि मैं उन्हें अपनी वासना का साधन बनाये रहता तो ऐसा वह कभी नहीं कर पातीं।

फिर भी इस विचार से कि मैंने कुछ वर्ष तक विवाहित जीवन का भोग कर लिया था, मैं देर में सचेत हुआ। ठीक समय पर जगाये जा रहे हो, यह तुम्हारा सौभाग्य है। मेरे विवाह के समय परिस्थितियाँ बड़ी बुरी थीं और तुम्हारे लिये परिस्थितियाँ बड़ी मंगल सूचक हैं। मुझमें एक ही चीज थी, मुझे रास्ता दिखाती रही और वह थी सत्यता। इसी ने मुझे बचाया। सत्य मेरे जीवन की नींव है। ब्रह्मचर्य और अहिंसा बाद में सत्य से ही आये। तुम कुछ भी करो, तुम्हें अपने और संसार के प्रति सच्चा होना चाहिए। अपने विचारों को मत छिपाओ। यदि उन्हें प्रकट करने में लज्जा आती हो तो उनको सोचना और भी लज्जाजनक है।

"आश्चर्य जनक निष्कर्ष"

प्रकाशक की भूमिका के अनुसार विलियम आर थर्सटन संयुक्त राष्ट्र में एक मेजर थे जिसमें उन्होंने दस साल काम किया था। और इतने समय में उन्होंने चीन इत्यादि कई देशों के विषय में विभिन्न अनुभव किये। उन्होंने अपनी यात्राओं में विवाह के नियमों और रीतिरिवाजों का अध्ययन किया और फलस्वरूप उन्हें इस पर एक पुस्तक लिखने की इच्छा हुई। इस पुस्तक में जिसका नाम 'विवाह के सम्बन्ध में थर्सटन के विचार' है और जो गतवर्ष न्यूयार्क के टिफैनी प्रेस से निकली है, केवल ३२ पृष्ठ हैं और वह एक घण्टे से कम में पढ़ी जा सकती है। लेखक ने विस्तृत रूप से

तर्क वितर्क नहीं किया है, बल्कि कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो प्रकाशक के मतानुसार आश्चर्यजनक हैं। प्राक्कथन में लेखक ने यह निश्चित रूप से कहा है कि उनके निष्कर्ष, युद्ध के व्यक्तिगत अनुभवों, हकीमों के निरीक्षणों और सामाजिक स्वास्थ्य पाठ तथा औषधि सम्बन्धी गणना के आधार पर निकाले गये हैं। उनके निष्कर्ष ये हैं।

१—"प्रकृति सदा से यही चाहती है कि स्त्री अपने निवास और भोजन के लिए तथा सन्तानोत्पत्ति का स्वाभाविक अधिकार प्राप्त करने के लिए पुरुष के साथ बँधी रहे और वह एक ही घर और शय्या सेवन करने को, चाहे वह गर्भिणी हो या न, बाध्य रहे।

२—विवाहित जीवन में प्रतिदिन जो कलह और अशान्ति प्रचलित सामाजिक नियमों और रीति रिवाजों के कारण, उत्पन्न होते हैं, उनसे ९० प्रतिशत स्त्रियाँ अंशतः वैश्याओं का जीवन व्यतीत करती हैं। ऐसा केवल इस लिये होता है कि स्त्रियों को यह विश्वास कराया जाता है कि इस प्रकार का वैश्या जीवन नियमानुसार होने तथा अपने पतियों का प्रेम प्राप्त करने के लिए आवश्यक होने के कारण, उचित और स्वाभाविक है।"

लेखक ने आगे चलकर असंयत और सतत सभोग के परिणाम दिखाये हैं, जिन्हें मैं निम्नलिखित रूप में रख रहा हूँ।

(अ) "स्त्रियों के अधिक......होने, असामायिक रूप से विकसित होने, रोगी, क्रोधी, अशान्त, बालबच्चों का ठीक से देखभाल करने में असमर्थ होने का कारण यही है।"

(ब) "गरीबों में इससे अन चाही सन्तान वृद्धि होती है।"

(स) "सम्पन्न लोगों में असंयत सभोग का परिणाम संतति निरोध के कृत्रिम साधनों का प्रयोग और गर्भपात होता है।"

"यदि बड़े पैमाने पर लोगों में संतति—निरोध या किसी भी रूप में कृत्रिम साधनों का प्रयोग स्त्रियों के लिए किया जाय, तो सारी जाति रोगग्रस्त, चरित्रभ्रष्ट और अन्त में वह नष्ट हो जायगी।"*

(* लेखक के शब्द हैं)

(द) "अधिक संभोग से सुन्दर जीविका उपार्जन के लिए आवश्यक शक्ति का नाश होता है।" 'आजकल संयुक्तराष्ट्र में पुरुषों की अपेक्षा २० लाख स्त्रियाँ अधिक विधवा हैं इनमें से युद्ध में मारे गये पुरुषों के कारण विधवायें कम हैं।"*

(य) "आजकल प्रचलित विवाह के नियमों और रीतियों से स्त्री और पुरुष दोनों में निस्सारता की भावना जागती है।" "संसार में आज जो निर्धनता, और बड़े बड़े शहरों में जो अशान्ति और कष्ट फैला हुआ है, वह इसलिए नहीं कि करने के लिए अच्छे काम नहीं हैं, बल्कि इसीलिए कि वर्तमान विवाह के नियमों के कारण, असंयत भोग विलास फैला हुआ है।"*

(फ) " मनुष्य जाति के भविष्य के विचार से सब से भयानक गर्भ के दिनों का संभोग है।"

इसके बाद लेखक ने चीन और भारत के विषय में विचार प्रकट किये हैं, जिस पर मैं कुछ नहीं कहना चाहता। यहाँ पहुँच कर पुस्तक का आधा समाप्त हो जाता है। दूसरे आधे में उन्होंने कुछ सुझाव दिये है। उनमें से मुख्य यह कि पति और पत्नी अलग कमरों में और अनिवार्य रूप से अलग अलग बिस्तरों पर रहें और उन्हें तभी इकट्ठा होना चाहिए जब उनकी और विशेष रूप से स्त्री की इच्छा हो। विवाह के नियमों में जिन परिवर्तनों को सुझाया गया है, उन्हें मैं नहीं लिखना चाहता। संसार भर में विवाह के नियमों में जो एक लगभग सर्वनिष्ठ बात है वह है एक ही कमरे में और एक ही बिस्तरे

का सेवन है और इसकी लेखक ने तीव्र अलोचना की है। और यह ठीक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारी बहुत कुछ बासना चाहे स्त्री हो या पुरुष, यह धार्मिक अन्धविश्वास है, कि बिवाहित स्त्री पुरुष एक ही कमरे में और एक ही बिस्तरे पर रहें। इस प्रकार के अन्धविश्वास से प्रभावित वातावरण में रहने के कारण हम इस के भयानक परिणाम को नहीं समझ सकते।

लेखक ने कृत्रिन साधनो का भी उतना ही तीव्र विरोध किया है।

लेखक के अन्य सुलभाओं में से बहुत से ऐसे हैं जो कार्य रूप में हमारे लिये अधिक लाभदायक नहीं और उनके लिये कानून की सम्मति भी आवश्यक हैं। किन्तु प्रत्येक पति और पत्नी यह दृढ़ निश्चय कर सकता है कि आज से अलग कमरों और बिस्तरो का प्रयोग करेंगे और केवल उस पवित्र कार्य के लिए मिलेंगे जो पुरुषों और पशुओं दोनों के लिए है।

पशु इस नियम का पालन बराबर करता है। मनुष्य ने गलत रास्ता चुना और यह बड़े दुःख की बात है। कृत्रिम साधनो के प्रयोग करने से हर स्त्री इनकार कर सकती है। पुरुष और स्त्री दोनों को यह समझ लेना चाहिए कि कामेच्छा के दमन से रोग नहीं पैदा होते बल्कि स्वास्थ्य और स्फूर्ति मिलती है यदि शरीर के साथ मन भी सहयोग दे।

लेखक का विश्वास है कि संसार में फैली हुई तमाम खराबियों के लिए आज कल के बिवाह के नियम ही उत्तरदायी है। मैंने जो दो सुझाव रखे हैं उनके निर्णय के लिये लेखक की भाँति विश्वास करने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध पर स्वस्थ रूप से बिचार करे और भविष्य की पीढ़ी के लिए अपने को संरक्षक समझें तो बहुत से कष्ट मिट जायँगे।

———

सन्तान निग्रह को एक समर्थक

गरीबों की सेवा में देने के लिए अपना सर्वस्व लेकर आने वाले उस गरीब के विपरीत श्रीमती हाऊ मार्टिन थीं। वे इंगलैंड की थी और संतान-निग्रह आन्दोलन की उत्साही कार्य कर्त्री थीं। वे अपना मंत्र हिन्दोस्तान की गरीब जनता को सहायता के लिए इंग्लैंड से लेकर आई थी और उनके आने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे या तो गांधी जी को अपने विचारों का बनावे या स्वयं उनके विचारों को हो जाय। वे पहली बार हिन्दोस्तान आई थी। गरीबों को उन्होंने पहले शायद ही देखा हो। इसलिये वे ब्रिटिश गरीब बस्तियों के बारे में अपने अनुभवों का जिक्र करती रहीं और 'बेचारी स्त्री' के पक्ष समर्थन में जोरदार दलीलें रखी जिसे वलो पुरुष की इच्छा के प्रमुख नत होना पड़ता है।

उनकी पहली ही बात पर महात्मा गांधी ने कहा "कोई बेचारी, स्त्री तो है ही नहीं। बेचारी स्त्री पुरुष की अपेक्षा कहीं सबल है और यदि आप हिन्दोस्तान के गांवों में चले तो मैं आप को यह दिखा सकता हूँ। वह आप से बतायेगी कि यदि वह इसे न पसन्द करे तो उसको बाध्य करने वाली स्त्री या पुरुष कोई पैदा ही नहीं हुआ। यह मैं अपनी पत्नी के सम्बन्ध में हुए अपने अनुभव द्वारा कह रहा हूँ और मे उदाहरण अकेला नहीं। यदि दब जाने की अपेक्षा मर जाने का संकल्प हो तो कोई दानव भी एक स्त्री को जीतने के लिए विवश नहीं करता। यह तो एक पारस्परिक समझौते की बात है। पुरुष और स्त्री दोनों पाशविक और दैवी शक्तियों का मिश्रण है। यदि हम पाशविक शक्ति का दमन कर सकें तो अच्छा ही है।"

"लेकिन यदि पुरुष अधिक सन्तान न पैदा करने के लिए दूसरी स्त्रियों के पास जाता है तो स्त्री के पास क्या चारा है?"

"सो अब आप अपना तर्क बदल रहे हैं। यदि आप अपनी बात अच्छी तरह न समझ लेंगे तो गलत निर्णय पर पहुँचना अनिवार्य है। बातों की कल्पना करके पुरुष को अपुरुष और स्त्री को अस्त्री बनाने की कोशिश न करे। मुझे अपने सिद्धान्त का आधार समझने में, जब मैंने यह कहा था कि आप का संतान निग्रह प्रचार ही पर्याप्त भूमिका है तो उस परिहास के पीछे एक गम्भीर बात थी क्योंकि मैं जानता हूँ कि बहुत से पुरुष और स्त्री ऐसे हैं जो समझते हैं कि संतान निग्रह में ही उनकी मुक्ति है।"

श्रीमती हाऊ मार्टिन बोली, "मैं इसमें संसार की मुक्ति नहीं देखती, पर मेरा कहना यह है कि बिना किसी प्रकार का सन्तान निग्रह के मुक्ति नहीं हो सकती। हो सकता है कि आप इसके लिये एक मार्ग ग्रहण करें और मैं दूसरा। मैं आपके मार्ग का समर्थन करती हूँ, लेकिन हर अवसर पर नहीं। आप, ऐसा जान पड़ता है एक सुन्दर कार्य को निषेधपूर्ण समझते हैं। दो पशु जब वे एक नवजीवन की सृष्टि करने जाने लगते हैं तब वे दैविकता के अधिक निकट होते हैं। उस कार्य में कुछ बहुत ही सुन्दर है।"

"यहां भी अब फिर मुझमें है—गाँधी जी ने उत्तर दिया, "मैं स्वीकार करता हूँ कि नवजीवन की उत्पत्ति दैविकता के अधिक निकट है। मैं सिर्फ यह चाहता हूँ कि मनुष्य उस कार्य के निकट एक दैविक भाव के साथ जाय। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि स्त्री पुरुष का सम्मिलिन केवल नव जीवन का सृष्टि की ही कामना से हो, दूसरी से नहीं। लेकिन यदि वे दोनों केवल प्रेमालिंगन के लिए एक दूसरे के निकट जाते हैं तो वे पाशविकता के अधिक निकट हो जाते हैं। दुर्भाग्यवश आदमी यह भूल जाता है कि वह दैविकता के

निकट है और पाशविक अन्तर्प्रेरणा के पीछे पड़ कर पशु के समान हो जाता है।"

"लेकिन आप पशुत्व से क्यों घृणा करते हैं ?"

"मैं नहीं करता। पशु अपनी प्रकृति के नियम को पूरा करता है। शेर अपने गौरव में एक सुन्दर जीवन है। मुझे खा लेने का उसे पूरा अधिकार है। लेकिन पंजे बढ़ा कर आप पर झपट पड़ने का अधिकार मुझे नहीं है। उस स्थिति में, मैं अपने को नीचे गिरा देता हूँ और पशु से भी बदतर बन जाता हूँ।"

"श्रीमती हाऊ मर्टिनी ने कहा, "मुझे खेद है कि मैंने अपनी बात इस बुरे ढङ्ग से कही। मैं यह स्वीकार करती हूँ कि बहुत सी स्थिति में इससे उसकी मुक्ति नहीं। लेकिन उच्च जीवन के लिए सहायक अवश्य होगा। मैं समझती हूँ आप मेरा अभिप्राय समझ गये हों। यद्यपि मुझे भय है कि मैं अपने अभिप्राय को स्पष्ट नहीं कर सकती।"

"न, न, मैं आपसे कोई अनुचित लाभ उठाना नहीं चाहता किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप मेरे दृष्टिकोण के सम्बन्ध में समझ लें भ्रान्तियों के साथ न माँगे। पुरुष को दो मार्गों में से एक को चुनना होगा, उन्नतिशील या अधोशील, किन्तु यदि उसमें पशुत्व है तो वह अधोशील मार्ग को अधिक आसानी से चुनेगा। और विशेषतया जब कि वह मार्ग उसे एक सुन्दर आवरण के अन्दर पेश किया जायगा।

पाप को आसानी से स्वीकार करता है यदि वह सदाचार के आवरण के साथ हो और यही काम मेरी स्टोक्स आदि कर रहे हैं। यदि मुझे संभोग कार्य का प्रचार करना होता तो मैं जानता हूँ कि पुरुष इसे तुरन्त स्वीकार कर लेता। मैं जानता हूँ कि आप ऐसे लोग स्वार्थ रहित जोश में अपने सिद्धान्त के लिए यदि गला फाड़

फाड़ कर चिल्लायें तो प्रत्यक्ष रूप से आपको सफलता भी मिल सकती है लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि आप निश्चित अंत भी प्राप्त करेंगी। इसमें संदेह नहीं जो हानि आप कर रही हैं उसका ज्ञान आपको न होगा। अधोशील अन्तर्प्रेरणा के लिए न तो किसी प्रकार के प्रचार की जरूरत है, न तर्क की। यह तो उनमें है ही। और आप इसे संयमित और नियन्त्रित न करेंगी तो बीमारियों का खतरा है।"

श्रीमती हाऊ मार्टिन जो अभी तक ऐसा प्रतीत होता था कि दैविक और पाशविक के अन्तर को स्वीकार कर रही थी बोली कि उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है और जैसा कि लोग कल्पना करते हैं उससे कहीं अधिक वे दोनों एक दूसरे के सहयोगी है। वास्तव में संतान निग्रह के सिद्धान्त के पीछे यही बात है और उसके समर्थक यह भूल जाते हैं कि यही उनका आनंद चरण है।

"सो आपका विचार यह है कि पाशविक और दैवी एक ही है। क्या आपको सूर्य में विश्वास है? और यदि आप विश्वास करतीं हैं तो क्या आप यह नहीं सोचती कि छाया भी होगी?" गांधी जी ने पूछा

"आप छाया को पाशविक क्यों कहते है?"

"यदि आप चाहें तो इसे 'अनीश्वर' कह सकती है।"

"मैं यह नहीं समझती कि छाया में 'अश्नीवर' है। जीवन तो सब जगह है?"

"जीवन के अभाव की सी एक चीज है। क्या आप जानती हैं कि हिन्दू शरीर में जीवन के निकल जाने के बाद अपने प्रिय से प्रिय जन के शरीर को गला कर राख कर देते हैं। सभी जीवों में एक अनिवार्य एकता है लेकिन विरोध भी है और मनुष्य को उसे चीर कर एकता प्राप्त करनी पड़ती है लेकिन मस्तिष्क द्वारा नहीं

मै या कि आप करने की कोशिश कर रही है। जहाँ सत्य है वहाँ असत्य भी है जहां प्रकाश है यहाँ छाया भी होगी। बिस्तृत जागृति का अनुभव आप तब तक नहीं कर सकती जब तक कि आप बुद्धि, ज्ञान और शरीर को पूर्णतया अपने अधिकार में न कर लेगी।"

श्रीमती हाऊ मार्टिन परेशान दिखाई पड़ने लगी और समय बीतता जा रहा था लेकिन गाधी जी ने कहा—"नहीं, मैं आपको और अधिक समय देने को तैयार हूँ। लेकिन इसके लिए आप बर्धा आवे और मेरे पास ठहरें। मैं भी आपही की तरह इसका समर्थक हूँ और जब तक आप मुझे अपने विचारों वाला न बना लें या मैं आपको अपने विचारों वाली न बना लूँ तब तक आप हिन्दोस्तान से न जायँ।"

दूसरे कामों के कारण यह बार्तालाप समाप्त हो गया लेकिस जब मैं उस वार्तालाप को सुन रहा था तो मुझे असीसी के संत फांसिस के यह शब्द स्मरण हो आये 'प्रकाश ने नीचे की ओर देखा तो उसे अंधकार दिखाई दिया 'मैं वहाँ जाऊँगा' प्रकाश ने कहा। शांति ने नीचे की ओर देखा तो उसे यह दिखाई दिया और शांति ने कहा,—मैं वहाँ जाऊँगी ; प्रेम ने नी . की ओर देखा तो घृणा दिखाई दी, प्रेम ने कहा, 'मैं वहाँ जाऊँगा' और यह शब्द मांस पिंड बनकर हमारे साथ रहने लगे।"

श्रीमती सेंगर और सन्तति निग्रह

श्रीमती सेंगर ने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है :—

"अपने लेख (विदेशियों के नये नये हमले) में मेरे और

गांधीजी के बीच हुई बातचीत देते हुए आप कहते हैं कि 'इल्लस्ट्रेटेड वीकल' के अपने लेख में मैंने उस बातचीत का सिर्फ एक ही पहलू रखा है। आपकी यह बात बिल्कुल ठीक है। उस लेख में, दरअसल, उसी पर मैं विचार भी करना चाहती थी।

मुझे यह भी बता देना चाहिए। उस लेख को छपने के लिए भेजने से पहले मैंने आपकी और गांधी जी की एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टर को पढ़कर सुना दिया था—और जिसे आप "परदे की ओट में दुर्भाव" कहते हैं वह बात उन्होंने ही सुझाई थी। कृपया इस बात का यकीन रखें कि जो बहादुर स्त्री पुरुष हिन्दुस्तान की आजादी के लिए प्रयत्न कर रहे हैं उन सबके प्रति मेरे मन में अत्यधिक श्रद्धा और सम्मान का ही भाव है। मैंने अभी तक जो कुछ किया है उस पर आप नजर डालें तो हिन्दुस्तान में आज़ादी प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले प्रयत्नों की मदद की गरज़ से सन् १९१७ में जो पहला दल अमेरिका में संगठित हुआ था उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

एक और बात भी आपके लेख में ऐसी है जिसमें, मैं समझती हूँ, आप ग़लती पर है। वह यह कि आप उसमें यह जाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीत में गांधी जी ने (ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर) ऐसे दिनों में समागम के उपाय को स्वीकार कर लिया है जिनमें गर्भ रहने की सम्भावना प्राप्त नहीं होती। मेरे ख्याल में आप टाइप किये हुए वक्तव्य को देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा, "यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है।" हालांकि मैंने और निश्चित बात कहने का आग्रह किया। लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालत में आपने सार्वजनिक रूप से जो कथन उनका बताया है; मेरे ख्याल में, वह आपने ठीक नहीं किया, और अन्त

में आपने प्रचारकों के "व्यापार" की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गांधी जी आपसे सहमत होंगे। वह वाक्य, और जिस भावना का वह सूचक है वह, आप जैसे व्यक्ति के लायक नहीं है जिसने कि निःस्वार्थ भाव से जन सेवा का कार्य किया है।

संतति-निग्रह के कार्यकर्त्ता जिस बात को मानव स्वतंत्रता एवं प्रगति के लिए मनुष्य मात्र का मौलिक स्वत्व मानते हैं उसके लिए निःस्वार्थ भाव से और बिना किसी परिश्रम के उन्होने सग्राम किया है और अभी भी कर रहे हैं। फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारे में यों ही कोई ऐसी बात कह देना तो सर्वथा अनुचित असौजन्य पूर्ण और असत्य है, जो दर असल बिल्कुल बे बुनियाद हो।

इसमें जहाँ तक "पर्दे की ओट में दुर्भाव" से सम्बन्ध है मैं प्रसन्नता से और कृतज्ञता पूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूं। लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोर्खी और तुनक मिज़ाजी के लहज़े में वह लेख लिखा हुआ है उससे यही भाव टपकता हैं, हालांकि अब मैं यह मान लेता हूँ कि उनका ऐसा भाव नहीं था।

दूसरी गलती के बारे में, श्रीमती सेंगर को यह याद रखना चाहिए कि उन्होने तो "बातचीत के सिर्फ़ एक पहलू को ही" लिया है। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं नहीं समझता कि यह कहकर कि ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर ऐसे दिनों में समागम का बात गांधी जी सहन कर लेंगे जिनमें गर्भ रहने का रहने की सम्भावना प्राप्त नहीं होती, क्योंकि इसमें आत्मसंयम की थोड़ी वहुत भावना तो है। मैंने उन्हें किसी ऐसी स्थिति में डाल दिया है जो उन्हें पसन्द नहीं है। मैं तो सिर्फ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधी की बात को भी जहाँ तक सम्भव हो, किस तत्परता के साथ गाँधी जी स्वीकार कर लेते हैं। उन्होने जिस कारण

यह कहा कि "यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है" वह इस विषय में बड़ी मुद्दे की बात है। क्योंकि श्रीमती सेंगर के उपाय (कृत्रिम संतति निग्रह) से जहाँ महीने के सभी दिनों में विषय भोग में प्रवृत्त होने की छुट्टी मिल जाती है वहाँ इस विशेष उपाय से किसी हद तक तो आत्मसंयम होता ही है।

"व्यापार" वाली बात, मैं समझता हूँ, श्रीमती सेंगर को बहुत बुरी लगी है। लेकिन खुद श्रीमती सेंगर पर मैंने ऐसा कोई आरोप नहीं किया न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था। क्योंकि मुझे मालूम है उन्होंने अपने उद्देश्य के लिए बड़ी बहादुरी और निःस्वार्थ भाव से लड़ाई लड़ी है। मगर यह बात बिलकुल गलत भी नहीं है कि संतति निग्रह के लिए आज कल जो प्रचार हो रहा है वह तथा संतति निग्रह के प्रायः सभी उत्साही समर्थकों के यहाँ बिक्री के लिए इस सम्बन्ध का जो आकर्षक साहित्य या औजार आदि होते हैं वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इस सबसे तो उस उद्देश्य को हानि ही पहुँचती है जिसके लिए कि श्रीमती सेंगर निःस्वार्थ भाव से इतना उद्योग कर रही हैं।

अरण्य-रोदन

"अभी हाल ही में संतति नियमन की प्रचारिका मिसेज सेंगर के साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैंने पढ़ी है। इसका मुझ पर इतना गहरा असर हुआ है कि आपके दृष्टि बिन्दु पर संतोष और पसन्दगी जाहिर करने के लिए मैं आपको यह पत्र लिखने

बैठा हूँ। आपकी हिम्मत के लिये ईश्वर सदा आपका कल्याण करें।

पिछले तीस साल से मैं लड़कों के पढ़ाने का काम करता हूँ। मैंने हमेशा उन्हें देह दमन और निःस्वार्थ जीवन बिताने के लिए तालीम दी है। जब मिसेज सेंगर हमारे आस पास प्रचार कार्य कर रही थीं, तब हाई स्कूल के लड़के लड़कियाँ उनकी दी हुई सूचनाओं का उपभोग करने लग गये थे। और परिणाम का डर दूर हो जाने से उनमें खूब व्यभिचार चल पड़ा था। अगर मिसेज़ सेंगर की शिक्षा कहीं व्यापक हो गई, तो सारा समाज विषय सेवन के पीछे पड़ जायगा और शुद्ध प्रेम का दुनिया से नामोनिशान तक मिट जायगा। मैं मानता हूँ कि जनता को उच्च आदर्शों की शिक्षा देने में सदियों लग जायँगे। पर यह काम शुरू करने के लिए अनुकूल से अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज़ सेंगर विषय को ही प्रेम समझ बैठी हैं। पर यह भूल है, क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है. विषय सेवन से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

डॉ० एलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बात में सहमत हैं कि संयम कभी हानि कारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगों के कि जो दूसरी तरह अपने विषयों को उत्तेजित करते हों और पहले से ही अपने मन पर काबू खो चुके हों। मिसेज़ सेंगर का यह बयान कि अधिकांश डाक्टर यह मानते हैं कि ब्रह्मचर्य पालन से हानि होती है, बिल्कुल ग़लत है। मैं तो देखता हूँ कि यहाँ कई बड़े बड़े डाक्टर अमेरिकन सोश्यल हाईजीन (सामाजिक आरोग्य शास्त्र) के विज्ञान शास्त्री ब्रह्मचर्य पालन को लाभदायक मानते हैं।

आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन संग्राम के तमाम चढ़ाव उतारों का बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। आप जगत में उन इने गिने व्यक्तियों में से हैं, कि जिन्होंने स्त्री पुरुष

संबन्ध के प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि बिन्दु से विचार किया है। मैं आपको यह जताना चाहता हूँ कि महासागर के इस पार भी आपके आदर्शों के साथ सहानुभूति रखने वाला आपका एक साथी यहाँ पर है।

हम इस नेक काम को जारी रखें ताकी नव युवक वर्ग सच्ची बात को जान लें, क्योंकि भविष्य उसी वर्ग के हाथों में है।

अपने विद्यार्थियों के साथ अपने एक सम्वाद में से मैं छोटा सा उद्धरण यहाँ देना चाहता हूँ—[निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण प्रवृति में से तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी, उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा। पर अगर तुम अपनी निर्माण शक्ति को आज विषय तृप्ति का साधन बना लोगे तो तुम अपनी रक्षा शक्ति पर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक बल का नाश हो जायगा। रचना प्रवृत्ति-शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक-का नाम जीवन हैं, यही आनन्द है। अगर तुम प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना या संतति का निरोध करके विषय सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे, तो तुम प्रकृति के नियम का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का हनन करोगे। इसका परिणाम यह होगा, अनिवार्य विषयाग्नि धधक उठेगी और आखिर निराशा तथा असफलता में अन्त होगा इससे तो हम कभी उन उच्च गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे, जिनके बल पर हम उस नवीन मानव समाज की रचना कर सकें, जिसमें कि दिव्यात्मा स्त्री पुरुष हो।]

मैं जानता हूँ, कि यह सब पूर्वकाल के नबियों के "अरण्य-रोदन" जैसी बात है पर मेरा पक्का विश्वास है कि यही सच्चा रास्ता है और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े पर मैं कम से कम उँगली दिखाकर तो अपना समाधान कर लूँ।"

संतति नियमन के कृत्रिम साधनों का निषेध करने वाले जो पत्र

मुझे कभी कभी अमेरिका से मिलते रहे हैं, उन्हीं में से यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिम से हिन्दुस्तान में जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उससे तो पढ़ने वाले के दिल पर बिल्कुल जुदा ही असर पड़ता है मानो अमेरिका में तो सिवा बेवकूफों के कोई भी इन आधुनिक साधनों का विरोध नहीं करते हैं जो मनुष्य को उस अंधविश्वास से मुक्ति प्रदान करते हैं जो अब तक शरीर को गुलाम बनाकर संसार के सर्व श्रेष्ठ ऐहिक सुख से मनुष्य को वंचित करके उसके शरीर को निष्प्राण बना देने की शिक्षा देता चला आ रहा है। यह साहित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है जितना की वह कर्म जिसकी वह शिक्षा देता है, और जिसे उसके साधारण परिणाम के ख़तरे से बचकर करने को वह प्रोत्साहन देता है। पश्चिम से आनेवाले केवल उन पत्रों को मैं हरिजन के पाठकों के सामने नहीं पेश करता जिनमें व्यक्तिगत रूप से इन साधनों का निषेध होता है तो वे साधक दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी हैं। साधारण पाठकों के लिए उनका मूल्य बहुत ही कम है। पर यह पत्र खास तौर पर एक महत्व रखता है। क्योंकि यह ऐसे शिक्षक का है जिसे तीस वर्ष का अनुभव है। यह हिन्दुस्तान के उन शिक्षकों और जनता (स्त्री पुरुष) के लिए ख़ास तौर पर मार्ग दर्शक है, जो उस ज्वार के प्रबल प्रवाह में बहे जा रहे हैं। संतति नियामक साधनों के प्रयोग में शराब से अनन्त गुना प्रबल प्रलोभन होता है। पर इस मारक प्रलोभन के कारण वह उस चमकीली शराब की अपेक्षा अधिक जायज़ नहीं है। और चूँकि दोनों का प्रचार बढ़ता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर न इनका विरोध करना भी छोड़ा जा सकता है। अगर इनके विरोधियों को अपने कार्य की पवित्रता में श्रद्धा है तो उन्हें उसे बराबर जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य रूदन में भी वह बल होता है जो मूढ़ जन समुदाय के सुर में सुर मिलाने वाले

की आवाज में नहीं हो सकता क्योंकि अरण्य में रोनेवाले की आवाज में चिन्तन और मनन के अलावा अटूट श्रद्धा होती है। वहां इस सर्व साधारण के इस शोर की जड़ मे विषय भोग की व्यक्तिगत लालसा और अनचाही संतति तथा दुखिया माताओं के प्रति झूठी और निरीभावुक सहानुभूति के अलावा और कुछ नहीं होता और इसमामले में व्यक्तिगत अनुभव वाली दलील में तो उतनी ही बुद्धि है जितनी की एक शराबी के किसी कार्य में होती है। और सहानुभूति वाली दलील एक धोखे की टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चों के तथा मातृत्व के कष्ट तो कल्याण-कारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजायें और हिदायतें हैं। समय और इन्द्रिय नियमन के कानून की जो परवा नहीं करेगा वह तो एक तरह से अपनी खुदकुशी ही कर लेगा। [यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियों का नियमन नहीं कर सकते तो हम असफलता को न्यौता देते हैं। कायरों की तरह हम युद्ध से मुँह मोड़कर जीवन के एक मात्र आनन्द से अपने आपको वंचित करते हैं।]

संतति निग्रह

मेरे एक साथी ने जो मेरे लेखों को ध्यान के साथ पढ़ते रहते हैं, जब यह पढ़ा कि संतति निग्रह के लिए सम्भवतः मैं उन दिनों सहवास करने की बात स्वीकार कर लूँगा जिनमें कि गर्भ रहने की सम्भावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह करने की बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह नहीं खलती, फिर यह है

भी अधिकतर वैवाहिक दम्पतियों के ही लिए। आखिर बहस बढ़ते बढ़ते इतनी गहराई पर चलती गई जिसकी हम दोनों में से किसी ने आशान की थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्र को कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह करने जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम पड़ा कि यह मित्र स्मृतियों के इस बन्धन को साधारण मनुष्यों के लिए व्यवहार योग्य समझते हैं कि पति पत्नी को भी तभी सहवास करना चाहिए जबकि उन्हें सचमुच सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो। इस नियम को तो मैं जानता पहले से था लेकिन उसे इस रूप में पहले कभी नहीं माना था जिस रूप में कि इस बातचीत के बाद मानने लगा हूँ। अभी तक तो पिछले कितने सालों से मैं इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूँ जिस पर ज्यों का त्यों अमल नहीं हो सकता, सलिए मैं समझता था कि सन्तानोत्पत्ति की खास इच्छा के बगैर भी विवाहित स्त्री पुरुष जब तक एक दूसरे की रजामन्दी से सहवास करें तब तक वे वैवाहिक उद्देश्य की पूर्ति करते हुए स्मृतियों के आदेश का भंग नहीं करते। लेकिन जिस नये रूप में अब मैं स्मृति की बात को लेता हूँ वह मेरे लिये मानों एक इलहाम है। स्मृतियों का जो यह कहना है कि जो विवाहित स्त्री पुरुष इस आदेश को दृढ़ता के साथ पालन करें वे वैसे ही ब्रह्मचारी हैं जैसे अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यातीत करने वाले होते हैं। उसे अब मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया हूँ जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नये रूप में, अपनी काम वासना को तृप्त नहीं करना बल्कि सन्तानोत्पत्ति की सहवास का एक मात्र उद्देश्य है। साधारण काम पूर्तियों, विवाह की इस दृष्टि से भोग ही माना जायगा। जिस आनन्द को हम अभी तक निर्दोष और वैध मानते आये हैं उसके लिए ऐसे शब्द का प्रयोग कठोर तो मालूम होगा, लेकिन प्रचलित

प्रथा की बात मैं नहीं कर रहा हूँ बल्कि उस विवाह विधान को ले रहा हूँ जिसे हिन्दू ऋषियों ने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होंने इसे ठीक ढङ्ग से न रक्खा हो, या वह बिल्कुल गलत ही हो, लेकिन मुझ जैसे आदमी के लिए तो जो स्मृतियों कि कई बातों को अनुभव के आधारभूत मानता है, उनके अर्थ को पूरी तरह स्वीकार किये बग़ैर कोई चारा ही नहीं है। कुछ पुरानी बातों को उनके पूरे अर्थों में ग्रहण करके प्रयोग में लाने के अलावा और कोई ऐसा तरीका मैं नहीं जानता जिससे उनकी सचाई का पता लगाया जा सके, फिर वह जाँच कितनी ही कड़ी क्यों न प्रतीत हो और उससे निकलने वाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यों न लगें। ऊपर मैंने जो कुछ कहा है उसको देखते हुए कृत्रिम साधनों या ऐसे दूसरे उपायों से संतति निग्रह करना बड़ी भारी गलती है। अपनी जिम्मेवारी को पूरी तरह समझते हुए मैं यह लिख रहा हूँ। श्रीमती मार्गरेट सैंगर और उनके अनुयायिओं के लिए मेरे मन में बड़े आदर का भाव है। अपने उद्देश्य के लिए उनके अन्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। यह भी मैं जानता हूँ कि स्त्रियों को अनचाहे बच्चों की सार सम्हाल और परवरिश करने के कारण जो कष्ट उठाना पड़ता है उसके लिए उनके मन में स्त्रियों के प्रति बड़ी सहानुभूति है साथ ही वह भी मैं जानता हूँ कि कृत्रिम संतति निग्रह का, अनेक उदार धर्माचार्यों, वैज्ञानिकों, विद्वानों और डाक्टरों ने भी समर्थन किया है, जिनमें बहुतों को तो मैं व्यक्तिगत रूप से जानता और मानता भी हूँ। लेकिन इस सम्बन्ध में मेरी जो मान्यता है उसे अगर मैं पाठकों या कृत्रिम संतति निग्रह के महान् समर्थकों से छिपाऊँ तो मैं अपने ईश्वर के प्रति, जो कि सत्य के अलावा और कुछ नहीं है, सच्चा साबित नहीं होऊँगा। और अगर मैंने अपनी मान्यता को छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलती को अगर मेरी यह

मान्यता गलत हो मैं कभी नहीं जान सकूँगा। अलावा इसके उन अनेक स्त्री पुरुषों की खातिर भी मैं यह जाहिर कर रहा हूँ जो कि संतति निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओं के बारे में मेरे आदेश और मत को स्वीकार करते हैं।

संतति निग्रह होना चाहिये इस बात पर तो वे भी सहमत हैं जो इसके लिए कृत्रिम साधनो का समर्थन करते हैं और वे भी जो अन्य उपाय बतलाते हैं। आत्म संयम से संतति निग्रह करने में जो कठिनाई होती है उससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता। लेकिन अगर मनुष्य जाति को अपनी किस्मत जगानी है तो इसके सिवाय इसकी पूर्ति का कोई उपाय ही नहीं है क्योंकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह की बात सबने मंजूर करली तो मनुष्य जाति का बड़ा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम संतति निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध प्रायः जो प्रमाण पेश करते हैं उनके बावजूद मैं यह कहता हूँ।

मेरा विश्वास है कि मुझमें अन्धविश्वास कोई नहीं है। यह नहीं मानता कि कोई बात इस लिए सत्य है क्योंकि वह प्राचीन है। न मैं यही मानता हूँ कि चूँकि वह प्राचीन है इसलिए उसे संदिग्ध समझा जाय। जीवन के आधारभूत कई ऐसी बातें हैं जिन्हें हम यह समझकर योंही नहीं छोड़ सकते कि उन पर अमल करना मुश्किल है।

इसमें शक नहीं कि आत्म संयम के द्वारा संतति निग्रह है कठिन, लेकिन अभी तक ऐसा कोई नजर नहीं आया जिसमें संजीदगी के साथ उसकी उपयोगिता में संदेह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनों की बनिस्बत यह ऊँचे दर्जे का है।

मैं समझता हूँ जब हम सहवास को दृढ़ता से मर्यादित रखने के शास्त्रों के आदेश को पूर्णतः स्वीकार कर लें और उसको ही सबसे

बड़े आनन्द का साधन न मानें तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियों का काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पति के द्वारा यथा सम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति करें। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, जब कि स्त्री पुरुष दोनों सहवास की नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से, जो कि ऐसे सहवास का परिणाम होता है, प्रेरित हों। अतएव सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिए और उस पर नियंत्रण लगाना चाहिए।

सन्तति निग्रह

हमारे समाज की आज ऐसी दशा है कि आत्मसंयम की प्रेरणा ही उससे नहीं मिलती। शुरू से हमारा पालन पोषण ही उससे विपरीत दिशा में होता है। माता पिता की मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि जैसे भी हो अपनी सन्तान का ब्याह कर दें जिससे चूहों की तरह वे बच्चे जनते रहें। और अगर कहीं लड़की पैदा हो जाय तब तो जितनी भी कम उम्र में हो सके बिना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा उसका ब्याह कर दिया जाता है। विवाह की रस्म भी क्या है मानो दावत और फ़जूल खर्ची की एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवार का जीवन भी वैसा ही होता है जैसा कि पहले से होता आया है, याने भोग की ओर बढ़ना ही होता है। छुट्टियाँ और त्योहार हा इस तरह रखे गये हैं जिससे वैषयिक रहन सहन की ओर ही अधिक से अधिक प्रवृति होती है। जो साहित्य एक तरह से गले चपेटा जाता है उससे भी आमतौर

पर विषमोन्मुख मनुष्यों का उसी ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यन्त आधुनिक साहित्य तो प्रायः यही शिक्षा देता है कि विषय भाग ही कर्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालत में कोई आश्चर्य नहीं कि काम पिपासा का निमंत्रण बिल्कुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। और अगर हम यह मानते हैं कि संतति निग्रह का अत्यन्त वांछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्म संयम ही है तो हमें सामाजिक आदर्श और वातावरण को ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्य की सिद्धि का एक मात्र उपाय यही है कि जा व्यक्ति आत्मसंयम साधन में विश्वास रखते हैं वे दूसरों को भी उससे प्रभावित करने के लिए अपने अटूट विश्वास के साथ खुद ही इसका अमल शुरू कर द। ऐसे लोगों के लिए मैं समझता हूँ, विवाह का जिस धारणा की मैंने पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्व रखता है। उसे भली भांति ग्रहण करने का मतलब है अपने मनःस्थिति का बिल्कुल बदल देना अर्थात पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नहीं कि कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करें बल्कि यही समस्त मानव जातियों के लिए नियम हो जाना चाहिए क्योंकि इसके भंग से मानव प्राणियों का दर्जा घटता है और अन चाहे बच्चों की वृद्धि, सदा बढ़ती रहने वाली बीमारियों की शृंखला और मनुष्य के नैतिक पतन के रूप में उन्हें तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा संतति निग्रह से नवजाति शिशुओं को संख्या वृद्धि पर किसी हद तक अंकुश रहता है और साधारण स्थिति के मनुष्यों का थोड़ा बचाव हो जाता है लेकिन व्यक्ति और समाज को जो नैतिक हानि इससे होती है। उसका पार नहीं। क्योंकि जो लोग भोग के लिए ही अपनी कामवासना की तृप्ति करते हैं उनके लिए जीवन का दृष्टिकोण ही बिल्कुल बदल जाता है।

उनके लिए विवाह धार्मिक सम्बन्ध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सा .ाजिक उच्चदर्शों का बिल्कुल बदल जाना जिन्हें हम अभी तक बहुमूल्य निधि के रूप में मानते रहे हैं। निस्सन्देह जो लोग विवाह के पुराने आदर्शों को अन्धविश्वास मानते हैं उन पर इस दलील का ज्यादा असर न होगा। इसलिए मेरी दलील सिर्फ उन लोगों के लिए है जो विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध मानते हैं। और स्त्री को, पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नहीं, बल्कि सन्तान के धारण और संरक्षण का गुण रखने वाली माता के रूप में मानते हैं।

मैंने और मेरे साथी कार्यकर्त्ताओं ने आत्मसंयम की दिशा में जो प्रयत्न किया है उसके अनुभव से मेरे इस बिचार की पुष्टि होती है, जिसे कि मैंने यहाँ उपस्थित किया है। विवाह और प्राचीन धारणा के प्रखर प्रकाश में होने वाली खोज से इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त हो गया है। मेरे लिए तो अब विवाहित जीवन मे ब्रह्मचर्य बिल्कुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वयं विवाह की ही तरह एक मामूली बात हो गई है। संतति निग्रह का और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पड़ता है। एक बार जहाँ स्त्री और पुरुष में इस विचार ने घर किया नहीं कि जननेन्द्रियों का एक मात्र और महान कार्य सन्तानोत्पत्ति ही है। सन्तानोत्पत्ति के अलावा और किसी उद्देश्य से सहवास करने को अपने रज-वीर्य की दंडनीय क्षति मानने लगेंगे और उसके फलस्वरूप स्त्री पुरुष में होने वाली उत्तेजना को अपनी मूल्यवान शक्ति की वैसी ही दंडनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल नहीं है कि प्राचीन काल के वैज्ञानिकों ने वीर्य रक्षा को क्यों इतना महत्व दिया है और क्यों इस बात पर उन्होंने इतना जोर दिया है कि हम समाज के कल्याण के लिए उसे शक्ति के सर्वोत्कृष्ट रूप में परिणत करें।

उन्होंने तो स्पष्ट रूप में इस बात की घोषणा की है कि जो (स्त्री पुरुष) अपनी कामवासना पर पूर्ण नियंत्रण कर लें, वह शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपाय से प्राप्त नहीं की जा सकता।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियों की अधिक संख्या क्या, एक भी ऐसा ऐसा कोई हमें अपने बीच में दिखाई नहीं पड़ता। इससे पाठकों को घबड़ाना नहीं चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमें दिखाई देते हैं वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने हैं। उनके लिए तो बहुत से बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु हैं जिन्होंने अपने शरीर का तो संयमकर लिया है पर मन पर अभी संयम नहीं कर पाये हैं। ऐसे दृढ़ वे अभी नहीं हुए हैं कि उन पर प्रलोभन का कोई असर ही न हो। लेकिन यह बात इसलिए नहीं है कि ब्रह्मचर्य की प्राप्ति बहुत दुरूह है। बल्कि सामाजिक वातारण ही उनके विपरीति है और जो लोग इमानदारी के साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं उनमें से अधिकांश अनजाने सिर्फ इसी संयम का यत्न करते हैं। जबकि इसमें सफल होने के लिए उन सब विषयों के संयम का यत्न किया जाना चाहिए जिनके चंगुल में मनुष्य फँस सकता है। इस तरह किया जाय तो साधारण स्त्री पुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव नहीं है। लेकिन यह याद रहे किइसके लिए भी वैसे ही प्रयत्न की आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञान के निष्णात होने के अभिलाषी किसी विद्यार्थी को करना पड़ता है। यहाँ जिस रूप में ब्रह्मचर्य को लिया गया है। उस रूप में जीवन विज्ञान में निष्णात होना ही वस्तुतः उसका अर्थ भी है।

अमेरिका की साक्षी

मोण्टाना (अमेरिका) से कुमारी मैबल ई० सिम्पसन ने "हरिजन" के सम्पादक को लिखा है :—

"मैं आपके पत्र की प्रशंसा करता हूँ। यह ठीक है कि आकार में यह बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन इसमें जो कुछ रहता है उससे इस अभाव की पूर्ति हो जाती है। गांधी जी ने संतति-निग्रह के विषय में सदा की तरह स्पष्टतापूर्वक जो लेख लिया है, वह मुझे बहुत पसन्द आया। अगर वह बीस वर्ष पहले जब कि संतति निग्रह से घृणा की जाती थी, और अब जबकि इसका बहुत जोर है अमेरिका जाते तो वह यह जान जाते कि नैतिक दृष्टि से यह कितना पतन कारक है। लेकिन वह किसी को इस बात का विश्वास नहीं करा सकेंगे, क्योंकि वह मनुष्य को नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी वंचित कर देता है, जिससे इस पथ पर चलने वालो के लिए उच्च नैतक और आध्यात्मिक दृष्टि से बुद्धि पूर्वक किसी बात का निर्णय करना असम्भव हो जाता है। इस सम्बन्ध में हिन्दुस्तान ने अगर पश्चिम का अनुकरण किया तो निश्चय ही वह अपने दो अत्यन्त अमूल्य और सुन्दर रत्नों को खो देगा—एक तो छोटे बच्चों के प्रति प्रेम और दूसरा माता पिता/के प्रति श्रद्धा। अमेरिका ने इन दोनों को गवाँ दिया है और इनका उसे कुछ पता भी नहीं। क्या आप ब्रह्मचर्य के अर्थ का स्पष्टीकरण कर सकते हैं? मुझसे इसके बारे में पूछा गया है। हालांकि मेरे मन में इसकी कुछ कल्पना तो है, लेकिन वह इतनी निश्चित नहीं है कि मैं दूसरों को समझाने का प्रयत्न करूँ।"

पाठक और पाठिकायें इस साक्षी का जो कुछ मूल्य आँकें वह

आँक सकते हैं। मगर मैं कहता हूँ कि सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रयोग करने के विरुद्ध ऐसी साक्षी उन लोगों की साक्षी से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है जो इनके प्रयोग से फायदा उठाने का दावा करते हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इससे बच्चों की उत्पत्ति रुकती है, इस रूप में तो इसके फायदे से कोई इन्कार नहीं करता। कहा सिर्फ यह जाता है कि इसके प्रयोग से जो नैतिक हानि होती है वह बेहिसाब है। कुमारी सिम्पसन ने हमें ऐसी हानि का माप बताया है।

अब रही ब्रह्मचर्य के अर्थ की बात सो उसका मूलार्थ इस प्रकार बताया जा सकता है :—

वह आचरण कि जिससे कोई व्यक्ति ब्रह्म या परमात्मा के सम्पर्क में आता है।

इस आचरण में सब इन्द्रियों का सम्पूर्ण संयम शामिल है। इस शब्द का यही सच्चा और सुसंगत अर्थ है।

वैसे आमतौर पर इसका अर्थ सिर्फ जननेन्द्रियों का शारीरिक संयम ही लगाया जाने लगा है। इस संकीर्ण अर्थ ने ब्रह्मचर्य को हलका करके उसके आचरण को प्रायः बिलकुल असम्भव कर दिया है। जननेन्द्रिय पर तब तक संयम नहीं हो सकता जब तक की सभी इन्द्रियों का उपयुक्त संयम न हो, क्योंकि वे सब अन्योन्याश्रित हैं। मन भी इन्द्रियों में ही शामिल है, जब तक मन पर संयम न हो, खाली शारीरिक संयम चाहे कुछ समय के लिए प्राप्त भी हो जाय, पर उससे कुछ हो नहीं सकता।

———

अमेरिका की एक गवाह

मोन्टेना की कुमारी मेबेल ई० सिम्पसन सम्पादक को लिखती हैं "संतति निग्रह पर गांधी जी के लेख को मैंने बड़े चाव से पढ़ा। उससे उनकी हर चीज़ के प्रति उनका विशेष ज्ञान प्रकट होता है। यदि वे आज से २० वर्ष पहले जबकि संतति निग्रह का विरोध किया गया था और अब जब कि यह बड़े ज़ोरों से प्रचलित है, कि हालत देखते तो पता चलता कि इससे नैतिक पतन होता है। किन्तु वे इसका विश्वास किसी को न करा पाते, क्योंकि मनुष्य इससे नैतिक और आत्मिक दृष्टि से आदमी इतना अन्धा हो जाता है कि वह उच्च नैतिक और चारित्रिक रूप से नहीं देख सकता। यदि भारतवर्ष इस विषय में पश्चिम का अनुकरण करेगा तो दो अमूल्य रत्नों की हानि होगी, छोटे बच्चों के लिए स्नेह और बड़े लोगों के लिए आदर। अमेरिका दोनों को खो चुका है किन्तु उसे इसका ज्ञान नहीं। क्या आप ब्रह्मचर्य का अर्थ समझाने के लिए लेख निकाल सकते हैं। मुझसे लोगों ने पूछा है परन्तु इसका थोड़ा ज्ञान होते हुए भी, मैं इसे ठीक से दूसरों को समझाने में असमर्थ हूँ। धन्यवाद।"

इसे पाठक जैसा चाहे वैसा महत्व दे। मेरा विचार है कि कृत्रिम साधनों के प्रयोग के प्रति, इस प्रकार की गवाही, उन लोगों की गवाही से कहीं अच्छी है जो उन्हें उपयोगी बताते हैं और इसका कारण स्पष्ट है। हमें इससे इनकार नहीं कि सन्तान उत्पत्ति रोकने के रूप में लाभ होता है। परन्तु विरोध इस बात पर है कि इससे जो नैतिक हानि होती है उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। कुमारी सिम्पसन ने हमें एक अनुमान कराया है :—

अब ब्रह्मचर्य की परिभाषा के विषय में—इसकी मौलिक परिभाषा

इस प्रकार हो सकती है। ऐसा आचरण जो मनुष्य को ईश्वर के सम्पर्क में लावे। और ऐसे आचरण का अर्थ है सम्पूर्ण इन्द्रियों पर नियन्त्रण। यही इस शब्द का सही अर्थ है। वैसे प्रचलित रूप से इसका अर्थ जननेन्द्रिय के नियंत्रण से लगाया जाता है। इस संकीर्ण अर्थ ने ब्रह्मचर्य की पवित्रता नष्ट कर दी है और इसी कारण ब्रह्मचर्य का पालन भी असम्भव होगया है। काम पर नियंत्रण किए बिना जननेन्द्रिय का नियंत्रण असम्भव है वे एक दूसरे पर अवलंबित हैं। निम्नलिखित स्तर पर स्थित मस्तिष्क भी इन्द्रयों में शामिल है, बिना मस्तिष्क पर अधिकार जमाये, यदि शारीरिक नियंत्रण कुछ समय के लिए कर भी लिया जाय तो उससे बहुत कम लाभ होगा।

कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह

एक सज्जन लिखते हैं :—

"हाल में हरिजन में श्रीमती सेंगर और महात्मा गाँधी की मुलाकात का जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारे में मै कुछ कहना चाहता हूँ।

इस बातचीत में जिस खास बात की ओर ध्यान नहीं दिया गया मालुम पड़ता वह यह है कि मनुष्य अन्तरवोमत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम से कम आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही वह सतोष नहीं करता, बल्कि सुन्दरता, रंग बिरंगापन और आकर्षण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहब ने कहा है कि "अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी खरीद लें, लेकिन

अगर दो हों तो एक से रोटी खरीद और एक से फूल।" इसमें एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है। इसीलिए हम उसे ऐसे कामों के लिए भी प्रयत्नशील पाते हैं, जो महज उसके शरीर धारण के लिए आवश्यक नहीं है। उसने तो अपनी प्रत्येक आवश्यकता को कला का रूप दे रखा है और उन कलाओं की खातिर मनों खून बहाया है। मनुष्य की उत्पादक बुद्धि नई नई कठिनाइयों और समस्याओं को पैदा करके उनका तेल निकालने के लिए उसे प्रेरित करती रहती हैं। रूसो, रस्किन, टाल्सटाय, थोरो और गांधी उसे जैसा "सरल सादा" बनाना चाहते हैं वैसा वह बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज़ है, और उसे भी उसने एक महान् कला के ही रूप में परिणत कर दिया है।

उसके मस्तिष्क को अपील करने के लिए प्रकृति का उदाहरण व्यर्थ है, क्योंकि वह तो उसके जीवन से ही बिल्कुल मेल नहीं खाती है। "प्रकृति उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती।" जो लोग प्रकृति के नाम पर अपील करते हैं वे यह भूल करते हैं कि प्रकृति में केवल पर्वत तथा उपत्यकाएँ और कुसुम क्यारियाँ ही नहीं हैं बल्कि बाढ़, झंझावात और भूकम्प भी हैं। कट्टर निराकारवादी नीत्शे का कहना है कि कलाकार की दृष्टि से प्रकृति कोई आदर्श नहीं है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरण से काम लेती है और बहुत सी चीज़ों को छोड़ जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। "प्रकृति से अध्ययन करना" कोई अच्छा चिन्ह नहीं है। क्योंकि इन नगण्य चीज़ों के लिए धूल में लौटना अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है। भिन्न प्रकार के बुद्धि के कार्य को, कला विरोधी मामूली बातों को, देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं हम यह जानते हैं कि जंगली जानवर अपने शरीर को बनाये रखने

की आवश्यकता वश कच्चा मांस खाते हैं। स्वाद वश नहीं। यह भी हम जानते हैं कि प्रकृति में तो पशुओं में समागम की ऋतुएँ होती हैं। इन ऋतुओं के अतिरिक्त कभी मैथून होता ही नहीं। लेकिन उसी फिलासफर के अनुसार यह तो अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है, जो स्वभावतः मनुष्य अच्छा कलाकार है। इसलिए जब सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता न रहे तब मैथुन कार्य को बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्ति की स्पष्ट इच्छा से प्रेरित होकर ही मैथुन करना इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली, इतनी हिसाब किताब की सी बात है कि हमारे फिलासफर के कथनानुसार वह उसकी कला प्रेमी प्रकृति को अपील नहीं कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री पुरुष के प्रेम को एक बिल्कुल दूसरे पहलू से देखता है। ऐसे पहलू से जिसका सन्तान वृद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं। यह बात हेवलाक एलिस और मेरी स्टोप्स जैसे आप्त पुरुषों के कथनों से उत्पन्न होती है। पर वह शारीरिक सम्भोग के बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समय तक रहेगा जब तक हम इस अंश को केवल आत्मा में पूरा नहीं कर सकते और उसके लिए शरीर यंत्र की आवश्यकता समझते हैं। ऐसे सहवास के परिणाम का सामना करना बिल्कुल दूसरी समस्या है। यही संतान निग्रह के आन्दोलन का काम आ जाता है। पर यह काम अगर स्वयं आत्मा की ही पुनः व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और वाह्य-अनुशासन द्वारा-आत्मसंयम के माने इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—तो हमें यह आशा नहीं होती कि उससे जिन उद्देश्यों की पूर्ति होनी चाहिए उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे बिना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार के संतति निग्रह ही हो सकता है।

"अपनी बात को समाप्त करने से पहले मैं यह और कहूँगा कि आत्म संयम या ब्रह्मचर्य का महत्व मैं किसी प्रकार कम नहीं करना

चाहता। वैषयिक नियंत्रण को पूर्णता पर ले जाने वाली कला के रूप में मैं हमेशा उसकी सराहना करूँगा। लेकिन जैसे अन्य कलाओं की सम्पूर्णता हमारे जीवन में (और नीत्शे के अनुसार) हमारे सारे जीवन में, कोई हस्ताक्षेप नहीं करती, वैसे ही ब्रह्मचर्य के आदर्श को मैं दूसरी बातों पर प्रभुत्व पाने का सहारा नहीं बनने दूँगा - जन संख्या वृद्धि जैसी समस्याओं के हल करने का साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसा हौआ बना डाला है, युद्ध कालीन बच्चों के बारे में तो हम जानते ही हैं। जिन सैनिकों ने अपना खून बहाकर अपने देश वासियों के लिये समरांगण में विजय प्राप्त की क्या हम इसीलिए उन्हें इसका श्रेय न देंगे, कि उन्होंने रणक्षेत्र में भी बच्चे पैदा कर डाले? नहीं कोई ऐसा नहीं करेगा। मैं समझता हूँ कि इन बातों को मद्देनज़र रख कर ही शास्त्रों (प्रश्नोपनिषद्) में यह कहा गया है कि "ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौरत्या संयुज्यते"—अर्थात केवल रात्रि में ही (याने दिन के असाधारण समय को छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहाँ साधारण वैषयिक जीवन को भी ब्रह्मचर्य के ही समान बताया गया है उसमें इतनी कठोरता तो जीवन के विविध रूपों में उलटफेर करने के फल स्वरूप ही आई है।"

जो भी कोई ऐसी चीज हो जिसमें कोरा शब्दाडंबर, गाली गलौज या आरोप आक्षेप न हों उसे मैं सहर्ष प्रकाशित करूँगा, जिससे पाठकों के सामने समस्या का दोनों पहलू आ जायें और वे अपने आप किसी निर्णय पर पहुँच सकें। इसलिए इस पत्र को मैं बड़ी खुशी के साथ प्रकाशित करता हूँ। खुद मैं भी यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि जिस बात के विज्ञान सिद्ध और हितकारी होने का दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते हैं.

उसका उज्जवल पक्ष देखने की कोशिश करने पर भी मुझे वह क्यों इतनी खलती है ?

लेकिन मेरे सन्तोष की कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाह जीवन में मैथुन स्वय कोई अच्छाई है और उसे करने वालों को उससे कोई लाभ होता है। हाँ, अपने खुद के तथा दूसरे अनेक अपने मित्रों के अनुभव पर से इससे विपरीत बात मैं ज़रूर कह सकता हूँ। हममें से किसी ने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक, या शारीरिक उन्नति की हो यह मैं नहीं जानता। क्षणिक उत्तेजन और संतोष तो उससे अवश्य मिला, लेकिन इसके बाद ही थकावट भी ज़रूर हुई। और जैसे ही उस थकावट का असर मिटा नहीं कि मैथुन की इच्छा भी तुरन्त ही जागृत हो उठी। हालाँकि मैं सदा से जागरूक रहा हूँ, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकार से मेरे कामों में बड़ी बाधा पड़ी है। इस कमजोरी को समझकर ही मैंने आत्मसंयम का रास्ता पकड़ा और इसमें सन्देह नहीं कि तुलनात्मक रूप से काफ़ी लम्बे लम्बे समय तक मैं जो बीमारी से बचा रहता हूँ और शारीरिक एवं मानसिक रूप से जो इतना अधिक और विविध प्रकार का काम कर सकता हूँ, कि जिसे देखनेवालों ने अद्भुत बताया है, उसका कारण मेरा यह आत्म संयम या ब्रह्मचर्य पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जन ने जो कुछ पढ़ा उसका ग़लत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं। सुन्दरता और रंग-बिरंगापन उसे चाहिए ही। लेकिन मनुष्य की कलात्मक और उत्पादक प्रवृतियों ने अपने सर्वोत्तम रूप में उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-संयम में कला कला का और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्ति के लिए न हो) ऐसे सहवास में असुन्दरता का दर्शन करे। उसमें कलात्मक की जो भावना है उसने

इसे विवेकपूर्वक यह जानने की शिक्षा दी है कि विविध रङ्गों का चाहे जैसा मिश्रण सौंदर्य का चिन्ह नहीं है, और न हर तरह का आनन्द ही अपने आप में कोई अच्छाई है। कला की ओर उसकी जो इच्छा है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगिता में ही आनन्द की खोज करे यानी वही आनन्दोपभोग करे जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकास के प्रारम्भिक काल में ही उसने यह जान लिया था कि खाने के लिए ही उसे खाना नहीं खाना चाहिए, जैसा हममें से कुछ लोग अभी भी करते हैं। बल्कि जीवन टिका रहे इसलिए खाना चाहिए। बाद में उसने यह भी जाना कि जीवित रहने के लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिए, बल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभु की सेवा के लिए उसे जीना चाहिए जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जब उसने विषय सहवास या मैथुन जनित आनन्द की बात पर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रिय की भाँति जननेन्द्रिय का भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य यानी सदुपयोग इसी में है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति के ही लिए सहवास किया जाय। इसके सिवाय और किसी प्रयोजन से किया जानेवाला सहवास असुन्दर है और ऐसा करनेवाले व्यक्ति और उसकी नस्ल के लिए उसके बहुत भयंकर परिणाम हो सकते हैं। मैं समझता हूँ अब इस दलील को और आगे बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं।

उक्त सज्जन का यह कहना ठीक ही है कि मनुष्य आवश्यकता से प्रेरित होकर कला की रचना करता है इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कार की जननी है बल्कि कला की भी जननी है। इसलिए जिस कला का आधार आवश्यकता नहीं है उससे हमें सावधान रहना चाहिए।

साथ ही अपनी हरेक इच्छा को हमें आवश्यकता का नाम नहीं देना चाहिए। मनुष्य की स्थिति तो एक प्रकार से प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनों प्रकार की शक्तियाँ अपने खेल खेलती हैं। किसी भी समय वह प्रलोभन का शिकार हो सकता है। अतः प्रलोभनों से लड़ते हुए उनका शिकार न बनने के रूप में उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए, जो अपने माने हुए बाहरी दुश्मनों से तो लड़ता है किन्तु अपने अन्दर के विविध शत्रुओं के सामने अंगुली तक नहीं उठा सकता, या उन्हें अपना मित्र समझने की ग़लती करता है, वह योद्धा नहीं है। "उसे यह तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जन का यह करना ग़लत है कि उसे भी उसने एक महान् कला के ही रूप में परिणत कर दिया है। क्योंकि युद्ध की कला तो हमने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्ध को उसी तरह सच्चा मान लिया है जैसे हमारे पूर्व पुरुषों ने बलिदान का गलत अर्थ लगाकर बजाय अपनी दुर्वासनाओं के बेचारे निर्दोष पशुओं का बलिदान शुरू कर दिया—अबीसीनिया की सीमा में आज जो कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौंदर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जन ने उदाहरण के लिए जो नाम चुने हैं वे भी (अपने) दुर्भाग्य से ठीक नहीं चुने। क्योंकि रूसो, रस्किन, थोरो और टालस्टाय तो अपने समय में प्रथम श्रेणी के कलाकार थे और उनके नाम हममे से अनेकों के मरकर भुला दिये जाने के बाद भी वैसे ही अमर रहेंगे।

प्रकृति शब्द को जो उक्त सज्जन ने प्रयोग किया है, वह भी ठीक नहीं किया मालूम पड़ता। प्रकृति का अनुसरण या अध्ययन करने के लिए जब मनुष्यों को प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नहीं कहा जाता कि वे जंगली कीड़े मकोड़ों या शेर की तरह काम करने लगें; बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्य की प्रकृति का

उसके सर्वोत्तम रूप में अध्ययन किया जाय। मेरे ख्याल मे यह सर्वोत्तम रूप मनुष्य की नई सृष्टि पैदा करने क प्रकृति है, या जो कुछ भी वह हा उसी के अध्ययन के लिए कहा जाता है। लेकिन शायद इस बात को जानन के लिए काफी प्रयत्न की आवश्यकता है। पुराने लोगों के उदाहरण देना आजकल ठीक नही है। उक्त सज्जन से मेरा यह कहना है कि नीत्शे या प्रश्नोपनिषद का बीच म ढूंढना व्यर्थ है। मेरे लिए तो इस बारे म अब उद्धरणों की कोई जरूरत नहीं रही है। देखना यह है कि जिस बारे मे हम चर्चा कर रहे है उसमे तर्क क्या कहता है। प्रश्न यह है कि हम जो यह कहते है कि जननेन्द्रिय का सदुपयोग केवल इसी मे है कि प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति के लिए ही उसका उपयोग किया जाय और उसका अन्य कोई उपभोग दुरुपयोग ही है। यह बात ठीक है या नहीं? अगर यह ठीक है, तो फिर दुरुपयोग को रोककर सदुपयोग पर जाने में कितना ही कठिनाई क्यों न हो उससे वैज्ञानिक शोधक को घबराना नहीं चाहिए।

सुधारक बहनों से

एक बहिन से गम्भीरता पूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम संतति निरोध सम्बन्धी मेरी स्थिति को अभी तक लोगों ने काफ़ी अच्छी तरह नहीं समझा। कृत्रिम संतति-निरोध के साधनों का मैं जो विरोध करता हूँ वह इस कारण नहीं कि वे हमारे यहाँ पश्चिम से आये हैं। कुछ पश्चिमी चीज़ें तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी हैं जैसी कि वे पश्चिम के लिए हैं

और कृतज्ञता के साथ मैं उनका पालन भी करता हूँ आर्टिफ़िशल संतति निरोध के साधनों का मेरा विरोध तो केवल उनके गुणदोष की दृष्टि से ही है।

मैं यह मानता हूँ कि कृत्रिम संतति निग्रह के साधनों का प्रतिपादन करने वालों में जो सबसे अधिक बुद्धिमान हैं वे उन्हें उन स्त्रियों तक ही मर्यादित रखना चाहते हैं जो संतानोत्पत्ति से बचते हुए अपनी और अपने पतियों की विषय वासना को तृप्त करना चाहती हैं। लेकिन, मेरे ख्याल में, मानव-प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव कुटुम्ब की आध्यात्मिक प्रगति के लिए घातक है। इसके खिलाफ़ अन्य बातों के साथ अक्सर पेन के लार्ड डासन की यह राय पेश की जाती है।

"विषय सम्बन्धी प्रेम संसार की एक प्रचन्ड और प्रधान शक्ति है। हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमें इसके प्रभाव को तथ्य रूप में स्वीकार करना ही होगा। आप इसका दमन नहीं कर सकते. आप चाहें तो इसे अच्छे रूप में परिणत कर सकते हैं किन्तु इसके प्रवाह को रोक नहीं सकते। और यदि इसके प्रवाह का स्रोत अपर्याप्त या ज़रूरत से ज़्यादा प्रतिबन्ध युक्त हुआ तो यह अनियमित स्रोतों से निकल पड़ेगा। आत्म संयम में हानि की सम्भावना रहती है और यदि किसी जाति में विवाह होने में कठिनाई होती हो या बहुत देर में जाकर विवाह होते हों तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धों की वृद्धि हो जायगी। इस बात को तो सभी मानते हैं कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जब मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हों। और इस बात पर भी सब सहमत हैं कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि बारम्बार हम जो सम्भोग करते हैं वह हमारे प्रेम का शारीरिक

प्रदर्शन ही होता है, जिसमें सन्तानोत्पत्ति का कोई विचार या इरादा नहीं। तो क्या हम सब गल्ती ही करते आ रहे हैं? या यह बात है कि धर्म का हमारे वास्तविक जीवन से आवश्यक सम्पर्क नहीं है, जिसके कारण उसके और सर्व साधारण के बीच खाई पड़ गई है? जब तक किसी शासक या सत्ता का, और धर्माधिकारियों का भी, मैं इन्हीं में शुमार करता हूँ, इन नौजवानों के प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहस पूर्ण और वास्तविकता के अधिक अनुकूल न होगा तब तक उनकी वफ़ादारी कभी प्राप्त नहीं होगी।'

'फिर सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी विषय प्रेम का अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवन में स्वस्थ और सुखी रहने के लिए यह अनिवार्य है। वैषयिक सहवास यदि परमेश्वर की देन है तो उसके उपयोग का ज्ञान भी प्राप्त करने के लायक है। अपने क्षेत्र में वह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल एक की बल्कि सम्भोग करने वाले स्त्री पुरुष दोनों की शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक दूसरे को जो पारस्परिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनों में एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा। उससे उनका विवाह सम्बन्ध स्थिर होगा, अव्यवस्थित विषय प्रेम से उतने विवाह असफल नहीं होते जितने कि अपर्याप्त और बेढंगे वैषयिक प्रेम से होते हैं। काम वासना अच्छी चीज़ है, ऐसे अधिकांश व्यक्ति जो किसी भी रूप में अच्छे हैं, काम भावना रखने में समर्थ हैं। काम भावना विहीन विषय प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपन के सिवाय एक शारीरिक अति है। अब चूँकि 'प्रार्थना पुस्तक" के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है, मैं यह बड़े आदर के साथ सुझाना चाहता हूँ कि उसके विवाह विधान में यह और जोड़ दिया जाय कि—'स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाह का उद्देश्य है।"

"अब मैं यह सब छोड़कर संतति निग्रह के सबसे ज़रूरी प्रश्न पर आता हूँ। संतति निग्रह स्थायी होने के लिए आया है। वह तो अब जम चुका है—और अच्छा हो या बुरा हो—उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करने से उसका अन्त नहीं होगा। जिन कारणों से प्रेरित होकर अभिभावक लोग संतति निग्रह करना चाहते हैं उनमें कभी कभी तो स्वार्थ होता है। लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते हैं। विवाह करके अपनी सन्तान को जीवन संघर्ष के योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन निर्वाह का खर्च, विविध करों का बोझ—ये सब इसके लिये जोरदार कारण हैं। और फिर शिक्षित वर्ग के अन्दर स्त्रियाँ अपने पतियों के काम धन्धों तथा सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेने की भी इच्छा करती हैं। यदि वे बार बार गर्भवती होती रहें तो इच्छाएं पूरी नहीं हो सकतीं। यदि संतति निग्रह के कृत्रिम साधनों का सहारा न लिया जाय तो देर में विवाह करने का तरीका करना पड़ेगा. लेकिन ऐसा होने पर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूप से अपनी विषयेच्छा तृप्त करने के विविध दुष्परिणाम सामने आयेंगे। एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धों की बुराई करें, और दूसरी ओर विवाह के मार्ग में बाधायें उपस्थित करें, तो उससे कोई लाभ न होगा। बहुत से लोग कहते हैं सम्भव है कि संतति निग्रह आवश्यक हो परन्तु एक मात्र जिस उपाय से सन्तति निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छापूर्ण संयम ही है। लेकिन ऐसा संयम या तो व्यर्थ होगा या यदि कोई उसका असर पड़ा तो वह अव्यवहारिक और स्वास्थ्य व सुख के लिए हानिकर होगा। परिवार के लिए, मान लो, हम चार बच्चों की मर्यादा बना लें तो यह विवाहित स्त्री पुरुष के लिए एक तरह का संयम ही होगा, जो देर देर में सन्तानोत्पत्ति होने के कारण ब्रह्मचर्य के समान ही माना जायेगा. और जब हम इस बात पर ध्यान दें कि आर्थिक

कठिनाई के कारण विवाहित जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बहुत कठोर सयम करना पड़ेगा। जब कि विषयेच्छा बहुत प्रबल रहती है तो मैं कहता हूँ कि वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकांश व्यक्तियों के लिए उसका दमन करना असम्भव होगा और यदि उसे जबदस्ती दबाने का यतन किया गया तो स्वास्थ्य और सुख पर उसका बहुत बुरा असर पड़ेगा और नैतिकता के लिए भी बहुत खतरनाक होगा। यह तो बिल्कुल अस्वाभाविक बात है। यह तो वही बात हुई कि प्यासे आदमी के पास पानी रखकर उससे कहा जाय कि खबरदार इसे पीना मत। नहीं, सयम द्वारा संतति निग्रह से कोई लाभ न होगा। और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।"

"यह तो अस्वाभाविक और मूलतः अनैतिक बात कही जाती है। सभ्यता का तो काम ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियों को वश में करके उन्हें इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपने इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। बच्चा आसानी से पैदा करने के लिए जब पहले पहल औजारों (Anaesthetics) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है। क्योंकि प्रसव पीड़ा सहने के लिए ही तो भगवान ने स्त्रियों को बनाया है। यही बात कृत्रिम साधनों से संतति निग्रह करने की है। उसमें भी इससे अधिक कोई अस्वाभाविकता नहीं है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है। अलबत्ता दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अन्त में क्या मैं यह प्रार्थना करूँ कि धर्माधिकारी लोग इस प्रश्न का विचार करते समय इस पुरातन परम्पराओं कि परवाह नहीं करेंगे जो अब व्यर्थ सी हो गई हैं बल्कि ऐसे ही अन्य प्रश्नों की तरह, नये ससार की आवश्यकताओं और आधुनिक ज्ञान के प्रकाश में ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे?"

यह कितने बड़े डाक्टर हैं इससे इनकार नहीं किया जा सकता लेकिन डाक्टर के रूप में उनका जो बड़प्पन है उसके लिए काफी आदर का भाव रखते हुए भी मैं इस बात पर सन्देह करने का साहस करता हूं कि उनका यह कथन कहां तक ठीक है। खासकर उस हालत में जब कि यह उन स्त्री पुरुषों के अनुभव के विपरीत है जिन्होंने आत्म संयम का जीवन बिताया है, किन्तु उससे उनकी नैतिक या शारीरिक हानि नहीं हुई। वस्तुतः बात यह है कि डाक्टर लोग आम तौर पर उन्हीं लोगों के सम्पर्क में आते हैं जो स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करके कोई न कोई बीमारी मोल ले लेते हैं। इसलिए बीमारी को अच्छा होने के लिए क्या करना चाहिए यह तो वे अक्सर सफलता के साथ बता देते हैं लेकिन यह बात वे हमेशा नहीं जानते कि स्वस्थ स्त्री पुरुष किसी खास दिशा में क्या कर सकते हैं। अतएव विवाहित स्त्री पुरुषों पर संयम का जो असर पड़ने की बात लार्ड डासन कहते हैं उसे अत्यन्त सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि विवाहित स्त्री पुरुष अपनी विषय तृप्ति को स्वतः कोई बुराई नहीं मानते। उनकी प्रवृत्ति उसे वैध मानने की ही है, लेकिन आधुनिक युग में तो कोई बात स्वयं सिद्ध नहीं मानी जाती और हरेक चीज़ की बारीकी से छानबीन की जाती है अतः यह मानना सरासर गलती होगी कि चूंकि अब तक हम विवाहित जीवन में विषय भोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक ही है। या स्वास्थ्य के लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत सी पुरानी प्रथाओं को हम छोड़ चुके हैं और उनके परिणाम अच्छे ही हुए हैं। तब इस खास प्रथा को हो उन स्त्री पुरुषों के अनुभव की कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक दूसरे की सहमति से संयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरह का लाभ उठा रहे हैं।

लेकिन मैं तो इसके अलावा विशेष आधार पर भी भारत में सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी हूँ। भारत में नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय दमन क्या है। इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहां की प्रथा है और विवाहित जीवन में संयम रखने को उनसे कोई नहीं कहता। माता पिता तो अपने नाती पोते देखने के उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल पत्नियों से उसके आस पास वाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायें। ऐसे वातावरण में संतति निरोध के कृत्रिम साधनों से तो कठिनाई और बढ़ेगी ही। जिन बेचारी लड़कियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियों की इच्छा पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि वे बच्चे पैदा होने की इच्छा तो न करें पर विषयभोग किये जायं। इसी में उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों का सहारा लेना होगा।

मैं तो विवाहित बहनों के लिए इस शिक्षा को बहुत घातक समझता हूँ। मैं यह नहीं मानता कि पुरुष की ही तरह स्त्री की काम वासना भी अदम्य होती है। मेरी समझ में पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए आत्म संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देश में जरूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' कह सके ऐसी सुशिक्षा स्त्रियों को मिलनी चाहिए।

स्त्रियों को हमें यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियों के हाथ की कठपुतली या औजारमात्र न बन जायें यह उनके कर्तव्य का अंग नहीं है। और कर्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी है जो लोग सीता को राम की आज्ञानुवर्तिनी दासी के रूप में ही देखते हैं वे इस बात को महसूस नहीं करते कि उनमें स्वाधीनता की कितनी भावना थी और राम हरेक बात में उनका कितना ख्याल रखते

थे। भारत की स्त्रियों से सन्तति निरोध के कृत्रिम साधन अख्तियार करने के लिए कहना तो बिल्कुल उलटी बात है। सबसे पहले तो उन्हें मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हें अपने शरीर की पवित्रता की शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवता की सेवा में कितना गौरव है इस बात की शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारत की स्त्रियों का तो उद्धार ही नहीं हो सकता और इसलिए सन्तानोत्पत्ति में रुकावट डालकर अपने रहे सहे स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हें सिर्फ सन्तति निग्रह के कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिएँ।

जो बहिन सचमुच उन स्त्रियों के दुख से दुखी हैं उन्हें इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चों के झमेले में पड़ना पड़ता है, उन्हें अधीर नहीं होना चाहिए। वे जो कुछ चाहती हैं वह एक दम तो कृत्रिम सन्तति निरोध के साधनों के पक्ष में तो आन्दोलन से भी नहीं होने वाला है। हरेक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है। इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढङ्ग की।

'आत्म संयम के विषय में और'

"आपने हाल ही में आत्म संयम पर जो लेख लिखा था उसने लोगों को हिला दिया है। जो लोग आपके विचारों के पक्ष में है, उनके लिए थोड़े समय के लिए भी आत्मसंयम कर पाना कठिन हो गया है। उनका कहना है कि आप अपने अनुभव का प्रयोग सम्पूर्ण मनुष्य समाज के लिए कर रहे हैं, और आपका मानते है कि आप

पूर्ण ब्रह्मचारी हैं क्योंकि आप पाशविक वासना से परे नहीं। और चूँकि आप विवाहित लोगों के लिए सन्तानों की सीमित संख्या चाहते हैं, संतति निरोध के कृत्रिम साधनों के प्रयोग के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय विस्तृत जन समाज के लिए नहीं दीख पड़ता।"

मैंने अपनी सीमायें स्वीकार की है। आत्मसंयम बनाम संतति निरोध के कृत्रिम साधन के सम्बन्ध में मेरी सीमायें ही मेरे गुण हैं।

मेरी सीमाओं से पता चलता है कि मैं संसार के अन्य लोगों की भाँति ध्न्त पक्का ही मनुष्य हूँ और मैं किसी दैवी बरदान का बहाना नहीं कर सकता। मेरा आत्मसंयम से उद्देश्य बिलकुल साधारण था—मनुष्य समाज या देश की सेवा के लिए सन्तानों की संख्या सीमित करने की इच्छा। अपने देश या मनुष्य समाज की सेवा करने की अपेक्षा अधिक सन्तानों के पालन का असमर्थता होनी चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोण से, मेरे ३५ वर्ष के सफल प्रयत्नों के होते हुए भी, मेरे भीतर का पशु अब भी सतर्कता चाहता है, इससे बहुत कुछ प्रकट होता है कि मैं साधारण मनुष्य हूँ। अतएव मैं समझता हूँ जो कुछ मैं कर सका हूँ, उसे कोई भी प्रयत्नशील पुरुष कर सकता है।

मैं संतति निग्रह के पक्ष में प्रचार करने वालों का इस बात पर विरोध करता हूँ कि वे यह क्यों मान लेते हैं कि जनसाधारण आत्म संयम नहीं कर सकता। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि यदि वे ऐसा कर सकें तो भी करना चाहिए। उनसे मैं पूर्ण विनम्रता और विश्वास के साथ कहता हूँ कि वे अपने विषय के कितने भी बड़े जानकार क्यों न हों, आत्मसंयम के अनुभव बिना ऐसा कहते हैं। उन्हें मनुष्य की आत्मा की शक्ति सीमित करने का कोई अधिकार नहीं। ऐसो

बातों के लिए मेरे जैसे मनुष्य का उदाहरण यदि विश्वसनीय है, तो अधिक महत्व की ही नहीं बल्कि अन्तिम है। यदि गंभीरता-पूर्वक देखा जाय तो चूँकि मैं महात्मा के रूप में प्रचलित हूँ अतः मेरा उदाहरण निरर्थक मानना ठीक नहीं।

इससे भी अधिक जोरदार एक बहन का तर्क है—'हम संतति निग्रह के कृत्रिम साधनों का प्रचार करने वाले अभी हाल में ही सामने आए है। आप आत्मसंयमी लोग लगभग हजारों वर्षों से इस क्षेत्र पर अधिकार जमाए रहे? आप अपनी कौन करतूत दिखा सकते हैं? क्या संसार ने आत्मसंयम सीख लिया? अपने भार से दबे हुए परिवारों का दुःख हटाने के लिए क्या किया? क्या हमने घायल मातृत्व की चीत्कार सुनी है? आइये, अभी तक आपके लिए क्षेत्र खाली है। हमें आपके आत्मसंयम के प्रचार के प्रति कोई शिकायत नहीं। बल्कि हम आपकी सफलता भी चाहते हैं, यदि आप संयोग से, स्त्रियों को उनके पतियों से आ... लोग से बचा सकेंगे तो किन्तु आप हमारे कार्य की निन्दा क्यों करते हैं, जो मनुष्य की प्रत्येक कमजोरी और आदत का ध्यान रखता है और उचित प्रयोग करने में जिसकी सफलता लगभग सदा निश्चित है।

यह व्यंग बढ़ते हुए सन्तानों के भार से पीड़ित परिवारों की सहानुभूति द्वारा द्रवित हृदयवाली एक बहन ने किया है। मानुषिक पीड़ा पत्थर को भी पिघला देती है, फिर सहृदय बहना को कैसे न प्रभावित करती। परन्तु यह लोगों को गलत रास्ते पर ले जा सकती है, जिस प्रकार डूबते हुए की भांति किसी के पैर उखड़ जायँ और वह किसी बहते तिनके को पकड़ ले।

हम ऐसे समय में चल रहे हैं जबकि चीजों का महत्व बड़ी तीव्रता से बदल रहा है। हमें धीमी गति वाले परिणामों से संतोष

नहीं होता। केवल अपनी जाति के या अपने देश के भले में ही सन्तोष नहीं होता हम सारे मनुष्य समाज के लिये महसूस करते हैं या करना चाहते हैं, यह मनुष्यता की अपने ध्येय की यात्रा में बहुत बड़ी सफलता है, कि वे पुरानी हैं लेकिन हम अपना धैर्य छोड़कर या प्राचीन वस्तुओं का केवल इसलिए कि मनुष्य समाज का बुराइयाँ नहीं छोड़कर ठीक मनुष्य समाज की कर सकते। हमारी आँखों में जो स्वप्न जग मग रहा है, सम्भवतः हमारे पूर्वजों में भी चाहे अनिश्चित रूप में हो रहे हों, वह स्वप्न और जो साधन उन्होंने उपयोग किए थे, सम्भवत उनका प्रयोग क्षितिज तक जो आशातीत विस्तृत हो गया दीखता है, उपयोगी सिद्ध होगा।

और मेरा निष्कर्ष, जो मेरे अनुभव के आधार पर है यह है कि जिस प्रकार सत्य और अहिंसा कुछ चुने हुए लोगों के लिए नहीं बल्कि समस्त मनुष्य जाति के दैनिक जीवन के लिए है, बिल्कुल उसी प्रकार आत्मसंयम केवल कुछ महात्माओं के लिए नहीं, बल्कि समस्त मनुष्य समाज के लिए, और इसलिए बहुत से लोग झूठे और अशान्त होंगे, मनुष्यता अपना स्तर तो नीचा नहीं करेगा। उसी प्रकार बहुत से लोगों के सहयोग न देने पर भी हम अपना स्तर नीचा नहीं कर सकते।

कोई भी चतुर न्यायाधीश झूठा निर्णय नहीं करेगा। वह ऐसा दिखाई देगा जैसे उसका हृदय कठिन हो गया हो क्योंकि उसे ज्ञात है कि सच्ची उदारता बुरा नियम बनाने में नहीं।

हमें चाहिये कि अपनी शारीरिक भगुरता को अपनी अमर आत्मा से न जोड़ें जो उसमें निवास करती है। हमें शरीर की आत्मा के नियमों को ध्यान में रखकर संयमित करना है। मेरी विनम्र राय में, ऐसे नियम थोड़े और अपरिवर्तनशील हैं और सारा मनुष्य समाज उन्हें समझ सकता है और उनके ऊपर चल सकता है। उनके कार्या-

न्वित करने के ढङ्ग में अन्तर नहीं हो सकता है। केवल उनमें कमी ज्यादती हो सकती है।

यदि हममें विश्वास हो, तो हम इसमें असफल नहीं हो सकते क्योंकि मनुष्यता को अपने लक्ष्य सिद्धि में लाख वर्ष लग भी सकते हैं। जवाहिरलाल की भाषा में हमारा आदर्श सही होना चाहिए।

हमारी वहिन की चुनौती का उत्तर अभी नहीं मिला। आत्म-संयमी लोग बेकार नहीं है, वे अपना प्रचार कर रहे हैं। यदि संतति निग्रह के कृत्रिम साधनों के प्रयोग का प्रचार करने वालों से उनका ढङ्ग भिन्न है, तो उनका प्रचार भी भिन्न है। आत्मसयमियों को दवाओं की आवश्यकता नहीं, वे इसलिये कि यह बेचने या देने का कोई विषय नहीं, इसका प्रकाशन नहीं करना चाहते। किन्तु उनकी आलोचना (कृत्रिम साधनों की) और उनके प्रयोग के विरुद्ध लोगों को चेतावनी देना, उनके प्रचार का अङ्ग है। उसका क्रियात्मक रूप वहीं रहा है लेकिन उसे लोगों ने देखा या पहचाना नहीं। आत्मसयम के पक्ष में प्रचार का कार्य कभी स्थगित नहीं रहा। सब से प्रभावशाली कार्य उदाहरण द्वारा होता है। आत्मसयम का सफलता पूर्वक उपयोग करने वालों की सख्या जितनी ही अधिक होगी, प्रचार का काम उतना ही प्रभावशाली होगा।

———

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते हैं:—

"आपके विचारों को पढ़कर मैं बहुत समय से यह मानता आया हूँ, कि सन्तति निरोध के लिए ब्रह्मचर्य ही एक मात्र सर्व श्रेष्ट उपाय है; सभोग केवल सन्तानेच्छा से प्रेरित होकर ही होना

चाहिए। बिना सन्तानेच्छा के भोग पाप है, इन बातों को सोचता हूँ तो कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। सम्भोग सन्तान के लिए किया जाय यह ठीक है, पर एक दो बार के भोग से सन्तान न हो, पर आशा कहाँ पिण्ड छोड़ती है। इस प्रकार वीर्य का बहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्या यह कहा जाय कि ईश्वर की इच्छा विरुद्ध होने के कारण उसे भोग का त्याग कर देना चाहिए? ऐसे त्याग के लिए तो बहुत आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। प्रायः ऐसा भी देखने में आया है कि सन्तान सारी उमर न होकर उत्तरावस्था में हुई है, इसलिए आशा का त्याग कितना कठिन है। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है, जब दोनों स्त्री और पुरुष रोग से मुक्त हों।"

यह कठिनाई अवश्य है लेकिन ऐसी बातें मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाई के कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़ने के लिए जैसे जैसे मनुष्य आगे बढ़ता है, कठिनाई बढ़ती ही जाती है। यहाँ तक की हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर आज तक कोई पहुँच नहीं सका है। इस प्रयत्न में कई मनुष्यों ने मृत्यु की भेंट की है। हर साल चढ़ाई करने वाले नये नये पुरुषार्थी तैयार होते हैं और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयास को वे छोड़ते नहीं। [विषयेन्द्रिय का दमन तो हिमालय पहाड़ पर चढ़ने से तो कठिन है ही लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊँचा है? हिमालय पर चढ़ने वाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा। इन्द्रियजीत मनुष्य आत्मानन्द पायेगा और उसका आनन्द दिन प्रति दिन बढ़ता जायगा] ब्रह्मचर्य शास्त्र में तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष वीर्य कभी निष्फल होता ही नहीं, और होना ही नहीं चाहिए, और जैसा पुरुष के लिए वैसा ही स्त्री के लिए भी, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब

मनुष्य अथवा पुरुष निर्विकार होते हैं तब वीर्य हानि असम्भवित हो जाती है और भोगेच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है; और जब पति पत्नी सन्तान की इच्छा करते हैं तभी एक दूसरे का मिलन होता है। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमी के ब्रह्मचर्य का है। अर्थात् स्त्री पुरुष का मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के लिए उचित है, भोग तृप्ति के लिए कभी नहीं।

यह हुई कानूनी बात अथवा आदर्श की बात। यदि हम इस आदर्श को स्वीकार करें तो हम समझ सकते हैं कि भोगेच्छा की तृप्ति अनुचित है। और हमें उसका यथाचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियम का पालन नहीं करता। आदर्श की बात करते हुए हम शक्ति का ख्याल नहीं कर सकते। लेकिन आजकल भोग तृप्ति का आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो नहीं सकता। यह स्वयं सिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादा नहीं होना चाहिए। अमर्यादित भोग से नाश होता है यह सभी स्वीकार करते हैं त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीन काल से रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्य के नियमों को हम जानते नहीं हैं, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा होती है और ब्रह्मचर्य पालन में अनावश्यक कठिनाई महसूस करते हैं अब जो आपत्ति मुझे पत्र लेखक ने बताया है वह आपत्ति ही नहीं रहती है क्योंकि सन्तति के ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री पुरुषों का मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियम को जानने के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जब तक स्त्री ने गर्भ धारण नहीं किया तब तक प्रत्येक ऋतुकाल के बाद जब तक गर्भ धारण नहीं हुआ है तब तक प्रति मास एक बार स्त्री पुरुष का मिलन क्षंतव्य हो सकता है और यह नियम भोग तृप्ति के लिए न माना जाय, मेरा

यह अनुभव है, कि [जो मनुष्य वचन से और कार्य से विकार रहित होता है। उसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि का किसी प्रकार का डर नहीं है]। इतना ही नहीं, बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियों से भी मुक्त होते हैं और इनमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस वीर्य से मनुष्य जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रह से अमोघ शक्ति होनी ही चाहिये। यह बात शास्त्रों में तो कही गई है लेकिन हरएक मनुष्य इसे अपने लिए यत्न से सिद्ध कर सकता है और जो नियम पुरुषों के लिए है वही स्त्रियों के लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मन से विकारमय रहते हुए शरीर से विकार रहित होने की व्यर्थ आशा करता है और अन्त में मनुष्य और शरीर दोनों को क्षीण करता हुआ गीता की भाषा में मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

—: ० :—

धर्म संकट

एक सज्जन लिखते हैं :—

करीब २½ साल हुआ, हमारे शहर में एक घटना हो गई थी, जो इस प्रकार है :—

एक वैश्य गृहस्थ की १६ बरस की एक कुमारी कन्या थी। इस लड़की का मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्ष की थी, स्थानीय कालेज में पढ़ता था। यह तो मालूम नहीं कि कब से इन दोनों मामा और भांजी में प्रेम था, पर जब बात खुल गई तो इन दोनों ने आत्म-हत्या कर ली। लड़की तो फौरन ही ज़हर खाने के बाद मर गई, पर लड़का दो रोज़ बाद अस्पताल में मरा। लड़की को गर्भ भी था। इस बात की शुरू शुरू में तो खूब चर्चा चली। यहाँ तक की अभागे माँ-बाप को शहर में रहना भारी हो गया। पर

वक्त के साथ साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे। कभी जब ऐसी मिलती जुलती बात सुनने को मिलती है तब पुरानी बातों की भी चर्चा होती है और यह वाक़या भी दोहरा दिया जाता है। पर उस जमाने में जब सभी करीब करीब लड़की को और लड़के को भी बुरा भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज की थी कि ऐसी हालत में समाज को विवाह कर लेने की इजाजत दे देनी चाहिए। इस बात से समाज में खूब बवडर उठा। आपकी इस पर क्या राय है।"

मैंने स्थान का और लेखक का नाम नहीं दिया है, क्योंकि लेखक नहीं चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाज मे त्याज्य माने जाते हैं। वहाँ विवाह का रूप वे यकायक नहीं ले सकते। लेकिन किसी की स्वतंत्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यों करें? ये मामा और भांजी सयानी उम्र के थे, अपना हित अहित समझ सकते थे। उन्हें पति पत्नी के सम्बन्ध से रोकने का किसी को हक नहीं था। समाज भले ही इस सम्बन्ध को अस्वीकार करता, पर उन्हें आत्महत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकार के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमों में ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं माने जाते—हिन्दुओं में भी प्रत्येक वर्ण में त्याज्य नहीं हैं। उसी वर्ण के भिन्न प्रान्त में भिन्न प्रथा है। दक्षिण में उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणों मे ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नहीं बल्कि स्तुत्य भी माने जाते हैं। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या सात्विक निर्णय से बने हैं।

लेकिन समाज के सब प्रतिबन्धों को नवयुवक वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दें, यह भी नहीं होना चाहिये। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाज में रूढ़ि का त्याग करवाने के लिए लोकमत तैयार करवाने की आवश्यकता है। इस बीच में व्यक्तियों को ध्यान रखना चाहिए। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादि को सहन करना चाहिए।

दूसरी ओर समाज का यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज बंधन तोड़ें उनके साथ निर्दयता का बर्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिए। उक्त आत्महत्याओं का दोष जिस समाज में, वे हुईं। उस पर अवश्य है, ऐसा ऊपर के पत्र से सिद्ध होता है।

विवाह की मर्यादा

एक मित्र लिखते हैं :—

"हरिजन सेवक" अंक में धर्म संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि "(उक्त प्रकार के अर्थात् मामा भांजी के सम्बन्ध जैसे) सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नहीं है।.................ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने हैं। यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्विक निर्णय से बने हैं।"

मेरा अनुमान है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से लगाये गये हैं। इस शास्त्र के ज्ञाता ऐसा मानते हैं कि विजातीय तत्वों के मिश्रण से संतति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओं का पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि केवल रूढ़ि है तो फिर सगी और चचेरी बहनों के सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है ? यदि विवाह का हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादन के ही लिए दम्पति का संयोग करना योग्य है तो फिर वह कन्या के चुनाव के औचित्य की कसौटी सुप्रजनन की क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटियाँ गौण समझी जायँ ? यदि हाँ, तो किस क्रम से यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी राय में वह इस प्रकार होना चाहिए—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।

(२) सुप्रजनन की क्षमता।

(३) कौटुम्बिक और व्यौहारिक सुविधा।

(४) समाज और देश की सेवा—

(५) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस सम्बन्ध में क्या मत है ?

हिन्दू शास्त्रों में पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है सधवाओं को आशीर्वाद दिया जाता है "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव"। आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पती संतान के लिए संयोग करें तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही सन्तान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की वंश वर्धन की इच्छा के साथ ही पुत्र से नाम चलता है, यह इच्छा भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़की से इस इच्छा का समाधान कैसे हो सकता है ! बल्कि अभी तक समाज में 'लड़की के जन्म' उतना स्वागत नहीं होता। जितना की लड़के के जन्म का होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओं को सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की इस तरह दो संतति पैदा करने की छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल संतानोत्पादन के लिए संयोग करने वाले दम्पती ब्रह्मचारी वत् ही समझे जाने चाहिए—यह ठीक है। यह भी सही है कि संयम जीवन में एक ही बार संयोग से गर्भ रह जाता है। पहली बात की पुष्टि में एक कथा प्रचलित है –

वसिष्ठ की कुटिया के सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वसिष्ठ ग्रहस्थ थे। जब भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोस कर विश्वामित्र को खिलाने जाती, बाद को बसिष्ट के घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्य क्रम था। एक रोज बारिश हुई और नदी में बाढ़ आ गई। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वसिष्ट से इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा—जाओ नदी से कहना, मैं सदा निराहारी विश्वामित्र को भोजन देने जा रही हूँ मुझे रास्ता दे दो। अरुन्धती ने इसी प्रकार नदी से कहा और उसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धती के मन में बड़ा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज़ तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुए? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुन्धती ने उनसे पूछा, 'मैं वापिस कैसे जाऊँ,' नदी में तो बाढ़ है? विश्वामित्र ने उलट कर पूछा—'तो आई कैसे?' अरुन्धती ने उत्तर में बसिष्ट का पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्र ने कहा—'अच्छा, तुम नदी से कहना, सदा ब्रह्मचारी बसिष्ट के यहाँ लौट रही हूँ, नदी मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। बसिष्ठ के सौ पुत्रों की तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वसिष्ठ से इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्र को सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूँ? बसिष्ट ने बताया—"जो केवल शरीर रक्षण के लिए ही ईश्वरार्पण बुद्धि से भोजन करता है वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है।

और जो केवल स्वधर्म पालन के लिए अनासक्ति पूर्वक सन्तानोत्पादन करता है वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।"

परन्तु इसमें और मेरी समझ में तो शायद हिन्दू शास्त्र में भी केवल एक संतति फिर वह कन्या हो या पुत्र का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्री का नियम मान्य हो, तो मैं समझता हूँ। बहुतेरे दम्पतियों को समाधान हो जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल सन्तानोत्पादन के लिए, और फिर भी प्रथम संतति के ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयम से रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि "काम" मनुष्य प्रेरणा है। उसमें संयम सुसंस्कार का सूचक है। 'संतति के लिए संयोग, का नियम बना देने से सुसंस्कार, संयम या धर्म की तरफ मनुष्य की गति होती है, इसलिए यह वांछनीय है। सन्तानोत्पत्ति के ही लिए संयोग करने वाले संयमी का आदर करूँगा। कामेच्छा की तृप्ति करने वाले को भोगी कहूँगा। पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझ कर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचार में मेरी कहीं ग़लती होती हो, तो बतावें।"

विवाह में जो मर्यादा बाँधी गई है उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढ़ि को ही, जो मर्यादा की वृद्धि के लिए बनाई जाती है। नैतिक कारण मानने में कोई आपत्ति नहीं है। संतान हित की दृष्टि से ही अगर भाई बहन के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बहिन इत्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिए। लेकिन भाई बहन के सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्म में नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़ि का जो प्रतिबन्ध जिन

समाज में ही उसका अनुशरण उचित मालूम देता है। नैतिक विवाह के लिए जो पाँच मर्यादाएँ हमारे मित्र नें रखी है; उनका क्रम बदलना चाहिये। पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरीं सब शर्तें उस के आश्रय में जाने से निरर्थक बन सकती हैं। इसलिए उक्त क्रम में आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश सेवा को दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यवहारिक सुविधा को तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्तों का अभाव हो, वहाँ पारस्परिक प्रेम को स्थान नहीं मिल सकता। अगर प्रेम का प्रथम स्थान दिया जाय, तो वह सर्वोपरि धन कर दूसरों की अवगणना कर सकता है और करता है। ऐसा आज कल के व्यवहार में देखने में आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओ में भी यह पाया जाता है इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्तों का पालन होते हुए भो जहाँ पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहाँ विवाह त्याज्य है। सुप्रजनन की क्षमता को शर्त न माना जाय। क्योंकि यही एक वस्तु विवाह का कारण है, विवाह की शर्त नहीं।

हिन्दू शास्त्र में पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस काल के लिए ठीक था जब समाज में शास्त्र युद्ध को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुष वर्ग की बड़ी आवश्यकता थी। उसी कारण से एक से अधिक पत्नियों को भी इजाजत थी और अधिक पुत्रों से अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टि से देखें, तो एक ही संतति 'धर्मज या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्री के बीच भेद नहीं करता हूँ। दोनों एक समान स्वागत के योग्य हैं।

वसिष्ट विश्वामित्र का दृष्टान्त सार रूप में अच्छा है। उसे

शब्दशः सत्य अथवा शवच मानने की आवश्यकता नहीं। उससे इतना ही सार निकालना काफ़ी है कि संतानोत्पत्ति के ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्य का विरोधी नहीं है। कामाग्नि की तृप्ति के कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। उसे निंद्य मानने की आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री पुरुषों का मिलन भोग के कारण ही होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होता रहता है उन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक बनाना चाहता है जो जीव मात्र की सेवा को आदर्श समझ कर संसार यात्रा समाप्त करना चाहता है उसके लिए ही ब्रह्मचर्यादि मर्यादा का विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्र में प्रकाशित एक अत्यन्त बीभत्स पुस्तक के विज्ञापन की कतरन एक बहिन ने मुझे भेजी है और लिखा है :—

"—के पृष्ठों पर नजर डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखने में आया। मैं यह नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नहीं। आपके पास जाता भी हो तो भी मेरे ख्याल में इसकी तरफ नजर डालने का आपको कभी समय नहीं मिलता होगा। पहले भी एक बार मैंने आपसे "अश्लील विज्ञापनों" के बारे में बात की थी। मेरी यह बड़ी ही इच्छा है कि इस विषय में आप किसी समय कुछ लिखें। जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है इस किस्म की पुस्तकों का आज बाजार में बाढ़ सी आ रही है, यह बिलकुल सच्ची बात है। पर—जैसे जवाबदार पत्रों के लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तकों की बिक्री को प्रोत्साहन दें। इन चीजों

से मेरा स्त्री हृदय इतना अधिक दुखता है कि मैं सिवा आपके और किसी को लिख नहीं सकती। ईश्वर ने स्त्री को विशेष उद्देश्य के लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन लंपटता को उत्तेजन देने के लिए किया जाय, यह चीज़ इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दों से नहीं प्रगट की जा सकती ··· ········ । मैं चाहती हूँ कि इस सम्बन्ध में भारत के प्रमुख अखबारों और मासिक पत्रों की क्या जवादारी है उसके बारे में आप लिखें। आपके पास आलोचना के लिए भेज सकूँ ऐसी यह कोई पहली ही कटिंग नहीं है।

इस विज्ञापन में से कुछ भी अंश मैं यहाँ उद्धृत नहीं करना चाहता। पाठकों से सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उसमें के व्यंजित लेखों का वर्णन करने में जितनी अश्लील भाषा का उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है। इस पुस्तक का नाम "स्त्री के शरीर का सौंदर्य्य" है और विज्ञापन देने वाला फ़र्म पाठकों से कहता है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे "नववधू के लिए नया ज्ञान" और "संभोग अथवा संभोगी को कैसे रिझाया जाय" नामक यह दो पुस्तकें मुफ़्त दी जायँगी।

इस किस्म की पुस्तकों का विज्ञापन करने वालों को मैं किसी तरह रोक सकता हूँ या पत्र सम्पादकों और प्रकाशकों से उनके अख़बारों द्वारा मुनाफ़ा उठाने का इरादा मैं छुड़वा सकता हूँ। ऐसी आशा अगर यह बहिन रखती हैं तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तकों या विज्ञापनों के प्रकाशकों से मैं चाहे जितनी अपील करूँ उससे कोई मतलब निकलने का नहीं। किन्तु मैं पत्र लिखने वाली इस बहिन से और दूसरी ही ऐसी विदुषी बहनों से इतना कहना चाहता हूँ कि वे बाहर मैदान में आवे और जो काम ख़ास करके उनका है और जिसके लिए उनमें खास योग्यता है उस काम को वे शुरू कर दें। अक्सर देखने में आया है कि किसी मनुष्य को खराब नाम

दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्री को "अबला" कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहने का अर्थ अगर यह हो कि स्त्री में पुरुष की जैसी पाशविक वृति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी की पुरुष में होती है। तो यह आरोप माना जा सकता है। पर यह चीज तो स्त्री को पुरुष की अपेक्षा पुनीत बनाने वाली है। और स्त्री पुरुष की अपेक्षा तो पुनीत है ही। वह अगर आघात करने में निर्बल है तो कष्ट सहन करने में बलवान है मैंने स्त्री को त्याग और अहिंसा की पूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्व की रक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुष ने स्त्री के सतत्व की रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं। वह ऐसा करना चाहें तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही राम ने सीता के या पांच पाण्डवों ने द्रौपदी की शील की रक्षा नहीं की। इन दोनो सतियों ने अपने सतीत्व के बल से ही अपने शील की रक्षा की। कोई भी मनुष्य वगैर अपनी सम्पति के अपनी इज्जत आबरू नहीं खोता कोई नर पशु किसी स्त्री को बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्री के शील या सतीत्व का लोप नहीं होगा इसी तरह कोई दुष्ट स्त्री किसी पुरुष को जड़ बना देने वाली दवा खिला दे और उससे अपना मन चाहा कराये तो उससे उस पुरुष के शील या चारित्र्य का नाश नहीं होता है।

आश्चर्य तो यह है कि सौंदर्य की प्रशंसा में पुस्तकें बिल्कुल नहीं लिखी गई। तो फिर पुरुष की विषय वासना उत्तेजित करने के लिए ही साहित्य क्यों हमेशा तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुष ने स्त्री को जिन विशेषणों से भूषित किया है उन विशेषणों को सार्थक करना उसे पसन्द है? स्त्री को क्या यह अच्छा लगता

होगा कि उसके शरीर के सौंदर्य का पुरुष अपनी भोग लालसा के लिए दुरुपयोग करे? पुरुष के आगे अपनी देह की सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हाँ, तो किस लिए? मैं चाहता हूँ कि यह प्रश्न सुशिक्षित बहिनें खुद अपने दिल से पूछें। ऐसे विज्ञापनों और ऐसे साहित्य से उनका दिल दुखता हो तो उन्हें इन चीज़ों के विरुद्ध अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्षण में वे इन चीज़ों को बन्द करा देंगी। स्त्री में जिस प्रकार बुरा करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है उसी प्रकार भला करने की लोक हित साधन करने की शक्ति भी उसमें सोई हुई पड़ी है। यह भाव अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो! अगर वह यह विचार छोड़ दें कि वह ख़ुद अबला हैं और पुरुष को खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य हैं तो वह खुद अपना तथा पुरुष का—फिर चाहे वह उनका पिता हो, पुत्र हो—या पति हो—जन्म सुधार सकती है। और दोनों के ही लिए इस संसार को अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र राष्ट्र के बीच पागलपन भरे युद्धों से और ज्यादा पागलपन भरे समाज नीति की नीव की विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्धों से अगर समाज को अपना संहार होने नहीं देना है, तो स्त्री—को पुरुष की तरह नहीं; जैसे कि कुछ स्त्रियाँ करती हैं। बल्कि स्त्री की तरह अपना योग देना ही होगा, अधिकांशतः बिना किसी कारण के ही मानव प्राणियों के सहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसको हमसरी करने से स्त्री मानव जाति को सुधार नहीं सकती। पुरुष की जिस भूल से पुरुष के साथ साथ स्त्री का भी विनाश होने वाला है। उस भूल में से पुरुष को बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को समझ लेना चाहिये यह वाहियात विज्ञापन तो सिर्फ़ यही बताता है कि हवा का रुख किस तरफ़ है। इसमें बेशर्मी के साथ स्त्री का अनुचित लाभ उठाया गया

है। 'दुनिया की जंगली जातियों की स्त्रियों के शरीर सौन्दर्य्य को भी इसने नहीं छोड़ा।

—:०:—

स्त्रियों में देवीत्व का झूठा आरोप

अहमदाबाद में गुजराती साहित्यिक सम्मेलन के अवसर पर ज्योति संघ नामक आन्दोलन की संरक्षिका महिलाओं की ओर से गाँधी जी को एक पत्र लिखा गया था जिसमें उस प्रस्ताव की एक प्रति भी थी जो उन्होंने आधुनिक लेखकों की स्त्रियों के अश्लील चित्रण करने की प्रवृति को तिरस्कृत करने के लिए—पास किया गया था। गाँधी जी ने अनुभव किया कि प्रस्ताव में काफी शक्ति थी और उन्होंने कहा :—

उनकी शिकायत यह है कि आधुनिक लेखक स्त्रियों का झूठा चित्रण करते हैं। जिस भावुकता के साथ लेखक उन्हें चित्रित करते और उनके शरीर का जिस अश्लीलता से वर्णन करते हैं उससे वे ऊब गई हैं। क्या उनका सारा सौंदर्य और शक्ति पुरुषों की वासना भरी दृष्टि को प्रसन्न कर पाने में ही है? पत्र के लेखक ने पूछा है (और वह न्यायसंगत है) कि उनका चित्रण सदा नम्र, और दुर्बल स्त्री के ही रूप ही में किया जाय जिसके लिए घर के सभी निम्नकोटि के कार्य रिजर्व रखे जाते हैं और जिनके देवता उनके पति ही हैं? उनका वास्तविक चित्रण क्यों नहीं किया जाता लोग कहते हैं हम न तो आकाश की अप्सरायें हैं न गुड़ियाँ हैं और न वासना और स्नायु के समूह ही हैं। हम उतनी ही मानवीं हैं, जितने पुरुष और हमारे भीतर स्वतंत्रता की वैसी ही लहर है। मैं

उन्हें और उनके मस्तिष्क को जानती हूँ। एक समय था जब दक्षिणी अफ्रीका में मेरे निकट केवल स्त्रियाँ ही रह गई थीं क्योंकि उनके पति जेल जा चुके थे। लगभग ६० स्त्रियां और बालिकाएँ थी और मैं उनके भाई और पिता सा हो गया था। मेरे संरक्षण में उन्होंने और संगठन प्राप्त किया। यहाँ तक कि अन्त में वे स्वयं जेल गईं।

लोग मुझसे कहते हैं कि हमारा साहित्य स्त्रियों में दैवी भावनाओं से भरा हुआ है। मैं कहता हूँ, यह बिलकुल ग़लत है। आप जब उनके विषय में लिखने वाले होते हैं, तो उन्हें किस दृष्टिकोण से देखते हैं? उस समय आपको उन्हें माँ के रूप में देखना चाहिए और मैं विश्वास दिलाता संसार का आपकी लेखनी से पवित्रतम साहित्य प्रवाहित होगा। इतना पवित्र जितना प्यासी धरती को सींचने वाली जलधार होती है। उनकी आत्मिक तृष्णा मिटाने की जगह कुछ लेखक उनको वासना और उत्तेजित करते हैं। यहाँ तक कि बहुत सी निष्कलुष स्त्रियाँ इसमें परेशान रहती हैं। उपन्यासों में चित्रित किये गये रूप को किस प्रकार प्राप्त करें। क्या शारीरिक रूप का विस्तृत वर्णन साहित्य का अवश्यक अंग है? मुझे इस पर आश्चर्य है। क्या आपको इस प्रकार की कोई बात उपनिषदों कुरान और बाइबिल में मिलती है? और फिर आप जानते हैं कि बिना बाइबिल के अंग्रेज़ी साहित्य सूना हो जायगा। ३ अंश बाइबिल और एक अंश शेक्सपियर यही इसकी परिभाषा है। बिना कुरान के अरबी भूल जायगी और तुलसीदास को छोड़ कर हिन्दी के विषय में विचार करो। क्या आप को इसमें कोई ऐसी चीज़ मिलती है जैसी आधुनिक साहित्य में।

आत्म रक्षा कैसे करें

पंजाब के एक कालेज की लड़की का एक हृदय स्पर्शीपत्र करीबन दो महीने से मेरी फाइल में पड़ा हुआ है। इस लड़की के प्रश्न का जवाब जो अभी तक नहीं दिया इसमें समय के अभाव का तो एक बहाना था। किसी न किसी तरह इस काम से अपने को मैं बचा रहा था। हालांकि मैं यह जानता था कि इस प्रश्न का क्या जबाब देना चाहिये। इस बीच में मुझे एक और पत्र मिला यह पत्र एक ऐसी बहिन का लिखा हुआ है, जो बहुत अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेज की इस लड़की की जो यह बहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुकाबला करना मेरा कर्तव्य है, और इसकी अब मैं और अधिक दिनों तक उपेक्षा नहीं कर सकता पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी में लिखा है जिसका एक भाग मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ।

लड़कियों और वयस्क स्त्रियों के सामने उनकी इच्छा के विरुद्ध ऐसे अवसर आ जाया करते हैं। जब कि उन्हें अकेली जाने की हिम्मत करनी पड़ती है—यों तो उन्हें एक ही शहर में एक जगह से दूसरी जगह जाना होता है। या एक शहर से दूसरे शहर को। और जब वे इस तरह अकेली होती हैं, तब गन्दी मनोवृत्ति वाले लोग उन्हें तंग किया करते हैं। और अगर भय उन्हें रोकता है तो इससे भी आगे बढ़ने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मैं यह जानना चाहती हूँ कि ऐसे मौकों पर अहिंसा क्या काम दे सकती है हिंसा का उपयोग तो है ही। अगर किसी लड़की या स्त्री में काफी हिम्मत हो, तो उसके पास जो भी साधन होंगे उन्हें वह काम में लायगी, और एक बार बदमाशों को सबक सिखा देगी।

वे कम से कम हँगामा तो मचा सकती हैं जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाये, और गुण्डे वहाँ से भाग जावें, लेकिन मैं यह जानती हूँ कि इसके परिणाम स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नहीं है। अशिष्ट व्यवहार करने वाले लोगों का अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हें अगर समझाया जाय तो वे आपकी प्रेम और नम्रता की बात सुनेंगे। पर उस आदमी के लिए आप क्या कहेंगे, जो साइकिल पर चढ़ा हुआ किसी लड़की या स्त्री को देखकर जिसके साथ को मर्द कोई साथी नहीं है, गन्दी भाषा का प्रयोग करता है? उसे दलील देकर आपको समझाने का मौका नहीं। आपक उससे फिर मिलने की सम्भावना नहीं। हो सकता है कि आप उसे पहचाने भी नहीं, आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थितियों में यह बेचारी स्त्री या लड़की क्या करे? मैं अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूँ। २६ अक्टूबर की रात की बात है। मैं अपनी एक सहेली के साथ ७½ बजे के करीब एक ख़ास काम से जा रही थी। उस वक़्त किसी मर्द साथी को साथ ले जाना नामुमकिन था। और काम इतना ज़रूरी था कि टाला नहीं जा सकता था। रास्ते में, एक सिक्ख युवक साइकिल पर जा रहा था, वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जब तक की हम सुन सकें उसने गुनगुनाना जारी रखा। हमें यह मालूम था कि वह हमें लक्ष करके गुनगुना रहा है। हमें उसकी यह हरकत नागवार मालूम हुई। सड़क पर कोई चहल पहल नहीं थी। हमारे चन्द कदम जाने से पहले वह लौट पड़ा। हम उसे फ़ौरन पहचान गये, हालांकि वह अब भी हमसे काफ़ी फ़ासले पर था। उसने हमारी तरफ़ साइकिल घुमाई। ईश्वर जाने उसका इरादा उतरने का था, या यूँ ही हमारे पास से गुजरने का हमें ऐसा लगा कि हम खतरे में हैं। हमें अपनी शारीरिक

बहादुरी में विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़की के मुकाबले शरीर से कमज़ोर हूँ। लेकिन मेरे हाथ में एक बड़ी सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आ गई साइकिल की तरफ़ हमने उस किताब को जोर से मारा, और चिल्लाकर कहा, "चुहल बाजी करने की तू फिर हिम्मत करेगा?" वह मुश्किल से अपने को सम्भाल सका और साइकिल की रफ्तार बढ़ाकर वहाँ से रफूचक्कर होगया। अब अगर मैंने उसकी साइकिल की तरफ़ किताब जोर से न मारी होती, तो अन्त तक वह इसी तरह अपनी गन्दी भाषा से हमें तंग करता जाता। यह तो एक मामूली बल्कि नगण्य सी घटना है पर मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आते और हम हतभागिनी लड़कियों की मुसीबतों का दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्या का ठीक-ठीक हल ढूँढ़ सकते हैं, सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियों का मैंने वर्णन किया है उनमें लड़कियाँ अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग किस तरह कर सकती हैं। और कैसे अपने आपको बचा सकती हैं। दूसरे स्त्रियों को अपमानित करने की जिन युवकों को यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है उनको सुधारने का क्या उपाय है? आप यह उपाय न सुझाएगा कि हमें उस पीढ़ी के आने तक इन्तजार करना चाहिए और तब तक हम इस अपमान को चुपचाप बरदास्त करते रहें, जिन पीढ़ी ने हो बचपन से स्त्रियों के साथ भद्रोचित व्यवहार करने की शिक्षा पाई होगी, सरकार की या तो इस सामाजिक बुराई का मुकाबला करने की इच्छा नहीं या ऐसा करने में वह असमर्थ हैं। और हमारे बड़े बड़े नेताओं के पास ऐसे प्रश्नों के लिए वक्त नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़की ने अशिष्टता से पेश आने वाले नवयुवक की अच्छी तरह से मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं, "शाबास ऐसी ही सब लड़की को करना चाहिए।

कभी कभी किसी नेता को हम विद्यार्थियों के ऐसे दुर्व्यवहार के खिलाफ छूटादार भाषण करते हुए पाते हैं। मगर ऐसा कोई नजर नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्या का हल निकालने में निरंतर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और दूसरे ऐसे ही त्योहारों पर अखबारों में इस किस्म की चेतावनी की नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखने तक के लिए औरतों को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। इसी एक बात से आप जान सकते हैं कि दुनिया के इस हिस्से में हम कैसी मुसीबतों में फँसी हुई हैं। ऐसी ऐसी नोटिसों को जो लिखते हैं न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं और न पढ़ने वाले ही ऐसी चेतावनियाँ क्या उन्हें निकालनी चाहिएँ ?"

एक दूसरी पंजाबी लड़की को मैंने यह पत्र पढ़ने के लिए दिया था। उसने भी अपने कालेज जीवन के नीजी अनुभव के आधार पर इस घटना का समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे संवाद दाता ने जो कुछ लिखा है। बहुत सी लड़कियों का अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिला ने लखनऊ की अपनी विद्यार्थिनी मित्रों के अनुभव लिखे हैं। सिनेमा थियेटरो में उनकी पिछली लाइन में बैठे हुए लड़के उन्हें दिक़ करते हैं, उनके लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसे मैं अश्लील के सिवा कोई नाम नहीं दे सकता। उन लड़कियों के साथ किये जाने वाले भद्दे मज़ाक भी पत्र लेखिका ने लिखे हैं। लेकिन मैं उन्हें यहाँ उद्धृत नहीं कर सकता।

अगर सिर्फ़ तात्कालिक निजी रक्षा का सवाल हो, तो इसमें सन्देह नहीं कि उस लड़की ने, जो अपने को शारीरिक दृष्टि से कमज़ोर बताती है, जो इलाज-साइकिल के सवार पर ज़ोर से किताब मारकर किया, वह बिल्कुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है।

मैं "हरिजन" में पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबरदस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्ते में शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नहीं डालती, भले ही उसके मुकाबले में शारीरिक दृष्टि से कोई बहुत बलवान विरोधी हो और हम यह भली भाँति जानते हैं कि आजकल तो जिस्मानी ताकत इस्तेमाल करने के इतने ज्यादा तरीके इजाद हो चुके हैं कि एक छोटी लेकिन काफ़ी समझदार लड़की किसी की हत्या और विनाश तक कर सकती है। जिन परिस्थिति का जिक्र पत्र लेखिका ने किया है, वैसी परिस्थितियों में लड़कियों को आत्म रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज आजकल बढ़ रहा है। लेकिन वह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह उस क्षण आत्मरक्षा के हथियार के तौर पर अपने हाथ की किताब मार कर बच गई हो। लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई असली इलाज नहीं है। भद्दे अश्लील मज़ाक के कारण बहुत घबराने या डर जाने की ज़रूरत नहीं लेकिन इसकी ओर से आँख मूँद लेना भी ठीक नहीं। ऐसे सब मामले अख़बारों में छपा देने चाहिए। इस बुराई के भण्डा फोड़ करने में किसी का झूठा लिहाज़ नहीं करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराई के के लिए प्रबल लोकमत जैसा कोई इलाज नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि इन मामलों को जनता बहुत उदासीनता से देखती है। लेकिन सिर्फ़ जनता को ही क्यों दोष दिया जाये? उनके सामने ऐसे गुश्ताख़ी के मामले भी तो आने चाहिए, चोरी के मामलों तक के लिए उन्हें पता लगाकर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जब ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेंगे। इस बुराई का इलाज नहीं हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकार के लिए अन्धकार चाहते हैं जब उन पर रोशनी पड़ती है वे ख़ुद ब ख़ुद खत्म हो जाते हैं।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकल की लड़की को भी तो अनेकों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है। यह अति साहस को पसन्द करती है। मालूम होता है कि पत्र लेखिका ने जिस साहस का जिक्र किया है, वह असाधारण है। आजकल की लड़की वर्षा या धूप से बचने के उद्देश्य से नहीं बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए तरह तरह के भड़कीले कपड़े पहिनती हैं वह अपने को रंग कर कुदरत को भी मात करना और असाधारण सुन्दर दीखना चाहती हैं। ऐसी लड़कियों के लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नहीं है। मैं इन पृष्ठों में बहुत बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदय में अहिंसा की भावना के विकास के लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसा की भावना बहुत महान प्रयत्न है, विचार और जीवन के तरीके में यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र लेखिका या उस तरह का विचार रखने वाली लड़कियाँ ऊपर बताये गये तरीके से अपने जीवन को बिल्कुल ही बदल डालें तो उन्हें जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्क में आने वाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थिति में भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे हैं लेकिन यदि उन्हें मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्म पर हमला होने का खतरा है तो उनमें उस पशु मनुष्य के आगे आत्म-समर्पण करने के बजाय मर जाने तक का साहस होना चाहिए कहा जाता है कि इस तरह कभी कभी लड़की को बाँधकर या मुँह में कपड़ा ठूस कर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानी से मर भी नहीं सकती, जैसी की मैंने सलाह दी है। लेकिन फिर भी मैं जोरों के साथ यह कहता हूँ कि जिस लड़की में मुकाबले का दृढ़ संकल्प है वह उसे असहाय बनाने के लिए बाँधे गये सब बन्धनों को तोड़ सकती है दृढ़ संकल्प उसे मरने की शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और दिलेरी उन्हीं के लिए संभव है जिन्होंने इसका अभ्यास कर लिया है जिनका अहिंसा पर दृढ़ विश्वास नहीं है उन्हें रक्षा के साधारण तरीके सीखकर कायर युवकों के अश्लील व्यवहार से अपना बचाव करना चाहिए।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यों छोड़ दें। जिससे भली लड़कियों को हमेशा उनसे सताये जाने का डर लगता रहे? मुझे यह जानकर दुख होता है कि ज्यादातर नौजवानों में बहादुरी का ज़रा भी माद्दा नहीं रहा। लेकिन उनमें एक वर्ग के नाते नामवर होने की डाह पैदा होनी चाहिए उन्हें अपने साथियों में होने वाली प्रत्येक ऐसे वारदात की जाँच करनी चाहिए। यदि वे शिष्टाचार नहीं सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखाई-पढ़ाई फ़िज़ूल है।

और क्या यह प्रोफेसरों और स्कूल मास्टर का फ़र्ज़ नहीं है कि वे लोगों के सामने जैसे अपने विद्यार्थियों की पढ़ाई के लिए जिम्मेवार होते हैं। उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचार के लिए भी उनको पूरी तसल्ली दें।

आधुनिक लड़कियाँ

ग्यारह लड़कियों का लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है। उन्होंने अपने नाम व पते उसमें दिये हैं। उनके मैं उस पत्र को नीचे उद्धृत करता हूँ:—

एक विद्यार्थिनी के पत्र पर विवेचन करते हुए आपने हरिजन में "आत्मरक्षा कैसे करें।" शीर्षक का जो लेख लिखा है, वह खास

ध्यान से पढ़ने लायक है। मालूम होता है कि आधुनिक लड़कियों पर आपको इतनी ज्यादा चिढ़ है कि आपके सम्बन्ध में यहाँ तक कह डाला कि 'आजकल की लड़की को तो अनेकों (भ्रमरों) की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय है। सामान्य स्त्री के सम्बन्ध में आपका यह विचार बहुत प्रेरणाप्रद या उत्साह वर्द्धक नहीं है।

इन दिनों जब की स्त्रियाँ घर का एकान्तवास छोड़कर पुरुषों की मदद करने और जिन्दगी के बोझे में समान हिस्सा लेने के लिए बाहर निकली हैं यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि पुरुष अगर उन्हें बिल्कुल सताते हैं तो उसके लिए भी उन्हें बदनाम किया जाता है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण बताये जा सकते हैं कि जिनमें दोनों ही पक्षों का अपराध एक सा साबित किया जा सकता है। ऐसी भी कुछ लड़कियाँ हो सकती हैं कि जिन्हें अनेकों भ्रमरों की दृष्टि में आकर्षक बनना प्रिय हो। पर ऐसे उदाहरण से यह जाहिर होता है कि फूलों की शोध में सड़कों पर भ्रमने वाले अनेक भ्रमर भी मौजूद हैं किन्तु यह कभी नहीं कहा जा सकता और न कहना चाहिए कि सभी आधुनिक लड़कियाँ ऐसी ही हैं या आधुनिक युवक सभी भ्रमर हैं। आप खुद अनेक आधुनिक लड़कियों के सम्पर्क में आये हैं। इसीलिए उनके दृढ़ निश्चय त्याग और दूसरे स्त्रीत्व के सद्गुणों की छाप आपके ऊपर पड़नी ही चाहिए।

आपको पत्र लिखने वाली बहिन ने जिस किस्म के असभ्य बर्ताव का निर्देश किया है। उसके खिलाफ़ लोकमत तैयार करने का काम लड़कियों का नहीं है। इसका कारण झूठा शर्म नहीं, बल्कि यह है कि उनके कहने पर कोई ध्यान नहीं देता।

लेकिन आपके जैसे जगद्वन्द्य पुरुष जब ऐसी बात करते हैं तो

इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि "नारि नरक की खान" इस जीर्ण शीर्ण और अनुचित लोकोक्ति का आप भी समर्थन करते हैं।

किन्तु ऊपर जो लिखा है उससे यह न मान लीजिएगा कि आधुनिक जमाने की लड़कियों में आपके प्रति आदर की भावना नहीं है। हरेक नवयुवक के मन में आपके प्रति जितना आदर है उतना ही लड़कियों में भी है। उनका कोई अपमान करे या उनके प्रति दया दिखाये, यह उन्हें बहुत ही बुरा लगता है। उनका अगर सचमुच कोई अपराध हो तो अपना और तरीका सुधारने के लिए वे तैयार हैं। उनका अगर कोई कसूर हो तो उसे निश्चित रूप से साबित करने के बाद ही उन्हें दोष देना चाहिए। इस सम्बन्ध में वे "अबला" होने के आश्रय का बहाना नहीं लेना चाहती, न यही सहन कर सकती हैं कि न्यायाधीश उन्हें मनमाने तौर पर अपराधी ठहराये और वे चुपचाप खड़ी रहें। जो सत्य हो उसे स्वीकार करना ही चाहिए और आधुनिक लड़कियों में सत्य को स्वीकार करने की काफी हिम्मत है।"

पत्र लिखने वाली इन बहिनों को शायद यह मालूम न होगा कि दक्षिण अफ्रिका में ४० वर्ष से ऊपर का अर्सा हुआ, जबकि उनमें से किसी का जन्म भी नहीं हुआ होगा। उस वक्त मैंने भारत की महिलाओं की सेवा शुरू की थी। मेरा यह विश्वास है कि स्त्री वर्ग के प्रति अपमान जनक कोई लेख मेरी लेखनी से निकल ही नहीं सकता। स्त्री वर्ग के लिए मेरे मन में इतना अधिक आदर है कि यह विचार मेरे दिल में कभी आ ही नहीं सकता कि वे अवगुणों से भरी हुई हैं। अंग्रेजी में जैसा कि कहा है स्त्री पुरुष का उत्तम अर्द्धांग है। और मेरा वह लेख तो विद्यार्थियों की शर्मनाक करतूत को सामने रखने के लिए लिखा गया था, लड़कियों के दोषों को जाहिर करने के लिए नहीं। मगर इस रोग का निदान

बताने में, अगर मुझे उचित इलाज बताना हो तो, यह रोग जिन कारणों से पैदा हुआ उन सब चीजों का उल्लेख करना मेरा फर्ज था।

"आधुनिक लड़की" इस शब्द का एक खास अर्थ है। इसलिए यह कहने की जरूरत ही नहीं थी कि मेरा कथन अमुक लड़की पर ही लागू होता है। अंग्रेजी शिक्षा पाई हुई सभी लड़कियाँ "आधुनिक लड़कियाँ" नहीं हैं। जिन्हें आधुनिक लड़की की भावना और रहन सहन का जरा भी स्पर्श नहीं हुआ, ऐसी बहुत सी लड़कियों को मैं जानता हूँ। फिर भी ऐसी भी कितनी ही हैं कि जो "आधुनिक लड़कियाँ" बन गई हैं। मेरे कहने का उद्देश्य हिन्दुस्तान के लड़कियों को इतनी ही चेतावनी देने का था कि वे आधुनिक लड़की की नकल न करें और ऐसा करके जो प्रश्न बड़ा विकट और भयंकर बन गया है उसे और अधिक अटपटा न बना दें। क्योंकि इन बहनों का पत्र मुझे जब मिला, ठीक उसी समय आंध्र की एक विद्यार्थिनी का पत्र भी मिला। उसमें आंध्र के विद्यार्थियों के बर्ताव के बारे में बहुत बुरी तरह से शिकायत की गई है उनके बर्ताव का जो वर्णन उसमें दिया गया है वह तो लाहौर की लड़कियों द्वारा लिखे गये बर्ताव से भी बदतर मालूम होता है। आंध्र देश की वह कन्या मुझे लिखती है कि उनकी सहेलियों की सारी वेश-भूषा उनकी कुछ भी रक्षा नहीं कर सकती। पर उनमें उन लड़कों की बरबरता दुनिया के सामने रख देने की हिम्मत नहीं। जो अपनी शिक्षा संस्था के सिर कलंक स्वरूप हैं। इस शिकायत की ओर मैं आंध्र विश्वविद्यालय के अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करता हूँ।

उपर्युक्त पत्र लिखने वाली ग्यारहों बहनों को मेरी सूचना यह है कि वे विद्यार्थियों के असभ्य व्यवहार के खिलाफ़ जिहाद शुरू कर दें। जो अपने बल पर जूझते हैं उन्हीं की ईश्वर मदद करता है।

पुरुष की गुन्डा शाही से अपनी रक्षा करने की कला लड़कियों को सीखनी ही चाहिए।

— —

एक बहन के प्रश्न ?

प्रश्न— स्त्रियों के सामान की रक्षा किस प्रकार की जाय ?

उत्तर—इस प्रश्न के विषय मे दो प्रकार के विचार विनिमय किया जा सकता है।

(अ) स्त्री स्वय अपने सम्मान की रक्षा किस प्रकार करे ?

(ब) उसके सम्बन्धी जन उसकी रक्षा किस प्रकार करे ?

पहले प्रश्न के उत्तर मे जहाँ अहिंसात्मक वातावरण हो और जहाँ लगातार अहिंसा की शिक्षा दी जा रही है स्त्रियाँ अपने को परावलम्बी शक्तिहीन या असहाय नहीं समझेगी। यदि वह सचमुच पवित्र हो तो वह कमज़ोर नहीं। पवित्रता मे उन्हे अपनी शक्ति का ज्ञान होता है। मैंने सदा इस बात का समर्थन किया है कि स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसकी मान हानि करना असम्भव है। उसकी मान हानि तभी होती है। जब वह भयभीत हो जाती है या अपनी नैतिक शक्ति को भूल जाती है। यदि वह अपने शत्रु की शक्ति से लड़ने मे असमर्थ हो तो उसकी पतिव्रता द्वारा मानिहानि होने के पूर्व जीवन समपर्ण करने शक्ति आएगा सीता का उदाहरण लीजिए। रावण के समक्ष वह कितनी शक्ति हीन थी परन्तु उनकी पवित्र रावण की दानवी शक्ति से कहीं अधिक थी उसने नाना पकार प्रलोभनों द्वारा सीता को जीतने की चेष्टा की परन्तु उनकी इच्छा के विरुद्ध छू तक न सका दूसरी तरफ यदि वह अपनी शारीरिक

शक्ति या किसी अस्त्र पर ही निर्भर रहे तो निश्चय ही शक्ति न रहने पर उसकी मानहानि होगी।

'दूसरा प्रश्न सरल' है। पिता या मित्र अपने 'वार्ड' और उसके शत्रु के बीच उपस्थित होकर या तो··· को उसकी दुवृत्ति के विरुद्ध समझाए या अपना जीवन अर्पण करने को प्रस्तुत हो जाय। इस प्रकार अपना जीवन परित्याग करके वह अपना कर्तव्य ही नहीं करेगा बल्कि अपने ······को ऐसी शक्ति प्रदान करेगा जिससे वह अपनी सम्मान की रक्षा करने में समर्थ होगी।

प्रश्न—यहीं पर कठिनाई उपस्थित होती है। कोई स्त्री अपनी जीवन कैसे समर्पण करे? क्या उसके लिए ऐसा करना सम्भव है?

उत्तर—निश्चय ही पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए ऐसा सदा सम्भव है इससे भी छोटे कार्यों के लिए स्त्रियाँ जीवन अर्पण कर सकती हैं, यह मुझे मालूम है। कुछ दिनों पहले एक बालिका ने अपने को केवल इसलिए जीवित ही जला डाला कि उसे साधारण अध्ययन करने से इनकार करने के लिए दण्ड दिया जा रहा था। और उसने अपना परित्याग बड़ी शान्ति और साहस पूर्वक उसने किया। उसने एक दीपक से अपनी साड़ी जला ली और उसके मुँह से आवाज़ तक न निकली ताकि जब तक सब समाप्त न हो जाय समीपवर्ती लोगों को इस घटना की सूचना तक न मिले मैं उसका उदाहरण इसलिए नहीं दे रहा हूँ कि उसका अनुकरण किया जाय बल्कि यह दिखाने के लिए कि कितनी सरलता से वे अपना जीवन त्याग कर सकती हैं। मैं इस प्रकार के साहस से असमर्थ हूँ मैं सहमत हूँ कि इसके लिए आन्तरिक प्रकाश की आवश्यकता है ब्रह्म की नहीं।

प्रश्न—बच्चो का सामना करते समय क्रोध और हिंसा से कैसे बचाया जा सकता है ?

उत्तर—तुम्हें अपनी पुरानी कहावत याद होगी "पाँच वर्ष की अवस्था तक बच्चे के साथ खेलना चाहिए, १० वर्ष तक ताड़ना चाहिए १६ वर्ष का हो जाने पर उसके साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए।" परन्तु आप को दुःखी न होना चाहिए। यदि कभी बच्चे पर क्रोध आ जाय तो मैं उसे क्रोध को अहिंसात्मक ही कहूँगा। मैं चतुर माँओं की बात कर रहा हूँ, मूर्खों की नहीं जिन्हें माँ कहा भी नहीं जा सकता है।

'एक त्याग'

सन् १८९१ मे इङ्गलैण्ड से वापिस आकर मैंने घर का भार अपने ऊपर ले लिया और बच्चों के साथ—जिनमें लड़के और लड़कियाँ दोनों थी—उनके कन्धो पर हाथ रख कर घूमने की आदत डाली। ये मेरे भाई के बच्चे थे। जब वे बड़े हो गए तब भी हमारी यह आदत बनी रही और परिवारों की बढ़ती के साथ साथ, वह इतनी बढ़ती गई कि लोग इसे गौर से देखने लगे।

बहुत समय तक जब तक साबरमती आश्रम की एक वासी ने मुझे यह नहीं बताया कि मेरा बड़े लड़कों और लड़कियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार सामाजिक शिष्टता के विरुद्ध है मेरी उन बच्चो को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने की तनिक भी इच्छा नहीं थी। परन्तु उस वासी के साथ वाद-विवाद होने के बाद मैं वैसा ही करता रहा। हाल में ही दो सहकारियों ने जो वारधा आये थे, कहा कि सम्भव है मेरी यह आदत समाज के सामने एक बुरा

उदाहरण रक्खे। अतः मुझे यह आदत छोड़ देनी चाहिए। वैसे तो मैं मित्रो की चेतावती को अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखता, परन्तु उनका तर्क मुझे उचित न लगा। ऐसी हालत में मैंने आश्रम के पाँच वासियों की राय ली। उन्होंने कहा कि युनिवर्सिटी के विद्यार्थी का जो उसके प्रभाव में थी बहुत तरह का स्वच्छन्द व्यवहार करता था और कहता था कि वह उसे अपनी बहन का तरह मानता है और उस प्रेम के वाह्य प्रदर्शन से बच सकना उसके लिए नितान्त असम्भव है। किसी प्रकार की अपवित्रता को ध्यान कराने पर घृणा प्रदर्शित करता। यदि मैं बताऊँ कि वह लड़का क्या कर रहा था तो पाठक देखेंगे कि उसकी सारी स्वच्छन्दता अपवित्र थी। जब मैंने उसका पत्र व्यवहार पढ़ा। तो मुझे तथा और लोगों को जिन्होंने उसे देखा पता चला कि या तो वह पाखण्डी था या उसे अपने विषय में भ्रम था।

किसी प्रकार इस खोज से मैं सोचने लगा। मैंने पिछले दोनों सहकारियों की बात याद की और विचारा यदि वह लड़का अपने पक्ष के लिए मेरे उदाहरण का सहारा ले तो मुझे कैसा लगेगा। मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि वह लड़की जो उस युवक की इच्छाओं का शिकार हो रही है, जो कि उसे पवित्र और भाई की तरह समझती है, उन व्यवहारो को पसन्द नहीं करती बल्कि उनका विरोध करती है, परन्तु लड़के के कार्यों को रोकने में असमर्थ है। इस घटना को लेकर अपने ऊपर विचार करने का परिणाम यह हुआ कि दो तीन दिनों मैं मैंने अपनी आदत छोड़ दी और बारवा आश्रम की वासियों को उसी महीने की १२ तारीख को सूचना भेज दी। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह निर्णय करते समय मुझे दुःख हुआ। इस आदत के कारण या आदत के रहते; समय मेरे मन में कभी कोई अपवित्र विचार नहीं आया। मेरा व्यवहार खुला हुआ

था। मेरा विश्वास है यह एक माता-पिता की तरह का व्यवहार था और मेरे संरक्षण में रहने वाली न जाने कितनी लड़कियों मे मेरा इतना विश्वास हो गया है जितना शायद ही कभी किसी का रहा हो। मैं ऐसे ब्रह्मचर्य का समर्थक नहीं हूं जिसकी रक्षा के लिए कोई दीवल खड़ी करनी पड़े और जो थोड़ी भी लालच से टूट जाय, परन्तु साथ ही साथ मैं उन खतरों को भी जानता हूं जो मेरी तरह की स्वच्छन्दता से उत्पन्न हो सकते हैं।

मेरी आदत चाहे जितनी भी पवित्र क्यों न रही हो, इस खेज से मुझे छोड़ देनी पड़ी। मैं एक ऐसा अनुभव कर रहा हूं जिसमें सतत सचेत रहने की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए हजारों लोग मेरे हर काम को बड़े गौर से देखते हैं। मुझे ऐसे काम न करने चाहिए जिनके पक्ष मे बहस करने की आवश्यकता हो। मेरा उदाहरण सबके लिए नहीं था। उस युवक की घटना से चेतावनी मिली है। मुझे आशा है कि मेरा यह त्याग ऐसे सभी लोगों की रक्षा करेगा जिन्होने मेरी देखादेखी या स्वतः, गलती की होगी। निष्कलुष यौवन एक अमूल्य सम्पत्ति है जिसे क्षणिक उद्रेक के लिए जो सुख कहा जाता है, बहाना नहीं चाहिये, और इस लड़की की भांति जो शक्ति हीन हों, उन्हें चाहिए कि इस प्रकार के युवकों के व्यवहारो का विरोध करने की क्षमता प्राप्त करें, चाहे वे निष्पाप ही क्यों न घोषित किये जांय। ये युवक या तो गुण्डे होते हैं या इन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि क्या कर रहे हैं।

---

*

'उदार बहिनें बनो'

उदि बिल लड़कियों के कॉलेज जाफना में व्याख्यान देते हुए गाँधी जी ने कहा:—

आज प्रातःकाल तुम लोगो से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मुझे तुम लागों के छोटे छोटे उपहार, जो अपने हृदय के उद्गार स्वरूप तुमने एक बड़े उपहार के रूप में मिलाकर दिये हैं, ठीक नहीं लगे। मै जानता हूं लड़कों की अपेक्षा अधिक संकोची होने के कारण तुम यह नहीं बताना चाहती कि तुमने मुझे कुछ भी दिया है, परन्तु मेरे भारतवर्ष मे हजारों लाखों लड़कियों से मिलने के कारण, उनके लिए असम्भव है कि कोई अच्छा काम जो वे कर, मुझसे छिपा रक्खे।

कुछ ऐसी भी लडकियाँ है जो अपने बुरे काम भी मुझ से कहने मे नहीं हिचकतीं। मैं आशा करता हू कि यहाँ उपस्थित कोई भी लड़की कोई बुरा काम नही करती। मेरे पास इतना समय नहीं कि इसकी छानबीन करूँ, इसलिए मैं इस विषय मे प्रश्नों से तुम्हें परेशान नहीं करूँगा। लेकिन यदि हमारे बीच में ऐसी लड़कियाँ हैं जो बुरे काम करती हैं तो मैं उन्हे बता देना चाहता हूँ कि उनकी शिक्षा व्यर्थ है।

माँ-बाप तुम्हे यहाँ गुड़ियाँ बनने के लिए नहीं भेजते बल्कि उदार बहनें बनने के लिए, जिसकी वेषभूषा दूसरी ही होती है। जब से वह अपने से गरीबों और भाग्यहीनों के विषय में अधिक ध्यान देने लगती है और अपने विषय में कम सोचने-विचारने लगती है। उसके बाद तुरन्त वह उदार-बहन कहलाने लगती है।

तुम उदार बहनें बन गई हो क्योंकि तुमने ऐसे लोगों के लिए उपहार दिये हैं जो तुमसे गरीब हैं।

थोड़ा धन देना सरल है किन्तु स्वयं थोड़ा भी काम करना उससे कठिन है। यदि तुम्हें उन लोगों से सच्ची सहानुभूति है जिनके लिये तुमने यह भेंट दी है तो खादी पहनो जो उनकी बनाई हुई वस्तु है। यदि खादी तुम्हारे सामने लाई जाय और तुम यह कहो कि "खादी कुछ खुरदुरी है, हम इसे नहीं पहन सकतीं" तो मैं यही समझूँगा कि तुम्हारे भीतर आत्म-त्याग की भावना नहीं है।

यह इतनी सुन्दर चीज है कि इसमें छोटे बड़े, छूत-अछूत का कोई भेद-भाव नहीं और यदि तुम्हारा मन भी ऐसा ही चाहता है और अपने को कुछ लड़कियों से ऊँचा नहीं समझता, तो सचमुच बड़ा अच्छा है।

भगवान् तुम्हारा भला करे।

'विद्यार्थी लड़कियों को सलाह'

अपने जाफना रामनाथन गर्ल्स कालेज के व्याख्या में गाँधी जी ने कहाः—

जाफना के विभिन्न पाठशालाओं का दौरा समाप्त करने के लिए यहाँ आने में आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

तुम्हारी इस प्रतिज्ञा से कि आज तुम अपना वार्षिक अधिवेशन करोगी और खादी के लिये धन एकत्र करोगी, मैं प्रभावित हुआ हूँ। मैं यह जानता हूँ कि यह झूठी प्रतिज्ञा नहीं, बल्कि तुम धार्मिक रूप से इसकी पूर्ति करोगी। यदि वे करोड़ों लोग जिनकी ओर से मैं भ्रमण कर रहा हूँ, अपनी बहनों के इस दृढ़ प्रस्ताव को जान

पाते, तो मैं जानता हूँ उनके दिलों को प्रसन्नता होती, परन्तु तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि ये गूँगे करोड़ों लोग, जिनके लिए तुम लोगों ने तथा लङ्का के लोगो ने तमाम उपहार दिये हैं, यदि उन्हें समझाने की चेष्टा करूँ तो भी समझ भी नहीं पायेंगे। उनके दुःख भरे जीवन का सम्भवतः ऐसा कोई वर्णन नहीं हो सकता जो उसका सच्चा रूप तुम्हारे सामने रक्खे।

इसके बाद तुरन्त मैं इस प्रश्न पर पहुँचता हूँ, तुम लोग इस तरह के लोगों के लिए क्या करोगी?" थोड़ी सादगी का सुझाव पेश करना आसान है, परन्तु यह तो इस प्रश्न के साथ खिलवाड़ करना होगा।

इसी प्रकार के विचारों से मैं चरखे पर पहुँचा। जिस प्रकार मैं तुमसे कह रहा हूँ, वैसे ही अपने से कहा—"यदि तुम इन दलित लोगों और अपने बीच मे एक शृखला जोड़ सको तो तुम्हारे लिए और संसार के लिए कुछ आशा है।"

इस पाठशाला में तुम्हे धार्मिक शिक्षा बड़े अच्छे ढङ्ग से दी जाती है। यहाँ एक सुंदर मन्दिर भी है। यहाँ के पाठ्य क्रम से यह भी पता चलता है कि दिन में सब से पहले तुम पूजा करती हो जो बड़ा अच्छा और उन्नति शील है। लेकिन यदि प्रति दिन वह कार्यरूप में परिणाम नहीं किया जाता तो बड़ा सरलता मे यह एक रस्म अदाई ही तक रह जायगा। इसी लिए मैं कहता हूँ पूजा को कार्य रुप में लाने के लिए चर्खा का प्रयोग करो आधे घण्टे इसे लेकर बैठो और इन करोड़ों आदमियों के विषय में सोचो और ईश्वर के नाम पर कहो मैं इन्हीं के लिए कातती हूँ" यदि हृदय से और यह जान कर कि तुम इस कार्य से और सम्पन्न तथा विनम्र हो और यदि तुम दिखाने के लिए नहीं बल्कि अपने अंगो को ढकने के लिए पहनोगी तो तुम्हें खादी पहनने में और

अपने तथा करोड़ों लोगों में सम्बन्ध स्थापित करने में कोई हिचक न होगी।

यहाँ की लड़कियों से मैं इतना ही नहीं कहना चाहता। अगर तुम यह चाहती हो कि सर रामनाथ ने तुम्हारा जो ध्यान रखा और तुम्हारे लिए जो कुछ किया तथा श्रीमती रामनाथ जो कुछ तुम्हारे लिए कर रही हैं उसके योग्य बने रहो तो तुम्हें बहुत सी और चीजें करनी होगी। मैंने देखा है कि तुम्हारी पत्रिकाओं में पुराने स्कूलों में जो काम लड़कियाँ कर रही हैं, उसको गर्व के साथ वर्णन किया है। मैंने इस तरह की नोटिस भी देखी है। अमुक ने अमुक से विवाह किया—४ या ५ नोटिसें। मेरा ऐसा विचार है कि जो लड़की २२ या २५ साल की अवस्था पर पहुँच गई हो, उसके विवाह करने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन इन नोटिसों में एक भी ऐसी लड़की नहीं देखी जिसने अपना जीवन सेवा के लिए अर्पण कर दिया हो। इसलिए मैं तुमसे वही कहना चाहता हूँ हिज़-हाईनेश महाराजा कालेज बंगलौर की लड़कियों से कहा था कि शिक्षा के लिए जो प्रयत्न किया जाता है और यदि लड़कियाँ स्कूल छोड़ते ही जीवन से अलग किया जाता है हो जाँय और गुड़ियाँ बन जाँय तो हमें बहुत थोड़ी चीज़ मिलेगी। स्कूल और कालेज छोड़ने के साथ ही बहुत सी लड़कियाँ सामाजिक जीवन से अलग हो जाती हैं। इस जगह की लड़कियों को ऐसा न चाहिए तुम्हें मिस एमरी तथा अन्य लोगों का उदाहरण न भूलना चाहिए। जो यहाँ संरक्षण कर रही हैं। और यदि मैं झूठ न कहता होऊँ तो ब्रह्मचारिणी हैं।

हर लड़की हर हिन्दुस्तानी लड़की विवाह करने के लिए नहीं पैदा हुई है। मैं बहुत-सी ऐसी लड़कियों को बता सकता हूँ जिन्होंने एक पुरुष की सेवा की जगह अपना जीवन सेवा के लिए दे दिया

है। यही समय है जब हिन्दू लड़कियाँ अपने में से पार्वती और सीता जैसी स्त्रियाँ पैदा करें।

तुम अपने को 'सविता' कहती हो। तुम्हें मालूम है पार्वती ने क्या किया था? अपने पति के लिये उसने धन नहीं लगाया था और न अपने को ही बेचा था और आज वह हिन्दू समाज में सात सतियों में से एक मान कर पूजी जाती है—इसलिए नहीं कि उसने किसी विद्यालय में कोई डिग्री पाई थी बल्कि अपना अपूर्व तपस्या के कारण।

मैं यहाँ देखता हूँ दहेज की कुरीति प्रथा है किसी कारण युवती स्त्रियों का उपयुक्त वर मिलना कठिन हो जाता है। बड़ी अवस्था वाली लड़कियों से तुम में से कुछ बड़ी हो गई हैं—इस प्रकार की कुप्रथाओं के विरोध करने की आशा की जाती है। यदि करना पड़ा तो तुम्हें जीवन पर्यन्त या कुछ समय तक कुमारी रहना पड़ेगा। फिर जब तुम्हें जीवन साथी की आवश्यकता होगी, तो तुम्हें ऐसे पुरुष की तलाश नहीं होगी जो धनवान रूपवान प्रसिद्ध हो बल्कि जिसमें चरित्र का निर्माण करने वाले सभी अनुपम गुण हों। तुम्हें मालूम है नारद जी ने शिव जी के विषय में पार्वती से क्या कहा था—दुबला पतला भस्म लगा हुआ शरीर, शरीर में कोई सौन्दर्य नहीं, ब्रह्मचारी—और पार्वती ने कहा "हाँ वही मेरे पति होंगे। तुम्हें बहुत से शिव नहीं मिलते, जब तक में से कुछ लड़कियाँ तपस्या करने को तैयार न होगी—पार्वती की भाँति हजारों वर्ष नहीं। हम दुर्बल प्राणी ऐसा नहीं कर सकते, परन्तु तुम जीवन भर तो ऐसा कर ही सकती हो।

यदि तुम ये बातें स्वीकार करो तो तुम्हारा गुड़ियों की तरह दिखाई देना बन्द हो जाय और तुम्हारी इच्छा होगी कि पार्वती, सीता, दमयन्ती, सावित्री की भाँति सती बनो। मेरी चित्रपट राय में

उसी समय, (उसके पहले नहीं) इस तरह का संस्था के योग्य हो सकोगी।

ईश्वर करे तुम्हारे भा वह ऐसी इच्छायें जगं और यदि ऐसा हुआ तो वह इसे कार्य रूप में परिणत करने में सहायक हो।

बाल विवाह का शाप

मिसेज मारगेरेट ई० कजिन्स ने मेरे पास एक दुर्घटना का समाचार भेजा है। ऐसा मालुम पड़ता है कि यह दुर्घटना अभी हाल मे बाल विवाह के कारण मद्रास में हुई है। इस विवाह में 'वर' २६ वर्ष का तथा कन्या १३ वर्ष की था। ये पती पत्नी मुश्किल से १३ ही दिन साथ रह पाये होंगे कि लड़की जल कर मर गई। ज्यूरी ने यह फैसला दिया है कि पति कहलाने वाले उस पुरुष के असहनीय और निर्दय बलात्कार के कारण उसने आत्महत्या की थी। लड़की के मरने के समय दिये हुए बयान से मालूम होता है कि उस 'पति' ने ही उसके कपड़ों मे आग लगाई थी। कामातुर लोगों को विवेक और दया नहीं होती।

परन्तु हमें यहाँ इस बात से सरोकार नहीं कि वह कैसे मरी, किन्तु इन बातों से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि :—

(१) उसका विवाह १३ वर्ष की आयु मे किया गया था।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं क्योंकि उसने पति की काम चेष्टा का विरोध किया था।

(३) उस पति ने उसके साथ जबरदस्ती जरूर की। और (४) वह लड़की अब इस संसार में नहीं है।

किसी पाशविक प्रथा को, धर्म से पुष्ट करना धर्म नहीं। अधम है। स्मृतियों में परस्पर विरोधी वाक्य भरे पड़े हैं। इन विरोधों से तो इत्मीनान के काबिल यही एक नतीजा निकल सकता है कि उन वाक्यों को, जो प्रचलित और सर्वमान्य नीति के और खासकर स्मृतियों में ही लिखित आदेशों के विपरीत है। क्षेपक समझकर छोड़ देना चाहिए। एक ही पुरुष एक ही समय में आत्म-संयम का उपदेश देने वाला और पशु वृत्ति को उत्तेजित करने वाला वाक्य नहीं लिख सकता। जिस आत्मसंयम से कुछ भी सरोकार न हो और पाप में डूबा पड़ा पड़ा हो, वही यह कह सकता है कि कन्या के ऋतु मती होने के पूर्व ही उसका बिवाह न करने में पाप लगता है। मानना तो यह चाहिए कि रजस्वला होने के बाद भी बरस तक लड़की का विवाह करना पाप है। उसके पहले तो विवाह का ख्याल भी नहीं किया जा सकता। रजस्वला होने के साथ ही लड़की संतति उत्पन्न करने के योग्य इसी भाँति नहीं हो जाती जैसे कि मूछों के भमराते ही कोई लड़का सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं हो जाता है।

बाल विवाह की यह प्रथा नैतिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार हानिकारक है। यह हमारी नीति की जड़ काटती है और हममें शारीरिक निर्बलता लाती है। ऐसी प्रथाओं को रहने देकर हम स्वराज्य और ईश्वर से दूर जाते हैं। जिस आदमी को नाजुक उमर की लड़की के बारे में कुछ चिन्ता नहीं है। उसे ईश्वर की भी कोई परवा न होगा। अधकचरे पुरुषों में न तो स्वराज्य के लिए लड़ने की और न उसे पाने पर कायम रखने की ही ताकत होती है। स्वराज्य की लड़ाई का अर्थ केवल राजनैतिक जागृति ही नहीं है, बल्कि सभी प्रकार की सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी, नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति। सहवास की स्वीकृति देने की उमर का

कानून से बढ़ाने की कोशिश की जा रही है कुछ अल्प संख्यक लोगों के हाथ दुरुस्त करने के लिए यह ठीक हो सकता है। परन्तु कानून से कोई ऐसी सामाजिक कुप्रथा रोकी नहीं जा सकती है। इसे रोकने वाला तो केवल जागृत लोक मत ही है। ऐसे विषयों में कानून बनाने का मैं विरोध नहीं करता। परन्तु कानून से अधिक ज़ोर मैं लोकमत तैयार करने पर अवश्य देता हूँ। मद्रास की ऐसी दुर्घटना होना असम्भव हो जाता, यदि वहाँ बाल विवाह के विरुद्ध लोकमत जीता जागता होता। मद्रास के इस मामले में वह युवक कोई अनपढ़ मजदूर नहीं है, वरन् पढ़ा लिखा बुद्धिमान टाईपिस्ट है। यदि लोक-मत नाजुक उमर की लड़कियों के विवाह या पति सहवास का विरोधी होता तो उसके लिए उस लड़की से विवाह करना वा सहवास करना असम्भव हो जाता। साधारणतः १८ वर्ष से कम उमर की लड़की का विवाह कभी नहीं होना चाहिए।

बाल विवाह के समर्थन में

एक सज्जन लिखते हैं :—

"२६ अगस्त सन १९२६ के "यंग इन्डिया में" बाल विवाह का शाप" शीर्षक आप के लेख को पढ़कर मुझे बड़ा ही दुःख पहुँचा।" कन्या के ऋतुमती होने के पूर्व लड़की का विवाह न करने में पाप लगता है—यह वे लोग ही कह सकते हैं जो कि आत्म संयम से अनभिज्ञ हैं और जो पाप में डूबे पड़े हैं।"

"मेरी समझ में यह नहीं आता कि आप अपने से मुखालिफ़ राय रखने वालों को औदार्य की दृष्टि से क्यों न देख सके कोई

यह अवश्य कह सकता है कि बाल विवाह के शास्त्र विहित ठहराने में मनु ने सरासर भूल की थी। परन्तु मैं यह कहना अनुचित मानता हूँ कि जो लोग बाल विवाह पर दृढ़ हैं वे पाप में डूबे पड़े हैं" यह कहना विवाह की शिष्टता की सीमा का उलंघन हो जाता है वास्तव में मैंने पहले ही पहल बाल विवाह के विरुद्ध ऐसी दलील सुनी है। न तो हिन्दू समाज सुधार को ले और न ईसाई पादरियों ने जहाँ तक मुझे मालुम है, कभी ऐसा कहा है। इसलिए जब मैंने इस दलील को महात्मा गाँधी की लेखनी से आया हुआ पाया, (महात्मा गाँधी जिन्हें की मैं प्रतिद्वन्दी के प्रति उदाहरण पूर्ण व्यवहार करने में सम्पूर्ण पुरुष मानता हूँ ?) उस वक्त जो धक्का मुझे पहुँचा उसको ज़रा ख्याल कीजिए।

"आपने तो एक दो को नहीं, बल्कि प्रायः प्रत्येक हिन्दू शास्त्रकार को त्याज्य ठहराया है, क्योंकि जहाँ तक मुझे मलूम है तहाँ तक प्रत्येक स्मृति कार बाल विवाह का आदेश देता है। और यह बात ठीक मानना जैसा कि आप फरमाते हैं—कि बाल विवाह का आदेश देने वाले फिरके क्षेपक मात्र हैं। असम्भव ही है। बाल विवाह की रूढ़ि किसी खास सूबे या समाज विशेष में ही परिमित नहीं है बल्कि भारतवर्ष भर में प्रचलित है और यह प्रथा रामायण के समय से चली आ रही है। मैं संक्षेप में यह बतलाने की चेष्टा करूँगा कि किन कारणों से हिन्दू शास्त्रकार ने बाल विवाह पर जोर दिया होगा। उन्होंने इसे स्पष्ट समझा कि साधारणतया प्रत्येक बालिका विवाहिता होनी चाहिए। यह लड़कियों के सुख और शान्ति के ही लिये भाव नहीं है बरन साधारण तौर पर समाज के लिए भी। यदि प्रत्येक लड़की को विवाहित हो कर रहना है, तो पति को पसन्द करने का काम लड़की के माता पिता को, न कि लड़की को स्वयं—करना चाहिए। यदि

यह काम लड़कियों पर छोड़ दिया जायगा तो नतीजा होगा कि बहुत सी लड़कियाँ बिन ब्याही हो रह जायगी। इसलिए नहीं की उन्हे शादी पसन्द नहीं, बल्कि इसलिए की उन सब को अपनी पसन्द का पति मिलना बहुत कठिन बात है। और यह खतरनाक भी है क्योंकि इससे फिर आगे चल कर संवनन तथा भ्रष्टाचार फैल सकते हैं और वे युवक जो कि ऊपर से अच्छे मालूम पड़ते हैं, सम्भव है कि भोली भाली लड़कियों के आचरण भ्रष्ट कर दें और यदि वर ढूढ़ने का काम माता पिता को करना है, तो लड़कियों की शादी कम उम्र में ही कर देनी होगी जब यह सयानी हो जाती हैं. तब वे किसो के प्रेम पाश में बँध जा सकती हैं और तब यह सम्भव है कि माता पिता के द्वारा चुने हुए वर के साथ वे विवाह करना पसन्द न करें। जब लड़की का विवाह बचपन में कर दिया जाता है तब वह अपने पति और पति के घर के साथ एक दिल हो जाती है। और तब पति के साथ उसका मेल अधिक स्वाभाविक और अधिक परिपूर्ण हो जाता है कभी कभी सयानी लड़कियों के लिए जिनके विचार और आदतें स्थिर हो जाती है। नये घर में पहुँच कर अपने को तद्नुरूप बना लेना कठिन हो जाता है।

"बाल विवाह के विरुद्ध यह दलील पेश की गई है कि उससे लड़की तथा संतान की तन्दुरुस्ती कमजोर हो जाती है। परन्तु यह दलील निम्नलिखित कारणों से बहुत जबरदस्त नहीं है। आज कल हिन्दुओं में लड़की के विवाह की उम्र क्रमशः ऊँची होती चली जा रही है। लेकिन जाति कमजोर पड़ती जा रही है। ५० या १०० वर्ष पुरुष और स्त्रियाँ आज कल की बनिस्बत साधारणतया अधिक हृष्ट पुष्ट और चिरायु हुआ करती थी। परन्तु उन दिनों बाल विवाह आज की अपेक्षा अधिक प्रचलित था। देर से ब्याही

जाने वाली शिक्षित कन्याओं की तन्दुरुस्ती उन लड़कियों की तन्दुरुस्ती की बनिस्बत जिन्होंने कम तालीम पाई है। और जिनका विवाह छुटपन ही में कर दिया गया था, अधिक अच्छी नहीं होती है। इन हकीक़तों से यह बहुत मुमकिन मालुम होता है कि बाल विवाह से शारीरिक अवनति उतनी नहीं हो जाया करती, जितनी कि कुछ लोग समझते हैं।"

आपको यूरोपीय तथा भारतीय दोनों सभ्यता का अच्छी तरह ज्ञान है। आप यह जरूर बतला सकते हैं कि सब बातों को देखते हुए हिन्दुस्तानी पत्नियाँ अधिक पति परायण होती हैं या योरोप वाली, कि गरीब लोगों में हिन्दुस्तानी पति अपनी स्त्री के साथ रहमदिली का बर्ताव रखता है या योरोपीय, कि हिन्दुस्तानियों में क्लेशकारी विवाह बहुत कम होते हैं या योरोपियनों में और आया कि भारतीय समाज में विषय सम्बन्धी आचार अधिक शुद्ध हैं कि योरोपीय में। यदि इन पहलुओं से यूरोपीय विवाहों की अपेक्षा हिन्दुस्तानियों के विवाह अधिक सफल हैं। तो बाल विवाह को जो कि हिन्दुस्तानी विवाहो की एक विशेषता है बुरा न ठहराना चाहिए।

मैं यह नहीं मान सकता कि हिन्दू शास्त्रकार बाल विवाह का आदेश देते समय समाज के सार्वजनिक कल्याण के सिवाय और किसी विचार से प्रेरित हुए थे। मैं समझता हूँ कि बाल विवाह हिन्दू समाज के उन लक्षणों में से एक है कि जिनके द्वारा अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसकी शुद्धता कायम रही है। और जिन्होंने उसको छिन्न-भिन्न होने से बचाया है। शायद आप इस सब को सच न मानेंगे, लेकिन हम यह आशा नहीं रख सकते कि आप अपनी उस धारणा को त्याग दें कि वे सब हिन्दू शास्त्रकार,

जिन्होने कि कन्याओं के बाल विवाह पर जोर दिया है आत्म संयम शून्य थे और "पाप में डूबे पड़े थे।"

आपने मद्रास वाले मुआमले का जो हवाला दिया है, वह बड़ा विचित्र है। ज्यूरी का ख्याल यह था कि उस लड़की ने आत्मघात कर लिया था लेकिन उस लड़की ने यह बयान दिया कि उसके पति ने उसके कपड़ों में आग लगा दी थी। इन परस्पर विरुद्ध बातों को देखते हुए यह मानना बहुत मुश्किल है कि जिन बातों को आप निर्विवाद मानते हैं वे बातें सचमुच निर्विवाद हैं। १३ वर्ष से नीची उम्रवाली लाखों कन्याओं के विवाह हो चुके हैं, लेकिन पति की निर्दयतापूर्वक कामचेष्टा के कारण की हुई आत्म-हत्या का एक भी नजीर पहले सुनने में नहीं आई। सम्भवतः इस मामले में कोई खास बातें थीं जिनको हम जानते नहीं हैं और उस लड़की की मृत्यु का ख़ास कारण बाल विवाह नहीं था!"

कविवर टैगोर ने ठीक कहा है— उन घटनाओं के आघात को जो कि छपे हुये किसी की आत्मा को चोट पहुँचाती हैं कम करने के निमित्त किसी मौजूँ फिलसफे के गढ़ देने में गाँठ से बहुत कम जाता है। 'यंग इंडिया' के ये 'पाठक' तो एक कदम और आगे बढ़गये हैं। इन्होंने एक मौजूँ फिलसफे को ही नहीं गढ़ा है बल्कि हक़ीकतों को भी भुला दिया है और ग़ैर सबूत वाले बयानात पर अपनी दलील उठा कर खड़ी कर दी है। अनुदारता वाले इलजाम के बारे में मैं कुछ लिखना नहीं चाहता यदि और किसी कारण से नहीं तो महज इसीलिए ही कि मैंने शास्त्रकारों पर दोषारोपण नहीं किया है बल्कि मैंने तो उन लोगों पर बुराई थोपी है जो कि मातृत्व भार न सम्भाल सकने वाली अवस्था मे विवाह कर देने पर आग्रह करें अनौदार्य का प्रश्न तो उठता है जब कि कोई अशुद्ध भाव का नाहक इलजाम किसी जीवित मनुष्य पर लगावे, न कि उस पर जिसका अस्तित्व ही

न हो, परन्तु मैं पूछता हूँ कि इस पत्र लेखक के पास कोई ऐसा प्रमाण है जिसके बिना पर वह यह कह सकता है कि जिन स्मृति-कारों ने आत्म संयम का उपदेश दिया था, उन्होंने ही उन्हीं स्मृतियों में बालिका विवाह की आज्ञा दी थी। ऋषि लोग दुराचारी नहीं थे और न शारीरिक विकास के नियमों से अनभिज्ञ थे। क्या यह मान लेना अधिक उदार न होगा? लेकिन यदि बाल विवाह (न कि कम उम्र का विवाह, क्योंकि यह तो २५ के पूर्व तक का किया हुआ सम्बन्ध भी हो सकता है) की आज्ञा देने वाले ग्रन्थ भी प्रामाणिक पाये, तो हमको चाहिए कि प्रत्यक्ष अनुभव और वैज्ञानिक ज्ञान की दृष्टि से उनका त्याग कर दें। मैं लेखक के इस वाक्य की सचाई पर सन्देह प्रकट करता हूँ कि बाल विवाह हिन्दू समाज में सर्वत्र प्रचलित है। मुझे अवश्य दुःख होगा, अगर यह बात सच निकले कि लाखों बालिकायें विवाहिता हो जाती हैं यानी ये जब कि स्वयं बच्चियाँ ही हैं, पत्नियों की तरह रहने लगती हैं यदि हिन्दू समाज में लाखों कन्याओं का विवाह ११ वर्ष की अवस्था में हो जाया करते तो हिन्दू लोग जाति की हैसियत से कभी के नष्ट हो गये होते।

और न उससे यही बात सिद्ध होती है कि यदि माता-पिता अपनी कन्याओं के पति पसन्द करना जारी रखना चाहें, तो सगाई और विवाह जल्दी हो जाने चाहिए। और इसमें तो और भी कम सत्यता है कि यदि लड़कियों को अपनी पसंदगी करनी है तो संवनन (Courtship and flirtation) या भ्रष्टाचार का होना लाजिमी ही है। आखिर योरोप में भी तो संवनन सर्वत्र प्रचलित नहीं है और हजारों हिन्दू कन्याओं का विवाह १५ वर्ष के बाद होता भी है और उनके माता-पिता ही उनके लिए वर पसन्द करते हैं। मुसलमान माँ-बाप तो हमेशा अपनी सयानी लड़कियों के ख्वाविन्द खुद ही

पसन्द करते हैं। यह पसन्दगी स्वयं लड़की करे या उसके माता-पिता यह बिल्कुल दूसरी ही बात है और यह बात रिवाज के अख्तियार में है।

इस पत्र के लेखक ने इस बात के समर्थन में कोई सबूत पेश नहीं किया कि सयाना उम्र में ब्याही हुई कन्याओं की सन्तानें बालिकावस्था में विवाहित स्त्रियों की औलादों से कमज़ोर होती है। भारतीय तथा योरोपीय दोनों समाजों के मेरे अनुभवों के होते हुए भी मैं उनके आचार की तुलना करना नहीं चाहता। बहस के लिए जरा देर को यदि मान भा लिया जाय कि यूरोपीय समाज के आचार हिन्दू समाज के आचार से निकृष्ट हैं, तो क्या उससे यही स्वाभाविक अनुमान हो सकता है कि यह निकृष्टता मिनेवलूगियत के बाद शादी करने के कारण ही है।

अन्त मे, मद्रास वाला मामला पत्र प्रेषक को कुछ मदद नहीं पहुँचाता है; प्रत्युत उनका उसे प्रयोग करना तो उनका हक़ीक़त को वाला पताक रख कर जल्द बाजी के साथ किसी नतीजे पर पहुँच जाना जाहिर करता है। अगर वे मेरे उस लेख को फिर उठा कर देखेंगे तो उनको पता चलेगा कि मैं अपने नतायज़ पर साबित शुदा बातों से ही पहुँचा हूँ। मेरा निर्णय तो मृत्यु के कारण से जरा भी लगाव नहीं रखता, यह सिद्ध किया गया था कि :—

(१) लड़की कमसीन था।

(२) उसकी कामेच्छा तो थी ही नहीं।

(३) उसके पति ने काम चेष्टा में जबरदस्ती जरूर की।

(४) वह लड़की अब इस संसार में नहीं है।

लड़की ने यदि आत्मघात किया तो बुरा किया लेकिन यदि उसे उसके 'पति ने जला कर मार डाला—(चूँकि वह उसको पशु वृत्ति को सन्तुष्ट न कर सकी, तो और भी बुरा हुआ। उस लड़की की वह

उम्र तो खेलने और सीखने पढ़ने की थी। नकि पत्नी का वर्ताव करने की और अपने नाजुक कन्धों पर गृहस्थी का भार उठाने की या "स्वामी" की गुलामी करने की।

ये लेखक समाज में एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। भारत माता अपने उन लड़के और लड़कियों से अधिक अच्छी बातों की आशा रखती है। जिन्होने उदार शिक्षा पाई है। और जिनसे राष्ट्र के लिए ही सोचने समझने तथा कार्य करने की आशा रखी जाती है। हममें बहुत सी बुराइयाँ मौजूद हैं:—वे नैतिक सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सब ही प्रकार की हैं। उनके लिए धैर्य युक्त अध्ययन सपरिश्रम अनुसधान और सावधानी से काम करने की जरूरत है। बयान में सत्य और उस पर विचार करते समय स्वच्छ विचार की जरूरत तथा गम्भार्य पूर्ण और निष्पक्ष निणय भी दरकार हैं। और तब हम यदि जरूरी हो तो आपस में जमीन आसमान का मत भेद रख सकते हैं परन्तु यदि हम सचाई की गहराई तक पहुँचने कि और फिर चाहे जो हो जाय उस पर डटे रखने की कोशिश नहीं करेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम अपने-अपने धर्मों, अपने देश और राष्ट्रीय हित को नुकसान पहुँचावेंगे।

बाल-विवाह के भयानक परिणाम

बाल-विवाह विरोधी कमेटी बाल-विवाह पर एक लाभदायक और एक नोट निकाला है। मैं उससे कुछ पैरा ग्राफ जो विशेष महत्व रखते हैं, दे रहा हूँ।

हिन्दुस्तान की १६३१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार १५ वर्ष से कम अवस्था में निम्नलिखित संख्या में व्याही गईः —

अवस्था	विवाहित प्रतिशत
०—१	·८
१—२	१·२
२—३	२·०
३—४	४·२
४—५	६·६
५—१०	१६·३
१०—१५	३८·१

"इस प्रकार १०० पीछे लगभग एक लड़की १ वर्ष से कम अवस्था में व्याही गई और यही भयानक बात १५ वर्ष के नीचे हर अवस्था में होती रही।"

इसका एक परिणाम यह हुआ कि इस देश में विधवा बालिकाओं की संख्या में बढ़ी कि विश्वास नहीं किया जा सकता :—

अवस्था	विधवाओं की संख्या
०—१	१५१५
१—२	१७८५
२—३	३४८५
४—५	६०७६
५—१०	१५०१६
१०—१५	१०५४८२
	१८५३३६

"कहा जाता है कि बाल-विवाह की प्रथा परिमाण में छोटी है और सभी जगह नहीं है लेकिन अगर विधवा बालिकाओं की

संख्या ऊपर दी गई संख्या का सौवाँ हिस्सा हो तो भी कोई मानुषिक जन-समाज या सरकार बिना इसका अन्त किये न मानेगी। इस सिलसिले में हमें यह भी याद रखना चाहिये कि इनमें से बहुत से बच्चों के लिए पुनर्विवाह असम्भव है।

दूसरा परिणाम बाल-माताओं की बड़ी संख्या है जिनका सन्तान होने में ही देहान्त हो जाता है। इस प्रकार की मृत्यु का मध्यम भारत में २००००० प्रति वर्ष है। इससे हर घन्टे २० मृत्यु होती है और इनमें से बहुत सी तो २० साल से नीचे ही मर जाती हैं। सर जान मेगा के कथनानुसार हर १००० युवती माताओं पर १०० ऐसी है, जो स्वाभाविकतः सन्तानोत्पत्ति समाप्त होने के पूर्व ही सन्तानोत्पत्ति में मर जाती हैं।" माताओं की मृत्यु को हमारे पास कोई सही तादाद नहीं, परन्तु भारत में हर हज़ार में २४·५ होती है जब कि इङ्गलैण्ड में केवल ४·५।

"आखीर में बाल-विवाह से माँ के ऊपर ही बुरा प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि बच्चे पर भी, और इस प्रकार जाति पर भी पड़ता है। हमारे देश में हर १००० पैदा हुए बच्चों पर १८१ मर जाते हैं। यह तो औसत में ऐसी जगहें हैं जहाँ औसत १०० पीछे ४०० तक पहुँच जाता है। इस मामले में यहाँ की पिछड़ी हुई हालत का पता जापान या इङ्गलैण्ड की शिशु मृत्यु की संख्या से मिलान करने पर स्पष्ट हो जाती है जहाँ २४ प्रतिशत तथा ६० प्रति ही है। इस बात को देखते हुए कि बन्द किया जा सकता है, यह बड़ा ही भयानक है। और हमारे समाज का अशिक्षित उचित समाज ही इस बुराई के बढ़ाने का उत्तरदायी है।

"सब से दुःख की बात तो यह है कि इस दिशा में उन्नति हो रही है (यदि हो रही है तो) उदाहरण के लिए १६२१ में १ साल से कम अवस्था की ६०६६ पत्नियाँ थीं, १६३१ में ४४०८२—

इस प्रकार ५ गुनी बढ़ती होगई और आबादी केवल दसवाँ हिस्सा ही बढ़ी। फिर १९२१ एक वर्ष से कम अवस्था वाली ७५९ विधवायें थीं, और १९३१ में १५१५। लगातार गणना देखने से बड़ी आश्चर्यजनक बात मिलती है। इस प्रकार की बुराइयों के रुकने की अपेक्षा आबादी कहीं अधिक गति से बढ़ती जा रही है। अतएव उनके रोकने आजकल की तरह शायद ही कभी जरूरत रही हो। और सरकार को इस विषय में सचेत करने तथा समाज को जगाने से अधिक महत्वशाली एवं आवश्यक दूसरा कोई कार्य भारतीय महिला आन्दोलन के लिये नहीं हो सकता।"

'इस संख्या को देखकर हमारा सिर लज्जा से झुक जाना चाहिए परन्तु इससे यह बुराई दूर नहीं होगी। कम से कम बाल-विवाह का रोग देहातों में उसी प्रकार फैला है जैसे शहरों में। इसको रोकने का विशेषकर स्त्रियों का कार्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरुषों को भी अपना भाग पूरा करना है। लेकिन जब कोई पुरुष पशु का रूप धारण कर लेता है तो वह तर्क की परवाह नहीं करता। माताओं को ही शिक्षित करने तथा उनके कर्तव्यों के प्रति जाग्रत करने की आवश्यकता है ताकि वे ऐसे बुरे कार्यों से इन्कार कर दें। यह स्त्रियों के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? अतएव मैं समझता हूँ कि अखिल भारतीय महिला संस्था को अपने उद्देश्य में सफल होने के लिए देहातों में जाना होगा। ये नोट बड़े दाम के हैं और वे कुछ पढ़े लिखे अंग्रेजी जानने वाले शहर में ही, रहने वालों तक पहुँचते हैं। इसके लिए तो देहाती स्त्रियों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता है। यदि ऐसा सम्बन्ध स्थापित हो जाय तो भी काम सहल नहीं हो जायगा। परन्तु कभी भी इस प्रकार के परिणाम के लिए, ऐसे काम करने ही

पड़ेंगे। क्या अखिल भारतीय महिला संघ और अखिल भारतीय वी० आइ० ए० एक दूसरे का सहयोग करेंगे।

किसी भी गाँवा में काम करने वाले स्त्री या पुरुष को केवल सामाजिक सुधार के लिए देहात में जाने की आवश्यकता नहीं। ग्राम्य जीवन के हर क्षेत्र से सम्पर्क रखना होगा, मैं फिर दुहराना चाहता हूँ कि देहात में काम करने का तात्पर्य पढ़ना लिखना या हिसाब किताब की ही शिक्षा नहीं, बल्कि देहात के लोगों में सच्चे जीवन की आवश्यकताओं की शिक्षा देना तथा उन्हे इस योग्य बनाना है कि वे चेतन प्राणी कहे जा सकें।

— —

असहाय विधवायें

एक दुःखी मित्र ने एक दर्द भरा पत्र भेजा है जिसमे उन्होने एक १७ साल की लड़की के बारे मे लिखा क्वेटा से भूकम्प में जिसके पति २ माह के बच्चे, ससुर और पति के छोटे भाई का देहान्त हो गया यानी ससुराल के सारे परिवार का नाश होगया है। मेरे सम्वाद दाता लिखते हैं कि वह सुरक्षित बच निकली थी और केवल अपने शरीर पर कपड़ों के साथ वापस आई। वह उनके चचा का लड़की है और उन्हें यह समझ नहीं पड़ता कि वह जी कैसे बहलाये या उसे क्या करे। उसे स्वयं भी कुछ चोट आई है। पैरों में आघात पहुँचा है, और भाग्यवश हड्डियाँ ठीक स्थाम पर हैं। संवाददाता ने अखीर मे लिखा है :—

"मैने उसे उसकी माँ के साथ लाहौर छोड़ दिया है। मैंने विनम्रता से उससे और सम्बन्धियो से उसके पुनर्विवाह का जिक्र

किया। कुछ ने तो मेरी बात सहानुभूति पूर्वक सुनी परन्तु औरों ने मेरे प्रस्ताव के प्रति घृणा प्रकट की। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत सी लड़कियों ने इस प्रकार के कष्ट सहन किये होंगे। क्या आप इन विधवाओं के प्रोत्साहन के लिए कुछ शब्द कहेंगे ?"

मुझे मालूम नहीं जिन विषयों में युगों से प्रचलित निषेधों का सम्बन्ध हो, मेरी लेखनी या मेरी वाणी क्या कर सकेगी। मैं कई बार कहा है विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का उतना ही अधिकार है जितना पुरुष को। स्वेच्छा से वैधव्य हिन्दू समाज का अमूल्य वरदान है परन्तु ऊपर से लादा हुआ वैधव्य अभिशाप है। और मुझे विश्वास है कि हिन्दू विधवायें जनमत के भय से मुक्त हों, तो वे बिना हिचक के पुनर्विवाह कर लेंगी। अतः सभी विधवाओं को जो इस क्वेटा वाली बहन की परिस्थिति में हों, उन्हें पुनर्विवाह के लिए राजी करना चाहिए और उन्हें विश्वास दिलाना जाना चाहिये कि पुनः विवाह कर लेने पर उनके विरुद्ध कोई अपमान जनक बात न कही जायगी तथा उनके लिए उचित वर ढूँढ देना चाहिए। यह किसी संस्था का काम नहीं, बल्कि व्यक्तिगत सुधारकों तथा इन विधवाओं के सम्बन्धियों द्वारा किया जाने वाला कार्य है। उन्हें अपने क्षेत्र में शक्ति शाली प्रचार करना चाहिये और जब वे सफल हों, उसको ज्यादा से ज्यादा से ज्यादा लोगों की निगाह में लाना चाहिए। केवल इसी प्रकार भूकम्प में विधवा हुई लड़कियों को उचित सहायता दी जा सकती है। शोक की स्मृति बनी रहने पर भी लोगों की सहानुभूति प्राप्त की जा सकती है और एक बार भी विस्तृत रूप से सफल हो जाने पर जो लड़कियाँ स्वाभाविक रूप से विधवा हो जाती हैं, वे भी यदि चाहें तो विवाह कर सकेंगी।

———

आरोपित वैधव्य

प्यारेलाल ने सिसली के डायोडोरस को 'युनिवर्सल हिस्ट्री' से वैधव्य पर निम्नलिखित उदाहरण दिया है, जो जुलियस सीजर के समय में हुआ था।

"भारतीयों में यह प्राचीन नियम था कि जब युवक और युवतियाँ विवाह करना चाहते थे तो वे माता-पिता के निर्णय के अनुसार विवाह नहीं करते थे बल्कि आपस की ही स्वीकृति से। लेकिन जब कम अवस्था वालों में विवाह होता था तो बहुधा पारस्परिक स्वीकृति और निर्णय अनुचित निकलते थे और दोनों ओर से अपने सम्बन्ध पर पश्चाताप करने के बाद बहुत सी स्त्रियों का आचरण गिर जाता था, और वे दूसरे पुरुषों से प्रेम करने लगती थीं। फिर जब वे अपने पति को छोड़ कर उससे विवाह करना चाहतीं, जैसा कि विष देकर अपने को मुक्त कर लेती थीं। (जो लोगों को मारने का एक ढङ्ग और विष उनके देश में जहाँ कि इस तरह की तमाम प्राणान्तक वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं बड़ी सुगमता से मिल जाता था। इन वस्तुओं में बहुत सी ऐसी होती हैं कि उनका चूर्ण भोजन या पीने की चीजों में डाल देने से ही मृत्यु हो जाती है)। किन्तु जब यह प्रचलन बहुत बढ़ गया और बहुत से लोग मौत के शिकार हो चुके और जब किसी स्त्री को दण्ड देने से दूसरी स्त्रियों पर कोई प्रभाव न पड़ता, तो उनके यहाँ यह नियम बनाया गया कि यदि कोई स्त्री गर्भवती या बच्चे वाली न हो तो उसे मृत-पति के सङ्ग जीवन जला दिया जाय। और यदि इस नियम का उल्लंघन करे तो उसे आजीवन विधवा रखा जाय और अपवित्र होने के कारण सभी यज्ञों तथा सरकारों से उसका बहिष्कार कर दिया जाय।

यदि उपर्युक्त वर्णन इन दो भयानक रीतियों का सही चित्रण है, तो हमें ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि हमारे ऊपर सतीत्व रोकने के लिए कानून लादा गया। बाहर से आरोपण की गई कोई चीज हिन्दू समाज से ऐसी लड़कियों का वैधव्य नहीं हटा सकता, जो यह भी नहीं जानतीं कि विवाह है क्या। ऐसे सुधार के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हिन्दुओं में उदार और शिक्षित जनमत हो और दूसरे माता-पिता अपनी विधवा बालिकाओं का पुनर्विवाह का औचित्य बताया जाय। निश्चय है कि यह उनके बारे में कहा जा रहा है जो कम अवस्था की हैं। जब विधवायें बड़ी हो जायँ और विवाह न करना चाहें तो उनको केवल यही कहना चाहिए कि कुमारी कन्याओं की ही तरह वे विवाह करने को स्वतंत्र है।

जब कैदी अपनी जञ्जीरों को आभूषण समझ कर उसे अपनाये रखना चाहे तो उसे छुड़ाना कठिन है जैसा कि लड़कियाँ और बड़ी स्त्रियाँ तक अपने चाँदी सोने की जञ्जीरों और अँगूठी को आभूषण मान कर करती हैं।

बीसवीं सदी की सती

घाटकोपर से एक बहिन लिखती हैं —

"बम्बई समाचार" के ता० २३ अप्रैल के अङ्क में प्रकाशित बीसवीं की सदी लुहाणा जाति की सती की बात सच हो, तो उस बहिन की पति भक्ति वंदनीय है। इस कार्य के सम्बन्ध में अपनी

राय नवजीवन द्वारा प्रकट करेंगे, तो विशेष जानकारी हासिल होगी।

मुझे आशा है ये समाचार सच नहीं हैं। अगर वह बहन मरी है तो किसी रोग से या आकस्मिक घटना से मरी हैं आत्महत्या करके नहीं। बीसवीं सदी या किसी दूसरी भी शताब्दिक की सती के लक्षण एक ही प्रकार के होने चाहिएँ। सती वह है जो पति के जीवित रहते और उसकी मृत्यु के बाद सत्य परायण रह कर सेवा करे और मन से, वचन से, तथा कर्म से निर्विकार रहे। पति के पीछे आत्महत्या करने में ज्ञान नहीं, अज्ञान है। ऐसा करने मे बड़ा अज्ञान तो आत्मा के गुण के विषय में है। आत्मा-मात्र अमर वह सर्व व्यापक है। एक देह के छूटने पर दूसरा देह निर्माण करता है। और यों करते करते अन्त में देहातीत हो जाती है। यह बात सच है अनुभव सिद्ध है। और आज अनुभव गम्य है। ऐसी दशा में पत्नी के पति के साथ मरने से क्या लाभ ?

और विवाह शरीर का नहीं, आत्मा का है। अगर विवाह शरीर ही का हो तो पति के मरने पर मोम के पुतले या फोटो से ही संतोष क्यो न कर लिया जाय, अगर विवाह एक शरीर विशेषधारी जीव के साथ का ही सम्बन्ध है तो उस शरीर के नष्ट होने पर विवाह का भी अन्त हो जाता है। और आत्महत्या करने से वह शरीर पुनः मिल नहीं सकता। एक के नाश के साथ दूसरे शरीर का नाश करना, तो "दोनो दीन से गये पाण्डे" वाली नसल को चरितार्थ करना है।

विवाह शरीर द्वारा आत्मा का होता है और एक आत्मा की भक्ति से अनेक आत्मा की, अर्थात् परमेश्वर की भक्ति सिद्ध करने की कला सीखने का भेद विवाह में छिपा हुआ है। इसी कारण अमर मीरा मर चुकी है:—

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा ना कोई' यानी सती स्त्री की दृष्टि में विवाह विकार तृप्त करने का साधन नहीं होता, बल्कि 'एक की दवा दो' इस न्याय से पति में लीन होकर सेवा शक्ति बढ़ाने का साधन है।

इसलिए सच्ची सती अपना सतीत्व सप्त पदी के समय से ही सिद्ध करती है। वह साध्वी बनती है, तपस्विनी बनती है। पति की कुटुम्ब की और देश की सेवा करती है वह घर गृहस्थी में फँस जाने के और भोग भोगने के बजाय अपना ज्ञान बढ़ाती है। त्याग शक्ति बढ़ाती है। और पति में लीन होकर जगत मात्र में लीन होना सीखती है।

ऐसी सती पति की मृत्यु पर दुःख नहीं करती, पागल नहीं बनती, बल्कि पति के समस्त सद्‌गुणों को वह अपने में प्रगट करेगी, और उसे अमर बनावेगी। और यह सोचकर कि सम्बन्ध आत्मा से था, वह फिर से ब्याह करने का विचार तक न करेगी।

पाठक देखेंगे कि मेरी कल्पना की सती विवाह के आरम्भ से ही निर्विकार है, इसलिए वह सन्तान उत्पन्न न करेगी। विषय भोग न करेगी। ऐसी सती विवाह बन्धन में बंधे क्यों? कोई यह सवाल पूछे तो वह उचित होगा। परन्तु हिन्दू संसार में विवाह के बारे में स्त्री या पुरुष की पसन्द का कोई सवाल ही नहीं होता, और आजकल के इस भले बुरे सुधारों के युग में कुछ लोग संयम के हेतु से ब्याह करते हैं। मैं कबूल करता हूँ कि इसके मूल में सूक्ष्म-मूर्छा-मोह है। फिर भी कुछ ऐसे पाये जाते हैं जो निर्विकार रहने का निश्चय करके सम्बन्ध जोड़ते हैं। ऐसा एक उदाहरण मुझे अपने अनुभव से इस समय याद आ रहा है। विवाह करते समय भोग की इच्छा थी परन्तु बाद में संयमवृत्ति के प्रबल होते ही निर्विकार जीवन बिताने का प्रयत्न करने वाले

दम्पति के एक से ज्यादा उदाहरण मेरी आँखों के सामने इस वक्त तैर रहे हैं। अतः पाठक यह न समझें कि मेरी कल्पना को हकीकत में कहीं स्थान ही नहीं है।

परन्तु साधारण विवाह का विचार करें, तो सती स्त्री की जिन शक्तियों को ऊपर गिना चुका हूँ उनमें प्रजा पालन की शक्ति को बढ़ाना होगा। यानी सती स्त्री मर्यादा में रह कर सन्तान की उत्पत्ति के कार्य में भाग लेगी और बालक या बालकों का उचित प्रकार से लालन पालन करके उन्हें सुशिक्षित बनाकर देश के सेवा धन में वृद्धि करेगी।

जो बातें ऊपर मैं सती स्त्री के विषय में कह चुका हूँ वे सतपति को भी लागू होती है। अगर स्त्री को पति के प्रति सतीत्व सिद्ध करना आवश्यक है। हमने स्त्री के साथ पति को जलते हुए नहीं सुना. इसलिए हम यह मान लेते हैं कि पति के साथ पत्नी जल मरने की प्रथा चाहे जब शुरू हुई हो, वह अज्ञान मूलक है, और किसी समय उसमें कभी रहस्य था, ऐसा साबित हो सके, तो भी इन दिनों तो उसमें घोर अज्ञान ही है। इस सम्बन्ध में कोई भी बहन अपने मन में सन्देह न रखे। स्त्री पति की दासी नही, उसकी सहचारिणी है। अर्द्धांगना है, मित्र है, इसलिए उसके साथ बराबर हक भोगने वाली है उसकी सहधर्मिणी है। इस कारण एक दूसरे के प्रति और जगत के प्रति दोनों के कतव्य समान ही हैं।

अतएव अगर उक्त लुहाणा बहन मरी हो तो उसने व्यर्थ ही आत्महत्या की है। वह जरा भी अनुकरणीय नहीं। कोई कहेगा कि उसके मरने की क्षमता की स्तुति तो करें? मेरा मन वैसा करने से भी इन्कार करता है। क्योंकि दुष्ट कर्म करने वाले में भः मरने की शक्ति हम देखते हैं। परन्तु उस शक्ति की स्तुति करने का धर्म हम स्वीकार नहीं करते। ऐसी दशा में इस अज्ञान बहन के मरने

की स्तुति करके भ्रम में पड़ी हुई बहनों को अनजान में भी भ्रम में डालने का पाप मैं क्यों अपने सिर लूँ, सतीत्व के मानी हैं। पवित्रता की पराकाष्ठा। यह पवित्रता आत्महत्या करके सिद्ध नहीं की जा सकती। जीकर उसका कठोर पालन किया जाना चाहिए।

आदर्शों का दुरुपयोग

बाल विधवाओं के पुनर्विवाह पर मेरे पास आये हुए एक पत्र में से मैं निम्नलिखित अंश उद्धृत करता हूँ :—

"२३वीं सितम्बर के यंग इंडिया" में आगरे के (बी) महोदय के पत्र के उत्तर में कहा है कि बालविधवाओं के माता-पिता को चाहिए कि वे उनका पुनर्विवाह कर दें। यह बात उन लोगों के बारे में कैसे सम्भव है जो कि कन्यादान करते हैं यानी जो शास्त्रोक्त विधि से अपनी कन्याओं का विवाह करते हैं? निश्चय ही यह उन माता पिताओं के लिए असम्भव है जिन्होंने अपनी पुत्री पर अपने सम्पूर्ण हक संजीदगी के साथ और धार्मिक रीति से दामाद को सौंप दिये हैं कि वे उसकी मृत्यु के पश्चात् दूसरे व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दें। अगर वे चाहें तो स्वयं पुनर्विवाह कर सकती हैं लेकिन वह चूँकि अपने माता पिताओं द्वारा दामाद को दान स्वरूप दी गई थी इसलिए उनका पुनर्विवाह करने का हक संसार में किसी को भी प्राप्त नहीं है। और इसी वजह से उस बाल विधवा को भी अपना पुनर्विवाह करने का कोई हक नहीं है। इसलिए अपने पति से उसकी मृत्यु के समय स्पष्ट आज्ञा पाये बिना अगर वह अपना पुनर्विवाह करती है तो वह अपने परलोक

वास। पति के साथ विश्वासघात करती है। और उसे धोखा देती है। अतएव तर्क की दृष्टि से ऐसी विधवा के लिए पुनर्विवाह करना अशक्य है चाहे वह बालिका हो चाहे युवती चाहे वृद्ध जिसका कि विवाह "कन्यादान" प्रथा के अनुसार किया गया है। जो कन्या दान प्रणाली अधिकाश सनातनी हिन्दुओं के यहाँ प्रचलित है। और जिसने अपने पति की मृत्यु के पूर्व उसकी सम्मति प्राप्त न करली हो। लेकिन कोई सच्चा सनातनी हिन्दू पति ऐसी इजाजत देने का खयाल तक नहीं सहन कर सकता। वह अपनी पत्नी से सती होने की अगर वह हो सकती है तो—भले ही रजामंदी दे दे नहीं तो कम से कम वह तो यही पसन्द करेगा कि मेरी स्त्री अपने शेष जीवन को मेरी चिंतना मे अथवा यों कहो कि ईश्वराधना में बितावे। ऐसा करने में उसका एक मात्र इच्छा या धार्मिक भाव यही होगा कि हिन्दू समाज के विवाह और वैधव्य के (जो कि एक दूसरे के पूरक हैं न कि परस्पर मे स्वतंत्र) उच्च आदर्शों की रक्षा हो।"

मै इस प्रकार की दलील को उच्चादर्श का दुरुपयोग मानता हूँ। इसमे शक नहीं कि पत्र लेखक की मंशा अच्छी है, लेकिन स्त्रियों की पवित्रता के बारे में उनकी अतिशय चिन्ता ने उन्हें मौलिक न्याय का विस्मरण करा दिया है। छोटे छोटे, बच्चों के विवाह में कन्या दान के क्या मानी हैं क्या किसी को अपने बच्चों के ऊपर अख्तियारे मिल्कियत प्राप्त है? वह उनका संरक्षक मात्र है न कि स्वामी! और जब वह अपनी कन्या की स्वतंत्रता को ग़ैर के हवाले करने की तदबीर करता है तब वह उस संरक्षण के स्वत्व को खो देता है। और फिर उस बच्चे को कोई दान कैसे दिया जा सकता है जो कि उस दान को प्राप्त करने के सर्वथा अयोग्य है।

जहाँ ग्रहण शक्ति का अभाव हो, वहाँ दान हो कैसे सकता है। निस्सन्देह कन्यादान एक रहस्यमय धार्मिक प्रथा है जो कि आध्यात्मिक महत्व रखता है। ऐसे शब्दों का बिल्कुल शाब्दिक अर्थ में ही प्रयोग करना भाषा और धर्म का दुरुपयोग करना है। अगर उन शब्दों के अर्थ लगाने में उदारता से काम नहीं लिया जाता तो पुराणों की विचित्रता का भी इसी प्रकार अर्थ किया जा सकता है—जैसे पृथ्वी चपटी थाली के मानिन्द है जिसे कि सहस्त्र फन वाले शेषनाग जी साधे हुए हैं और नारायण क्षीर सागर में उन्हीं शेषनाग की शय्या पर आनन्द से शयन कर रहे हैं।

जिस माता पिता ने अपनी नन्ही बच्ची का प्यार के कारण किसी बूढ़े को या किसी १६-१७ वर्ष के बालक को ब्याह दिया है। कम से कम उस माता पिता का कर्तव्य यह है कि वे अपनी उस बच्चों का विवाह उसके विधवा होने पर करके पाप से मुक्त हो जैसा कि मैं किसी पिछले अंक में अपनी टिप्पणी में कह चुका हूँ। ऐसी शादियाँ शुरू से ही रद्द माननी चाहिए।

—:०:—

विधवाओं का पुनर्विवाह

एक मित्र ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया है:—

"आप हमारी विधवाओं के विषय में कुछ प्रभावशाली बात क्यों कहते ? उनके कट्टर संरक्षक या माता-पिता तर्क की कभी परवाह न करेंगे। विधवाओं को ही कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित क्यों न किया जाय ?" और फिर हमारे यहाँ बहुत सी सामाजिक कुरीतियाँ है। जैसे दहेज की प्रथा विवाह और मृत्यु के पश्चात् दिये जाने वाले भोज इत्यादि।"

विधवा विवाह कुछ सीमा तक आवश्यक है। और यह सुधार तभी हो सकता है जब हमारे युवक अपने को पवित्र कर लें। क्या वे पवित्र है? या उनकी शिक्षा को क्यों दोष दें? हमारे भीतर बचपन से हो गुलामी की भावना भरी जाती है। और जब हम स्वतंत्र होकर सोच नहीं सकते और स्वतंत्र होकर कार्य कैसे कर सकेंगे। हम साथ ही साथ जाति, विदेशी शिक्षा तथा विदेशी सरकार के गुलाम हैं। हमारे लिये जो भी सुविधा दी गई है वह हमारी जंजीर है। हमारे भीतर बहुत से शिक्षित युवक हैं, परन्तु उनमें से कितनों ने आत्म विश्वास प्राप्त किया है और जाति की कुरीतियों के विरुद्ध लड़े है? अपने घरों में कितनों ने विधवाओं की बात सोची है? कितनों ने अपनी वासना सयमित की है? कितने ऐसे हैं जो उन्हें माँ बहन की तरह मानकर उनकी रक्षा करते हैं? बेचारी विधवा स्त्री किसके पास जाय? मैं उसे क्या आराम दे सकता हूँ? उनमें से कितनी हैं जो 'नव-जीवन' पढ़ती हैं? कितनी ऐसी पढ़ने वाली हैं जो उसे पढ़कर अमल कर सकती हैं? फिर भी 'नवजीवन' में मैंने विधवाओं के विषय में लिखा है और आशा करता हूँ कि अवसर मिलते रहने पर लिखता रहूँगा। तब तक मैं ऐसे लोगों से अपील करता हूँ, जिनके संरक्षण में कोई बाल-विधवा है कि उसका पुनर्विवाह करना अपना कर्तव्य जानें।

सम्वाददाता ने हमारे समाज पर धुँधला प्रकाश डाला है। परन्तु जब समूचा ढाँचा ही उखड़ा हो तो कुछ यहाँ वहाँ के टुकड़ों से हमें कैसे संतोष हो सकता है? देहान्त के पश्चात् का भोज असभ्यतापूर्ण होता है और विवाह के पश्चात का उससे कम नहीं होता। विवाह के पश्चात् दिये गए भोज को हम कम असभ्यतापूर्ण इसलिए अवश्य मान सकते हैं कि सारे संसार में विवाह का धार्मिक संस्कार कुछ कमी बेशी के साथ खर्चीला होता है। परन्तु

मरने के बाद भोज की प्रथा केवल हिन्दुओं ने अपना रखी है। इसकी और इस तरह की दूसरी चीज़ों की ओरध्यान देना परमावश्यक है। परन्तु पूर्ण सुधार तो तभी होगा जब हमारी जनता में चेतनापूर्ण जाग्रति हो और उनके विचारों में स्वतंत्रता हो। जब तकहमारे स्वतन्त्र कार्य विचार और इस तरह टुकड़े टुकड़ों के सुधार निरर्थक से नहीं होते बुरे होंगे।

दलित मनुष्य जाति

मनुष्यों में केवल अस्पृश्य ही ऐसे नहीं हैं जिन पर अत्याचार होता है। हिन्दू समाज में अल्प वयस्का विधवा पर भी कुछ कम अत्याचार नहीं होता है। बंगाल से एक सज्जन लिखते हैं।

"मुसलमानों में विधवा विवाह की कोई मनाही नहीं है। बल्कि पुरुषों को चार स्त्रियों से भी विवाह करने का हक है। सच पूछो तो अधिकांश मुसलमानों को अनेक पत्नियाँ होती हैं। इस प्रकार एक भी मुसलमान पुरुष अविवाहित नहीं रह जाता है। तो यह क्या सच नहीं है कि जहाँ विधवा विवाह की कुछ रोक नहीं है, पुरुषों से स्त्रियों की संख्या वहाँ अधिक होती हैं या दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जिस समाज में विधवा विवाह प्रचलित है उसमें क्या बहु पत्नीत्व का भी अधिकार देना ही चाहिए? हिन्दुओं में विधवा विवाह का यदि प्रचार हो जाय तो नव युवती विधवायें क्या युवकों को लुभाकर उनसे विवाह न कर लेंगी और कुमारियों के लिए वर ढूँढ़ना कठिन क्या वरन् असम्भव ही नहीं हो जायगा तो फिर आज जो पाप विधवायें करती हैं या जिनका दोष उन्हें लगाया जाता है वे ही पाप क्या वे कुमारियाँ भी नहीं करेंगी।

अगर हमने हिन्दुओं को एकाधिक विवाह करने का अधिकार नहीं दिया ? मैं जानबूझ कर प्रेम का, पुण्यमय गृहस्थी को, पतिव्रत धर्म की वा ऐसी और बातों की याद दिलाना नहीं चाहता। जिनका विचार विधवा विवाह का समर्थन करते समय करना होगा।"

विधवाओं का विवाह रोकने के उत्साह में पत्र लेखक ने कितनी बातों की उपेक्षा कर दी है। मुसलमानों को एकाधिक पत्नी रखने का अधिकार है सही, परन्तु अधिकांश मुसलमानों को एक ही पत्नी है। मालूम होता है कि शायद पत्र लेखक को इसका पता नहीं है कि दुर्भाग्यवशतः हिन्दुओं में बहु पत्नीत्व को मनाहट नहीं है। ऊँची से ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं ने अनेक स्त्रियों से विवाह किया है। बहुत राजाओं न मालूम कितने विवाह किये हैं। पत्र लेखक यह बात भी भूलते हैं कि केवल ऊँची श्रेणी के हिन्दुओं में ही विधवा विवाह मना है। सबसे नीचा श्रेणी के बहुसख्यक लोगों में, विधवायें आमतौर पर पुनर्विवाह करती हैं और कभी उससे बुरा परिणाम नहीं हुआ है यद्यपि उन्हें एक से अधिक पत्नियो से विवाह करने की पूरी स्वतन्त्रता है परन्तु साधारणतः वे एक समय में एक ही सहचरी से सन्तुष्ट रहते हैं।

इस विचार से कि विधवायें सभी युवकों पर कब्जा कर लेंगी। और कुमारियों के लिए वर नहीं मिलेंगे। पत्र लेखक में विवेक के अत्यन्त अभाव का पता लगता है। नवयुवती लड़कियों की पवित्रता के विषय में इतनी चिन्ता से लेखक के ही रोगी दिमाग का परिचय मिलता है। पुनर्विवाह करने वाली थोड़ी विधवायें, कभी भी बहुत कुमारियो को अविवाहित नहीं छोड़ देंगी। खैर, यदि कभी यह समस्या उपस्थित भी होगी इसका कारण आज का बाल्य विवाह ही होगा। इसकी समुचित दवा तो बाल-विवाह की रोक ही कही जा सकती है।

कम उमर की विधवा के विषय में प्रेम, गृहस्थ जीवन की पवित्रता आदि बातों का नाम न लेना ही अच्छा होगा।

परन्तु पत्र लेखक ने मेरा मतलब बिल्कुल ही नहीं समझा है। मैंने सभी विधवाओं के विवाह का समर्थन कभी नहीं किया है। सर गंगाराम के ढूँढे हुए अंक, जिनका इस पत्र में सारांश दिया गया है १५ वर्ष से कम उमर की विधवाओं का है। ये गरीब दुखियां पतिव्रत धर्म को क्या जानें? प्रेम उनके लिए अज्ञात वस्तु है। सच्ची बात तो यह कहनी होगी कि उनका विवाह कभी हुआ ही नहीं था। विवाह को अगर सचमुच ही धार्मिक संस्कार बनाना है इसके द्वारा एक नये जीवन में प्रवेश करना है तो, जिनका विवाह होता है उन लड़कियों को खूब उन्नति करने देना चाहिए। जीवन भर के लिए साथी को चुनने में उनका भी कुछ हाथ होना चाहिए और वे जो काम करने जा रही हैं। उसका फलाफल ही उन्हें समझना चाहिये ईश्वर के दरबार में और मनुष्य के सामने हम पाप करते हैं अगर हम बच्चों के संयोग को विवाह का नाम धारी पति के मर जाने पर उस बालिका के लिए आजीवन वैधव्य का दण्ड देते हैं।

मेरा विश्वास है कि सच्ची हिन्दू विधवा एक रत्न है। मनुष्य जाति को, हिन्दू धर्म की वह एक भेंट है। रमाबाई रानडे, ऐसा ही भेंट थीं। परन्तु बाल-विधवाओं का अस्तित्व हिन्दू धर्म के ऊपर एक कलंक है, जिसके लिए एक रमाबाई कुछ प्रायश्चित स्वरूप नहीं हो सकती।

बाल पत्नियाँ और बाल विधवायें

मद्रास के पचिअप्पा कालेज में भाषण देते हुए गाँधी जी ने कहा —एक विद्वान तामिल ने मुझे लिखा है कि मैं विद्यार्थियों से बाल-विधवाओं के विषय में कुछ कहूँ। उसका कहना है कि हमारी प्रेसीडेन्सी में दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा बाल-विधवाओं की कहीं बुरी दशा है। मैं इस बात की सच्चाई अभी तक नहीं जान सका हूँ। इस विषय तुम्हें मुझ से ज्यादा मालूम होगा। लेकिन नौजवानों में कुछ बहादुरी चाहता हूँ। यदि तुम्हारे भीतर बहादुरी आ जाय तो मैं तुम्हें बहुत से काम बताऊँ। मेरा अनुमान है कि तुम में से बहुत से लोग अविवाहित और काफी लोग ब्रह्मचारी भी हैं। मैं काफी शब्द इसलिए प्रयोग कर रहा हूँ क्योंकि मैं विद्यार्थियों को जानता हूँ। जो विद्यार्थी लड़कियों को वासना भरी दृष्टि से देखता है वह ब्रह्मचारी नहीं है। मैं चाहता हूँ तुम लोग प्रतिज्ञा करो किसी ऐसी लड़की से विवाह न करोगे जो विधवा न हो। तुम विधवा लड़कियों को ढूँढो और यदि न मिले तो विवाह ही न करो। ऐसा निश्चय करके संसार को बताओ अपने माँ-बाप को, (यदि वे हों) बताओ या अपनी बहनों को बताओ। मैं सुधार के लिये उन्हें बाल विधवा कहता हूँ क्योंकि मेरा विश्वास है कि जो लड़की १०-१५ साल की अवस्था में बिना विवाह की अपनी सम्मति दिये ब्याही जाय और जो कभी अपने पति के साथ न रही हो, और यकायक विधवा घोषित कर दी जाय, वह विधवा नहीं। यह उस शब्द का, भाषा का अपमान और अपवित्र करना है। हिन्दुत्व में विधवा के साथ पवित्रता की सुगन्ध होती है। मैं स्व० रामाबाई रानाडे जैसी विधवाओं की की उपासना करता हूँ जो जानती हैं, विधवा होना क्या है। परन्तु ६ वर्ष के बच्चे को क्या मालूम कि पति क्या होता है। यदि

इस प्रेसीडेन्सी में ऐसी बालविधवायें नहीं है तो मैं हार मानता हूँ लेकिन अगर है तो तुम्हारी यह पवित्र कर्तव्य है कि इस पाप से मुक्त होने के लिए उनसे विवाह करने का निश्चय करो। मैं विश्वास करता हूँ कि इस प्रकार के जो पाप कोई जाति करती है, पार्थिव रूप से उस पर प्रभाव डालते हैं। मेरा विचार है कि इस प्रकार के सभी पापों ने हमें गुलामी में बाँध रखा है। यदि तुम्हें 'हाउस आँव कामन्स' से उत्तम से उत्तम ····· मिले तो भी यहाँ तब तक बेकार होगा जबकि इसे चलाने के लिए उपयुक्त पुरुष और स्त्रियाँ न होंगी। क्या तुम यह सोचते हो कि जब तक हमारे भीतर एक भी ऐसी विधवा है जो अपनी आवश्यकतायें पूरी करना चाहती है परन्तु जबर्दस्ती रोक दी जाती है तब तक हम अपने को ऐसा मनुष्य कह सकते है जो अपने ऊपर या दूसरों पर राज्य कर सकता है, या जो ३० करोड़ वाले राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कर सकता है। यह धर्म नहीं, अधर्म है। मैं ऐसा कहता हूँ क्योंकि हिन्दुत्व का सार मुझमें है। ऐसा मत समझो कि मेरे भीतर पश्चिमी विचार धारा काम कर रही है। मैं अपने को पवित्र भारतवर्ष की आत्मा से लबरेज़ होने का दावा करता हूँ। मैंने पश्चिम से बहुत सी चीज़ें सीखी हैं, परन्तु इसे नहीं। इस प्रकार के वैधव्य का हिन्दू धर्म में कोई समर्थन नहीं।

मैंने बाल-विधवाओं के विषय में जो कुछ कहा है, वह निश्चित रूप से बाल पत्नियों के विषय में भी लागू है। तुम्हें अपने ऊपर इतना अधिकार होना चाहिए कि १६ वर्ष से कम की लड़की से विवाह न करो। यदि सम्भव होता तो मैं निचली सीमा २० वर्ष रखता। लड़कियों के तीव्र विकास का उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है, भारतवर्ष की जलवायु पर नहीं। मैं ऐसी लड़कियों को जानता हूँ जो २० वर्ष की है फिर भी पवित्र हैं और अपने आस-पास की बुरे

वातावरण से मुक्त है। हमें इस तीव्र गति को न अपनाना चाहिए। कुछ ब्राह्मण विद्यार्थियों से कहता हूँ, यदि तुम्हारे लिए आत्मसंयम संभव नहीं तो अपने को ब्राह्मण मत समझो। ऐसी १६ साल की लड़की चुनो बाल-विधवा हो गई हो। यदि ब्राह्मणी विधवा न मिले तो जो भी लड़की तुम्हें पसंद हो चुन लो। मैं बताता हूँ हिन्दुओं का भगवान उस लड़के को जो १२ साल की लड़की को बर्बाद करने की अपेक्षा अपनी जाति से बाहर विवाह करता है, क्षमा करेगा। अब तुम अपनी वासना पर नियत्रण नहीं कर सकते तो तुम्हे शिक्षित नहीं कहा जा सकता। तुमने अपनी संस्था को प्रमुख संस्था कहा है। मै जानता हूँ चरित्र मे अग्रेजी विद्यार्थियों को पैदा करके तुम इस नाम को सार्थक करो। बिना चरित्र के शिक्षा और बिना प्रारम्भिक पवित्रता के चरित्र व्यर्थ है। मैं ब्राह्मणत्व की पूजा करता हूँ, मैंने वर्णाश्रम कर्म का समर्थन किया है। किन्तु ऐसे ब्राह्मणत्व से जो अछूतों कुमारी विधवाओं कुमारियों की मान-हानि, की स्थिति सहन कर सकता है, मेरा दम घुटता है। उसमें ब्राह्मण का कोई शान नहीं। यह तो अनियंत्रित पशुता है। ब्राह्मणत्व इससे कठोर है। मै चाहता हूँ कि मेरे ये विचार तुम्हारे मन में बैठ जाँय। मैं बोलने के साथ साथ लड़कों को देखता जा रहा हूँ और यदि कोई भी लड़का मेरे हृदय के उद्गार प्रकट करते समय किसी भी तरह का शब्द करता है तो मुझे कष्ट होता है मै यहाँ तुम्हारे मस्तिष्क को प्रभावित करने के लिए नहीं आया हूँ बल्कि हृदय को। तुम देश की आशा हो और जो मैंने कहा है, वह तुम्हारे लिए विशेष महत्व रखता है।

———

रोष भरा विरोध

एक बंगाली स्कूल के हेडमास्टर लिखते हैं :—

"आपने मद्रास के विद्यार्थियों को जो विधवा लड़कियों से ही शादी करने की सलाह देते हुए जो भाषण दिया है उससे हम भयभीत हो रहे हैं। और मैं उससे अपना नम्र परन्तु रोष भरा विरोध जाहिर करता हूँ

विधवाओं के जिस आजन्म ब्रह्मचर्य के पालन के कारण भारत की स्त्रियों को संसार में सब से बड़ा और ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ है, उसके पालन करने की वृति की ऐसी सलाहें नष्ट कर देंगी और भौतिक सुखों के दुष्ट मार्ग पर उन्हें चला कर एक ही जन्म में ब्रह्मचर्य के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की उनकी सुविधा को मिटा देगी इस प्रकार विधवाओं के प्रति ऐसी तीव्र सहानुभूति दिखाना उनकी असेवा होगी और कुवारियों के प्रति जिनके विवाह का प्रश्न आज बड़ा पेचीला और मुश्किल हो गया है, बड़ा अन्याय होगा; विवाह सम्बन्धी आप के इन विचारों से हिन्दुओं के पुनर्जन्म और मुक्ति के विचारों की इमारत गिर जायगी और हिन्दू समाज भी दूसरे समाजों के वैसा ही जिन्हें हम पसन्द नहीं करते बन जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे समाज का नैतिक पतन हुआ है। परन्तु हमें हिन्दू आदर्श के प्रति हमारी दृष्टि खुला रखना चाहिए और उसे उस आदर्श के अनुकूल मार्ग दिखाना चाहिए। हिन्दू समाज को अहिल्याबाई, रानी भवानी, बहुला, सीता, सावित्री दमयन्ती के उदाहरणों से शिक्षा मिलनी चाहिए और हमें भी उन्हीं के आदर्श के मार्ग पर उसे चलाना चाहिए। इसलिए मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप इन विषय प्रश्नों पर अपनी

ऐसी ज़ाहिर करने से रुक जाय और समाज को जो वह उत्तम समझें वही करने दें।"

इस रोष भरे विरोध से न मेरे विचार बदले हैं और न मुझे कोई पश्चाताप ही हुआ है। कोई भी विधवा जिसमें इच्छा बल है और जो ब्रह्मचर्य को समझ कर उसका पालन करने पर तुली हुई है मेरी इस सलाह से अपनी इरादा छोड़ न देगी। परन्तु यदि मेरी सलाह पर अमल किया जावेगा तो उसमे उन छोटी उम्र की लड़कियों को ज़रूर राहत मिलेगी जो शादी के समय शादी किसे कहते हैं यह भी समझती न थीं। उनके सम्बन्ध में विधवा शब्द का उपयोग इस पवित्र नाम का दुरुपयोग है। मुझे पत्र लिखने वाले उन महाशय के मन में जो ख़याल है उसी ख़याल से तो मैं देश के युवकों को या तो इन नाम मात्र की विधवाओं से शादी करने का या बिल्कुल ही शादी न करने की सलाह देता हूँ। इसकी पवित्रता की तभी रक्षा हो सकेगी जब कि बाल विधवाओं का अभिशाप उससे दूर कर दिया जावेगा। ब्रह्मचर्य के पालन से विधवाओं को मोक्ष मिलता है इसका तो अनुभव में कोई प्रणाम नहीं मिलता है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए केवल ब्रह्मचर्य ही नहीं परन्तु और भी बातों की आवश्यकता होती है। और जो ब्रह्मचर्य जबरदस्ती लादा गया है उसका कुछ भी मूल्य नहीं है। उससे तो अक्सर गुप्त पाप होते हैं जिससे उस समाज की नैतिक शक्ति का ह्रास होता है। पत्र लेखक महाशय को यह जान लेना चाहिए कि मैं यह जाती अनुभव से लिख रहा हूँ।

यदि मेरी इस सलाह से बाल विधवाओं से न्याय किया जावेगा और इस कारण कुवारियों के मनुष्य की विषय लालसा के लिए बेची जाने के बदले उन्हें वय और बुद्धि में बढ़ने दिया जावेगा तो मुझे बड़ी खुशी होगी।

विवाह के मेरे विचारों में पुर्नजन्म और मुक्ति में कोई असंगति नहीं है। पाठकों को यह मालूम होना चाहिए कि करोड़ों हिन्दू जिन्हें हम अन्यायतः नीच जाति के कहते हैं उनमें और पुर्नलग्न का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। और मैं यह भी नहीं समझ सकता हूँ कि वृद्ध विधुरों के पुर्नलग्न से उन विचारों को क्यों नहीं बाधा पहुँचती है और लड़कियों को -जिन्हें गलत तौर पर विधवा कहा जाता है—शादी से इन भव्य विचारों को क्यों कर बाधा पहुँचती है? पत्र लेखक की पुष्टि के लिए मैं यह भी कहता हूं कि पुर्नजन्म और मुक्ति मेरे विचारों में केवल विचार ही नहीं है परन्तु ऐसा सत्य है जैसा कि सुबह को सूर्य का उदय होना मुक्ति सत्य और उसे प्राप्त करने के लिए मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ यही मुक्ति के विचार ने मुझे बाल विधवाओं के प्रति किये जाने वाले अन्याय का स्पष्ट भान कराया है। अपनी कायरता के कारण हमें जिनके प्रति अन्याय किया गया है उन वर्तमान बाल विधवाओं के साथ सदा स्मरणीय सीता और दूसरी स्त्रियों के नाम जो पत्र लेखक ने गिनाये हैं नहीं लेना चाहिए।

अन्त में यद्यपि हिन्दू धर्म मे सच्चे विधवापन का गौरव किया गया है और ठीक किया गया है, फिर भी जहाँ तक मेरा ख्याल है इस विश्वास के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक काल के विधवाओं को पुर्नलग्न का सम्पूर्ण प्रतिबन्ध था। परन्तु सच्चे विधवापन के विरुद्ध मेरी लड़ाई नहीं है। वह उसके नाम पर होने वाली अत्याचार के खिलाफ़ है। अच्छा रास्ता तो यह है कि मेरे ख्याल में जो लड़कियाँ हैं उन्हें विधवा ही नहीं मानना चाहिए और उनका यह असह्य बोझ दूर करना प्रत्येक हिन्दू का जिसम कुछ भी वीरत्व है, स्पष्ट कर्तव्य है इसलिए मैं फिर जोर देकर हर एक नौजवान

हिन्दू को सलाह देता हूँ कि इन बाल विधवाओं के सिवाय दूसरी लड़कियों से शादी करने से वे इन्कार कर दें।

'विवाह को हटा दो'

एक सवाददाता जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ, एक प्रश्न उठाया है और वह केवल तर्क के लिये है, क्योंकि मैं जानता हूँ वे विचार उनके निजी हैं। "क्या हमारी आजकी नैतिकता अस्वाभाविक नहीं।' यदि यह स्वाभाविक है तो हर युग में हर जगह एक सी होती है। परन्तु जाति और समाज के व्याह के अपने अपने अलग नियम रहे हैं, और पुरुषों ने उनके लिए अपने को पशुओं से भी गिरा दिया है क्योंकि जो रोग पशुओं में अकसर नहीं होते वे भी मनुष्यो में होते हैं।.........बाल मृत्यु, गर्भपात, बालविवाह जो पशु जगत में असंभव है, ऐसे समाज के अभिशाप हैं जो विवाह को धार्मिक संस्कार मानता है और जिसको हम नैतिकता के नियम समझते हैं उनसे कोई बुरे परिणाम नहीं होते।

हिन्दू विधवाओं की भयानक दशा—इसका कारण आज के विवाह के नियमों के अतिरिक्त और क्या है? हम लोग प्रकृति के नियमो का पालन क्यों करें और पशु सृष्टि का एक पृष्ट क्यों न स्वीकार करें!

मुझे ज्ञात नहीं है कि स्वच्छन्द प्रेम के समर्थक पश्चिमी लोग उपर्युक्त तर्क को मानते हैं या इससे भी दृढ़ तर्क देते हैं। परन्तु इतना मैं अवश्य जानता हूँ विवाह की प्रथा को जंगली समझना

यहाँ पश्चिम की हो देन है। यह तर्क पश्चिम में लिया गया है तो इसके खण्डन में कोई कठिनाई नहीं।

मनुष्य और पशु की समता करना भूल है यही समता तर्क को उड़ा देती है। नैतिक संस्थाओं और भावनाओं के विषय में, मनुष्य पशु से ऊँचा है। दोनों के लिए दो भिन्न प्रकृति के नियम हैं। हैं। मनुष्य में तर्क अच्छे बुरे की पहचान और स्वतन्त्र इच्छा होती है, परन्तु पशु में ऐसा कुछ नहीं। यह स्वतन्त्र शक्ति नहीं रखता और न भले बुरे की पहचान ही कर सकता है। परन्तु पुरुष स्वतंत्र शक्ति रखने से इनका भेद जानता है और अपने ऊँचे स्वभाव का पालन करते समय पशु से ऊँचा दिखाई देता है और नीचे स्वभावों के पालन करते समय पशु से नीची बात भी कर सकता है। जो जातियाँ बिलकुल असभ्य मानी जाती हैं वे भी लैङ्गिक सम्बन्ध में कुछ नियम मानती हैं। यदि यह माना जाय कि बंदिश ही जंगली है तो हर बंदिश से मुक्त होना ही नियम आदमी का कानून होना चाहिये। यदि सभी लोग इस अनियंत्रित नियम का पालन करें तो २४ घण्टे पूर्ण अशान्ति मच जायगी। स्वभावतः पशुओं से अधिक वासनायुक्त होने के कारण इस अनियंत्रण में, वे रोक थाम की वासना की चिनगारी सारी पृथ्वी पर फैल जायगी और समस्त मानव समाज को भस्म कर देगी। मनुष्य वहीं तक पशु से ऊँचा है जहाँ तक त्याग और नियंत्रण कर सकता है। जिसमें पशु असमर्थ है।

बहुत से रोग जो आज कल फैले हुए हैं ऐसे हैं जिनका विवाह की प्रथा में आ गई बुराई है। मैं एक भी विवाहित पुरुष का नाम जानना चाहता हूँ जो विवाह के सभी नियमों और बन्धनों का पालन करने पर भी ऐसे रोगों का शिकार हुआ हो, जो संवाददाता के दिमाग़ में है। बाल मृत्यु बालविवाह और इस प्रकार के रोग

विवाह के नियमों के तोड़ने से भी होते हैं। क्योंकि कानून कहता है कि स्त्री या पुरुष पूर्ण विकसित हो जाने पर स्वस्थ और नियन्त्रण में समर्थ तथा संतति उत्पन्न करने की इच्छा होने पर ही साथ बधें। जो इस नियम का पालन करते हैं तथा विवाह को संस्कार समझते हैं कभी दुःखी और विपन्न नहीं होते। जहाँ विवाह संस्कार है वहाँ किसी की मृत्यु से भी यह सम्बन्ध नहीं टूटता, यह सम्बन्ध शरीरिक नहीं, आत्मा का होता है। और जब आत्माओं का सम्बन्ध हो तो स्त्री या पुरुष के मरने पर भी दूसरा विवाह अनुचित, अविचार्य और असत्य है। जहाँ विवाह के नियमों का पालन न किया जायगा, वहाँ विवाह की सज्ञा ही असत्य है। आज सच्चे व्याह बहुत कम होते हैं, परन्तु इसकी जिम्मेदारी विवाह संस्कार पर नहीं, बल्कि इसकी प्रथा पर है और उसी में सुधार होना चाहिए।

संवाददाता ने समझा है कि विवाह कोई नैतिक या धार्मिक बन्धन नहीं, बल्कि एक रिवाज है सो भी धर्म और नीति के विरुद्ध। अतः इसे खत्म कर देना चाहिए। मैं स्वीकार करता हूँ विवाह वह घेरा जिससे धर्म की रक्षा होती है। यदि यह घेरा न हो, धर्म के टुकड़े टुकड़े हो जायँगे। धर्म नींव नियंत्रण है और विवाह नियंत्रण के अतिरिक्त है और क्या! जो मनुष्य नियंत्रण नहीं कर सकता वह आत्म ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। यह मैं मानता हूँ कि किसी अनीश्वरवादी या भौतिकवादी को नियंत्रण की आवश्यकता सिद्ध करना असंभव है। परन्तु जो जानता है कि शरीर नाशवान है और आत्मा अमर वह जानता है कि आत्मनियन्त्रण और संगठन के बिना आत्म-ज्ञान नहीं हो सकता। शरीर या तो वासना का क्रीड़ास्थल होगा या आत्मज्ञान का मन्दिर। यदि वह आत्मज्ञान का मन्दिर है तो उसमें किसी प्रकार की अशुद्धता और अशिष्टता को स्थान नहीं। आत्मा शरीर पर सदा स्वत्व रखेगी।

जब नियंत्रण नहीं रखा जायगा और विवाह बंधन ढीला हो गा, तो स्त्रियाँ घृणा की पात्री होंगी। यदि पुरुष उसी प्रकार अनियंत्रित रहें जैसे पशु तो वे नष्ट ही हो जायँगे। मेरा विश्वास है कि जितने रोग संवाददाता ने बतायें हैं वे सब विवाह की प्रथा कर देने से नहीं वरन उसके नियमों को समझाने और पालन करने से ही दूर होंगे।

मैं मानता हूँ कि कुछ जातियों में अपने निकट सम्बन्धियों के यहाँ शादी ब्याह होता है और दूसरी जातियों में इसका निषेध है; कुछ जातियों में बहु विवाह की आज्ञा है और कुछ में नहीं, यह चाहते हुए कि सभी जातियों में समान नियम होते, इस विभिन्नता का यह अर्थ नहीं होता कि सभी प्रकार के नियंत्रण खतम कर दिए जायँ।

जैसे जैसे हम अनुभवशील होते जायँगे, हमारे भीतर सामर्थ्य आता जायगा आज भी नैतिक समाज, एक पत्नीत्व ही का समर्थक है और कोई भी धर्म बहु-विवाह को अनिवार्य नहीं मानता। समय और स्थान के अनुकूल नियंत्रण में कुछ परिवतन कर देने पर भी आदर्श वैसे ही रहता है।

एक विचार दोष

एक भाई लिखते हैं:—

"आपने अपने एक लेख में एक जगह कहा है। 'विवाह धर्म सम्बन्ध है, इसलिए वह अकेले शरीरों का ही संबन्ध नहीं बल्कि आत्माओं का ऐक्य भी है या होना चाहिए। ऐसा सम्बन्ध साथी

की मौत के बाद भी कायम रहता है। जहाँ आत्माओं का सच्चा मेल हो चुका हो वहाँ विधवा विधुर के पुनर्विवाह की गुञ्जाइश ही नहीं रह सकती यही नहीं बल्कि उनका पुनर्विवाह करना अनुचित और अनीति पूर्ण भी होगा। मगर उसी लेख में आप दूसरी जगह कहते हैं:—मैं बाल विधवा के पुनर्विवाह को इष्ट मानता हूँ, यही नहीं बल्कि ऐसी विधवा कन्याओं का पुनर्विवाह करना माता-पिता का परमधर्म है।' आप इन दो भिन्न बातों की एक वाक्यता कैसे सिद्ध करते हैं?"

मुझे इन दो विचारों में कोई विरोध नहीं देख पड़ता। अगर कोई निर्दय माता-पिता किसी नन्हीं सी बालिका को स्वार्थ या अज्ञान के कारण, उसके हिताहित का विचार न करके उसकी इच्छा और सम्मति के बिना ही किसी को सौंप दें, तो इस तरह का सम्बन्ध विवाह संबन्ध हो नहीं सकता। यह संबन्ध तो आध्यात्मिक किसी भी हालत में नहीं कहा जा सकता। अतएव ऐसी बालिका का पुनर्विवाह कर्तव्य बन जाता है। सच पूछा जाय तो ऐसे विवाह को पुनर्विवाह कहना ही अनुचित है। क्योंकि ऐसी कन्या का विवाह होता ही नहीं। अतएव ऐसी बालिका के नाम धारी पति की मृत्यु के बाद उसके लिए कोई योग्य पति ढूँढ़ देना माता-पिता का सहज धर्म है।

'एक युवती विधवा'

जब हम लोग बेज़वादा से एलोर जा रहे थे तो मुझे पता चला कि एक लड़की अभी अभी विधवा हुई थी, मुझे अपने १४०० रुपये के जेवरात देना चाहती थी और उसकी इच्छा थी कि मैं

उसके गाँव जाऊँ जो पदापट्टु से जहाँ हमें जाना था दो मील से कम ही था। उसकी जाति वाले पर्दा रखते थे और वह किसी भी प्रकार किसी सभा में नहीं जा सकती थी। मुझे जेवरों का आकर्षण नहीं था और सच पूछा जाय तो मुझे विश्वास नहीं था कि कोई विधवा लड़की संभवतः अपने सभी बहुमूल्य आभूषण मुझे देना चाहेगी। लेकिन उसका युवती होना तथा तुरन्त ही विधवा हो जाना (मुझसे कहा गया कि वह कुमारी विधवा थी)। मुझे उसके घर ले जाने के लिये पर्याप्त था। और वहाँ जाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की का नाम सत्यवती देवी है और वह २० वर्ष से कम अवस्था की है। उसका पति एक सुन्दर शिक्षित राष्ट्रीयता वादी था। लड़की स्वयं वे लेगु अच्छी तरह जानती है। मैंने उसे साहसशील और दृढ़ निश्चय की लड़की पाया। उसके माँ-बाप जीवित हैं। उस लड़की ने अपने सभी जेवरात (यहाँ तक मुझे मालूम है) मेरे हाथ में रख दिये और मुझे उनका मूल्य १४०० ठीक ही लगा उसने मुझे एक नोट दिया जिसका अर्थ था कि मैं उसे आश्रम तक ले जाऊँ। उस समय उसके माँ-बाप भी उपस्थित थे। और उन्होंने खादी के लिये सत्यवती के गहनों के समर्पण को समर्थन किया। मैंने उनसे कहा कि उस लड़की को घर ही के घेरे में न बन्द रखे और उसके साथ वैसे ही व्यवहार करें जैसे घर का अन्य लड़कियों के साथ। मैंने सत्यवती देवी को बताया कि केवल विधवा हो जाने से जेवरों के समर्पण करने की अवश्यकता न थी, परन्तु वह अपने निर्णय पर दृढ़ थी। उसके लिये ये निरर्थक थे। मैंने यह भी कहा कि यदि माँ-बाप राजी हों तो ख़ुशी के साथ मैं उसे आश्रम ले चलूँगा। उन्होंने वादा किया है कि वे इस पर ध्यान देंगे और लड़की को हर प्रकार की आशा दिलाई है कि उसे मेरे साथ आश्रम भेज देंगे। उसका पिता जो सतर्क और चुप था, अपनी

लड़की की ओर बड़ा उदार मालूम हुआ। अधिक सान्त्वना न दे सकने के लिये मुझे बड़ा दुःख रहा और मैं अलग होते समय मेरा मन बड़ा भारी था।

इसलिये पदापदु में मेरा व्याख्यान सत्यवती देवी पर ही हुआ। मैंने लोगों को बताया कि पर्दे को समाप्त कर देना चाहिए और यदि कोई विधवा विवाह करना चाहे तो माँ बाप को सहायता देना अपना कर्तव्य समझें। जब १८ वर्ष का लड़का पत्नी के देहान्त हो जाने पर विवाह कर सकता है तो किसी भी ऐसी अवस्था की विधवा को क्यों अधिकार न दिया जाय। किसी भी जाति के लिये पवेच्छाकृत वैधव्य गौरव है और आरोपित वैधव्य मानहानि। लोगों ने मेरी बात बड़े ध्यान और आदर से सुनी। लड़की का पिता सभा में था और उससे मुझे यह पता चला कि जेवरात देने की लड़की की अपनी इच्छा थी और उसकी पुनर्विवाह का बिल्कुल विचार न था। मुझे यह भी बताया कि राष्ट्र के विचार से उसकी अध्ययन करने की इच्छा थी। यदि वह सचमुच उसका दृढ़ निश्चय है तो सत्यवती के लिये बड़े गौरव की वस्तु है। हिन्दू समाज को चाहिए कि यदि ऐसी विधवायें विवाह करना चाहें तो उनके लिये मार्ग खुला होना चाहिए। सत्यवती कहानी सैकड़ों हिन्दू-घरों में प्रतिदिन होती है। जब तक विधवायें हिन्दू समाज में अक्षम्य बंधन में रखी जायँगी, और उनकी पुनर्विवाह करने की इच्छा समाजिक प्रथा की कठोरता से दबी रहेगी, हर विधवा का श्राप हिन्दू समाज पर लगेगा।

—:०:—

"स्त्रियों को मुक्त कर दो"

डाक्टर एस मुथुलक्ष्मी ने जो मद्रास के एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं, मुझे एक लम्बा ख़त लिखा है जिसका आधार मेरा आन्ध्र का एक व्याख्यान है। उस ख़त का कुछ हिस्सा मैं नीचे दे रहा हूँ :—

"आपने अपनी बेजवाडा से गुरनार की यात्रा में, जनता की दैनिक आदतों में जो स्वस्थ परिवतनों तथा सुधारों की जो परम-आवश्यकता अनुभव की है वह मुझे बहुत अच्छी लगी।"

"मैं परम विनम्रता पूर्वक स्वीकार करती हूँ कि एक स्त्रियों के डाक्टर का हैसियत से मेरा आप से पूर्ण साम्य है। किन्तु क्या आप कृपया मुझे यह कहने का आज्ञा देंगे कि यदि शिक्षा से समाजिक सुधार सुन्दर स्वास्थ्य और सफ़ाई आयेगी तो स्त्रियों की शिक्षा से ही।

"क्या आप ऐसा नहीं सोचते कि आज कल के समाज में बहुत कम स्त्रियों को शिक्षा पूर्ण शारीरिक और दिमागी विकास तथा आत्म व्यजन का अवसर मिलता है।"

'क्या आप नहीं मानते कि उनका सारा व्यक्तित्व विश्वासों और प्रथाओं के भार से बुरी तरह कुचला जा रहा है?"

'क्या बाल विवाह शारीरिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास जड़ को नष्ट नहीं करता?"

"क्या बाल स्त्रियों की दुःख पूर्ण कहानी और हमारी विधवाओं और परित्यक्ता पत्नियों का असीम दुःख हमें शीघ्र क़दम उठाने को बाध्य नहीं करते?"

"क्या हिन्दू समाज के लिए ऐसे नियमों का पालन करना या उनकी ओर से उदासीन रहना जो धर्म के नाम पर निष्कलुष लड़कियों को

हमारे कवियों सन्तों और ऋषियों सभी ने यही कहा है। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है। जो देश या राष्ट्र स्त्रियों का सम्मान नहीं करता वह कभी बड़ा नहीं हुआ और न भविष्य में हो ही सकता है। तुम्हारे राष्ट्र के पतन का मुख्य कारण यही है कि इन शक्ति की सजीव मूर्त्तियों का तुम आदर नहीं करते थे। यदि स्त्रियों का उत्थान (जो दैवी माताओं की अवतार हैं) तो मत समझो कि तुम्हारी उन्नति का कोई और मार्ग हो सकता है।

"स्वर्गीय सुब्रमन्य भारती ने भी जो तामिल के महाकवि थे, यही कहा है।"

"अतः क्या आप अपनी यात्रा में लोगों को स्वतन्त्रता का सीधा और निश्चित मार्ग अनुसरण करने की सलाह देंगे?"

डा० मुथुलक्ष्मी की कांग्रेस के लोगों से इस कार्य के भार वहन की आशा बिलकुल ठीक है। बहुत से कांग्रेस के लोग व्यक्तिगत रूप से और संगठित रूप से भी इस दिशा में विशेष प्रयत्न शील हैं। इस बुराई की जड़ जैसा दिखाई पड़ता है, उससे कहीं गहरी है। केवल स्त्री शिक्षा ही इसके लिये दोषी नहीं, हमारा शिक्षा क्रम ही दूषित है। और किसी प्रथा विशेष को तिरस्कृत करने से काम नहीं चलेगा बल्कि स्वीकृत-सामाजिक कुरीति पर चलने वाली शक्ति को ही हटाना पड़ेगा। अन्त में तिरस्कार तो शहर में रहने वाले मध्यमवर्ग के लोगों का यानी गाँवों के १५ फीसदी का ही करना है। देहात में रहने वाले लोगों में बाल-विवाह नहीं होता और न उनके विधवा-विवाह का ही निषेध है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमें और दूसरी बुराइयाँ हैं जो उनके विकास को बाधा पहुँचाती हैं।

शिक्षा का समूचा ढाँचा ही दुरुस्त करना पड़ेगा और उसे जनता के उपयुक्त बनाना पड़ेगा। जो भी शिक्षा प्रौढ़ों के लिये

बच्चों की ही तरह नहीं ध्यान देंगी, वह नहीं चल सकती । इसके अतिरिक्त यदि ग्राम्य भाषाओं को उचित स्थान न दिया जाय ऐसी शिक्षा भी इस प्रश्न को सुलझा नहीं सकती । और यह काम तो आज की पढ़ी लिखी जनता ही कर सकती है। इसलिये किसी भी विस्तृत सुधार के आने पहले के शिक्षित वर्ग के विचार बदलने होंगे। और मैं डा० मुथुलक्ष्मी से यह भी कहना चाहता हूँ कि इसके लिये भारतवर्ष की कुछ शिक्षित स्त्रियों को पश्चिम की ऊँचाई से उतर कर भारत के मैदानों में आना पड़ेगा। स्त्रियों की अवहेलना का उनके दुष्प्रयोग की जिम्मेदारी पुरुषों पर ही है, और उन्हें इसके लिए उचित तपस्या करनी होगी परन्तु जिन स्त्रियों के अन्ध-विश्वास मर गये हैं और जो इस बुराई को जानती हैं, उन्हें सुधार में क्रियात्मक कार्य करना पड़ेगा। स्त्रियों की स्वतन्त्रता भारत की स्वतन्त्रता अछूत का रोग मिटाना, आम जनता की आर्थिक दशा का सुधार इत्यादि कार्यों के लिये लोगों को शहरों में जाकर देहात जिन्दगी में ही सुधार करना पड़ेगा।

'हमारी पतित बहिनें'

सब से पहले आन्ध्र प्रान्त के कोकोनाडा शहर में मुझे वे स्त्रियाँ देखने को मिली जो अपनी रोटी के लिए अपनी इज्जत बेचती हैं। उनमें से केवल आधे दर्जन के साथ कुछ मिनट की मुलाकात हुई। दूसरी बार मैंने उन्हें बरीसाल में देखा। एक सैकड़े से अधिक संख्या में वे मुझ से मिलीं। उन्होंने मुलाकात के लिए एक खत पहले से ही लिखा था और उस पत्र में यह भी कहा था कि कांग्रेस की सदस्य हो गई हैं और तिलक स्वराज फण्ड में चन्दा भी दे

चुकी हैं; परन्तु उनकी समझ में मेरी यह बात न आई थी कि वे विभिन्न कांग्रेस कमेटियों में पद न ग्रहण करें। उन्होंने शुरू में पूछा था कि भविष्य में क्या करें। जो सज्जन पत्र लाये थे, मुझे देने में बहुत हिचके क्योंकि वे यह न जानते थे कि मैं इससे प्रसन्न हूँगा या अप्रसन्न। मैंने विश्वास दिलाया कि किसी भी प्रकार इन बहनों की सेवा करना मेरा कर्तव्य है।

मैंने जो दो घण्टे इन बहनों के साथ बिताये चिरस्मरणीय हैं। उन्होंने बताया कि लगभग २०००० पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के बीच में उनकी संख्या ३५० से अधिक है। वे बरीसाल के अपमान हैं और जितनी जल्दी बरीसाल इससे छुटकारा पाये, उतना ही अच्छा है। मुझे भय है कि जो बरीसाल के विषय में सत्य है, वह और भी शहरों के विषय में सत्य है। इसलिये मैं बरीसाल को केवल एक मिसाल के तौर पर मैं ले रहा हूँ। इन बहनों की सेवा का गौरव कुछ बरीसाल के नवयुवकों को है। मुझे आशा है कि इस बुराई को मिटाने का श्रेय भी बरीसाल को होगा।

जितनी भी बुराइयों के लिये मनुष्य उत्तरदायी है, उनमें से कोई भी इतनी अपमान-जनक दुःखद और पाशविक और कोई नहीं जितनी इस आधी मानव जाति, जो मेरे विचार में दुर्बल नहीं है, की मानहानि है। स्त्री अब भी पुरुषों से उत्तम है क्योंकि वह आज भी शान्तिपूर्वक सहन करने विनम्रता और त्याग की अवतार है। स्त्री की बुद्धि भी पुरुषों की अपेक्षा जो अपनी उत्तम जानकारी की डींग मारा करते हैं, अच्छी होती है। राम के पहले सीता का, और कृष्ण के पहले राधा का नाम रखने का यही तात्पर्य है। हमें यह नहीं समझना चाहिए कि उस बुराई ने हमारे विकास में कोई योग दिया है, क्योंकि वह चारों ओर छाई हुई है और सभ्य योरोप में कहीं कहीं संगठित रूप से प्रचार की जाती है। हमें इस

आधार पर भी भारत में यह बुराई रही है, इसे नहीं अपनाना चाहिए। जिस समय हम अच्छाई और बुराई को अलग न कर सकें और अतीत बिना ठीक से जाने उस पर चले क्योंकि ऐसा चला आ रहा है, उस समय हमें खत्म हो जाना चाहिए। हमारे भीतर जो भी सुन्दरतम रहा है, हम उस पर गर्व करने वाले उत्तराधिकारी हैं। और अपने पूर्वजों की गलतियाँ दुहराकर अपने को अपमानित न करना चाहिए। क्या आत्म-सम्मान करने वाले भारतवर्ष में हर स्त्री के गुणों का हर मनुष्य से वैसा ही सम्बन्ध नहीं जैसा अपनी बहिन के गुणों का? स्वराज का अर्थ है भारतवर्ष के हर निवासी को अपने भाई या बहन की तरह मानना।

अतः इन बहनों के सामने मनुष्य होने के नाते मेरा सिर लज्जा से झुक गया। कुछ अधिक अवस्था की थीं अधिकतर २० से ३० वर्ष की थीं, और २ या तीन ११ साल से भी कम थीं। उस सबों के बीच ६ लड़कियाँ और लड़के थे, जिनमें से सबसे बड़ा उन्हीं में से एक से विवाहित था, और जब तक कोई और उपाय न हो, वह लड़कियाँ भी उनकी ही तरह पाली जातीं। इनके भीतर यह विचार आता कि इनका सुधार असम्भव है जीवित पुरुष के लिए कुठाराघात की भाँति था। फिर भी वे विनम्र और बुद्धिवान थीं। उनकी बातचीत गंभीर थी और उनके उत्तर स्पष्ट और सीधे होते थे। और कुछ क्षण के लिये उनके निश्चय उतने ही दृढ़ थे जितने किसी भी सत्याग्रही के ११ ने प्रतिज्ञा की कि अपना पेशा छोड़कर कातना बुनना सीखेंगी, बशर्ते कि उन्हें सहायता मिली। दूसरों ने कहा कि वे इस पर विचार करेंगी, क्योंकि वे मुझे धोखा नहीं देना चाहती थीं।

इस क्षेत्र बरीसाल के युवकों के लिए काम है, वहाँ भारतवर्ष के हर सच्चे सेवक के लिए काम है चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

यदि २०००० की आबादी में ३५० दुःखी बहनें हैं तो भारतवर्ष भर में ५२५०००० होंगी। लेकिन यह सोचकर कि भारत की आबादी का जो ४/५ भाग गाँवों में रहता और खेती पर निर्भर करता है उस पर इस बुराई का कोई असर नहीं है, मैं बड़ा प्रसन्न होता हूँ। इस प्रकार भारतवर्ष भर में कम से कम १०५०००० स्त्रियाँ ऐसी हैं जिन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिये इज्जत बेचनी पड़ती हैं। इसके पहले कि उन्हें इससे छुटकारा मिले, दो शर्तें पूरी करनी होंगी हम पुरुषों को अपनी वासना पर नियंत्रण करना चाहिये और इन स्त्रियों को ऐसा रोजगार दिया जाय कि सम्मान पूर्वक अपनी रोटी कमा सकें। यदि असहयोग आन्दोलन हमारी वासनाओं को नहीं रोकता और हमें पवित्र नहीं बनाता तो यह कुछ भी नहीं है और कातने बुनने के अलावा ऐसा कोई पेशा नहीं, जिसे ... ...सब अपना सकें। इन बहनों में से बहुतों को विवाह की बात न सोचनी चाहिए। उन्होंने स्वीकार किया वे ऐसा कर ही नहीं सकती थीं। अतः निश्चयपूर्वक उन्हें भारत की सच्ची सन्यासिनी बनना था। सेवा के अतिरिक्त अपने जीवन की और प्रवाह न होने के कारण वे जी भर कर कात सकती थीं। १०५०००० स्त्रियाँ आठ घण्टे परिश्रम से बुनें तो गरीब भारतवर्ष को प्रतिदिन अपनी काफी धन प्राप्त हो। इन्होंने बताया कि इन्हें २ रुपये तक को आमदनी प्रतिदिन की आमदनी होती है। परन्तु कातने का करने पर वे अपनी बहुत आदतें जो मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिये करनी पड़ती थी, छोड़ सकती थी और इस प्रकार वे स्वाभाविक जीवन धारण करती। मेरी उनकी बातचीत समाप्त होने पर बिना मेरे कहे ही उन्हें मालूम होगया कि अपना पेशा छोड़े बिना वे कांग्रेस कमेटियों में पदाधिकारी क्यों नहीं हो सकती थीं। कोई भी अपवित्र हृदय और अपवित्र हाथों से स्वराज की वेदी पर कार्य नहीं कर सकता था।

हमारी अभागी बहिनें

दक्षिण में मुझे जो भी मान पत्र दिये गये उनमें सब से करुण देवदासियों का था............। इस मान पत्र को ......जहाँ से यह बहनें लाई गई थीं। उस मान पत्र से मुझे ज्ञात हुआ कि भीतरी सुधार हो रहे थे, परन्तु विकास की गति बड़ी धीमी थी। जो सज्जन उनका प्रतिनिधित्व कर रहे थे उन्होंने कहा कि आमतौर से जनता इन सुधारों के प्रति उदासीन थी। सबसे पहला धक्का मुझे कोकोनाडा में लगा और मैंने वहाँ के लोगों से स्पष्ट भी कर दिया दूसरा बरीसाल में जहाँ मुझे बहुत सी अभागी बहिनें मिलीं। चाहे उनका नाम देवदासी रखा जाय या कुछ और परन्तु समस्या एक ही है। यह बड़े दुःख और अपमान की बात है कि मनुष्य की वासना की तृप्ति के लिये स्त्रियों को अपनी इज्जत बेचनी पड़े। पुरुष ने (जो नियामक है) स्त्रियों का जो अपमान किया है उसके लिये उसको कठिन दण्ड भोगना पड़ेगा। जब स्त्री अपनी पूरी शक्ति से पुरुष के जाल से बचकर उसके नियमों और संस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलन करती है, तो वह हिंसात्मक ही क्यों न हो, कम प्रभावशाली नहीं होता। भारतवर्ष के पुरुषों को चाहिए उन हज़ारों स्त्रियों के विषय में गम्भीरता पूर्वक विचार करें जो इनकी नियम विरुद्ध और अनैतिक वासना के लिए अपनी इज्ज़त बेचती हैं। दुख तो यह है कि जो लोग उनके यहाँ जाते हैं उनमें से अधिकांश विवाहित पुरुष है अतएव वे दुगुना पाप करते हैं। वे अपनी स्त्रियों के प्रति पाप करते हैं जिनके साथ वे प्रति सम्बद्ध हैं और इन बहनों के साथ भी प्राप्त जिनकी पवित्रता की रक्षा अपनी सगी बहनों की ही भाँति

करने को वाध्य हैं यह ऐसी बुराई है जो एक भी दिन नहीं चल सकती बशर्ते कि हम भारत के पुरुष अपने सम्मान को पहचाने।

यदि कुछ बड़े आदरणीय जन इस पाप में भाग न लेते होते तो भूखे आदमी के केले चुराने या पैसा चाहने वाले किसी बच्चे द्वारा गिरहकटी करने से बड़ा दोष माना जाता किसी की सम्पति चुराने और किसी स्त्री की इज्ज़त चुराने मे मे अधिक बुरा और समाज के लिए हानिकारक है? मै यह नहीं सुनना चाहता कि अपनी सतीत्व की विक्री में उसी प्रकार एक वेश्या जिम्मेदार है जिस प्रकार कि घुड़दौड़ में जाने वाला एक लखपती एक पेशेवर जेब काटने वाले द्वारा अपने जेब के काटे जाने का जिम्मेदार है कौन बुरा है जो जेब काटता है वह बदमाश लड़का या गुण्डा जो अपने शिकार को मिला कर उसकी सारी सम्पति हड़प लेता है। क्या पुरुष पहले अपनी बारीक आदतो से स्त्री की उत्तम भावनाएँ नष्ट करके फिर उसके विरुद्ध पाप करने मे भागी नहीं बनता? या क्या कुछ स्त्रियाँ पचमा की भाँति पतित जीवन के लिए जन्म लेती है? मैं हर विवाहित नवयुवक से अपनी लिखी बात पर गौर करने को कहता हूँ। इस सामाजिक रोग नैतिक कुष्ट के विषय में जो मैं जानता हूँ सब नहीं लिखना चाहता उसकी कल्पना ही शेष बातों की पूर्ति करे और फिर यदि वह स्वयं इस राम का शिकार हो तो भय और शर्म से उससे दूर हो जाय। और हर मनुष्य चाहे जहाँ हो अपने पड़ोस को पवित्र बनावे। मुझे मालूम है कि दूसरा हिस्सा लिखने के ज्यादा आसान है परन्तु करने के लिए कठिन। यह एक बारीक विषय है इसकी बारीकी के ही कारण सभी विचार वान लोगों को इधर ध्यान देने की अवश्यकता है। अभागी बहनों के बीच में काम करने का भार सिद्ध हस्त सुधारको पर छोड़ना चाहिए। मेरा इशारा वहाँ काम करने की ओर है जहाँ इन बदनाम घरों मे जाने वाले वसते हैं।

भारतवर्ष की महिलाओं से एक अपील

विदेशी वस्त्र के वहिष्कार के लिए पर गान्धी जी ने भारतवर्ष की स्त्रियों के नाम निम्नलिखित अपील निकाली।

प्रिय बहनों,

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी आगामी ३० सितम्बर को विदेशी वस्त्र वहिष्कार अन्दोलन के लिए अन्तिम तारीख़ निर्धारित करके एक महत्व पूर्ण निर्णय किया है, जिसका आरम्भ बम्बई में ३१ जुलाई को लोक मान्य तिलक की स्मृति में यज्ञ की अग्नि जला कर किया गया था अभी तक जिसे तुम लोगों ने उत्तम तथा सुन्दर समझा था ऐसी साड़ियों तथा अन्य बहु मूल्य वस्त्रों की एक बहुत बड़ा ढेर में आग लगाने का सौभाग्य मुझे मिला था। मेरा विचार है कि उन बहनों के लिए जिन्होंने अपने बहुमूल्य वस्त्र दिये थे ऐसा बिल्कुल उचित था। इसका जला डालना ही सुन्दर आर्थिक उपयोग था जो तुम कर सकती थी। जिस प्रकार प्लेग की बीमारी से सम्पृक्त वस्तुओं का नाश ही सर्वोत्तम उपयोग है। ज़हर सम्पूर्ण शरीर को ही न बरबाद कर डाले, इसके लिए यही एक मार्ग निकाला गया था।

भारतवर्ष की स्त्रियों ने मातृभूमि के लिए पिछले बारह महीने में आश्चर्य जनक कार्य किये हैं। उदारता की देवियो की भाँति तुमने शान्तिपूर्वक कार्य किये हैं, तुमने अपनी नक़द सम्पति दान की है और बहुमूल्य जेवरात भी छोड़ दिये हैं। चन्दे वसूल करने के लिए तुम घर घर घूमती रही हो। तुम लोगों में से कुछ ने तो धरने देने में भी सहायता की है। कुछ ने तो जो बहुमूल्य और बारीक साड़ी पहनने की आदी थीं और दिन में कई बार बदलती थी। अब

मोटी परन्तु पवित्र और श्वेत खद्दर की साड़ी अपनाई है जो आन्तरिक पवित्रता को द्योतक हैं। यह सब हमने भारत माता के लिए खिजमत के लिए और पंजाब के लिए किया है। तुम्हारे शब्दों या कार्यों में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है। तुमने क्रोध रहित तथा पवित्र मन से उत्तर त्याग किया है। मैं मानता हूँ कि तुम्हारे स्वेच्छाकृत और स्नेह-युक्त कार्य ने मुझे विश्वास करा दिया है कि ईश्वर हमारे साथ है। भारतवर्ष को लाखों स्त्रियाँ हमारे आन्दोलन को सहायता कर रही हैं इसके अतिरिक्त किसी भी और प्रमाण क हमें यह सिद्ध करने के लिए आवश्यकता नहीं कि हमारा आन्दोलन आत्म-पवित्रता का है।

इतना देने पर भी तुम से बहुत कुछ मिलने की आवश्यकता है। तिलक स्वराज फण्ड के चन्दे में पुरुषों का विशेष हाथ था। परन्तु स्वदेशी प्रोग्राम सम्भवतः तभी पूर्ण होगा जब तुम सब से अधिक हिस्सा लो। जब तक तुम अपना सारा विदेशी वस्त्र न रखोगी, सब बहिष्कार असम्भव है। जब तक तुम्हारी यह चाह बनी रहेगी, तब तक त्याग असम्भव है। और बहिष्कार का उद्देश्य है, पूर्ण त्याग। हमें उन्हीं वस्त्रों से संतोष करना चाहिये कि भारतवर्ष बना सकता है जैसे हम उन्हीं बच्चों पर संतोष करते हैं जिन्हें भगवान हमें देता है। अगर बच्चा किसी बाहरी आदमी को बुरा लगे तो भी मैंने किसी माँ को उसे बाहर फेंकते नहीं देखा है। इसी प्रकार राष्ट्रीय भारत का स्त्रियों को यहाँ के वस्त्र का भी ध्यान रखना चाहिये। और तुम्हारे लिये केवल भारत का कला और बुना हो यहाँ की उत्पत्ति है। फिलहाल तो तुम्हें भद्दी और मोटी खादी हा प्रर्याप्त मात्र में मिल सकती है। फिर इसकी उन्नति के लिये अपनी सारी कला और रुचि इसमें लगाओ। और अगर तुम कुछ महीनों मोटी खादी पर ही सन्तुष्ट रह गईं तो भारतवर्ष को पूर्ण आशा है कि यहां का

प्राचीन, सुन्दर, महीन और उत्तम वस्त्र फिर बनने लगेगा जिसे देख कर सारे संसार को ईर्ष्या और निराशा होती थी। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि छः महीने के त्याग में यह मालूम हो जायगा जिसे हम कलात्मक मानते हैं, वह झूठ है और सच्ची कला दिखावट पर ही निर्भर नहीं बल्कि उसके पीछे छिपी भावना पर भी। ऐसी भी कला है जो मार सकती है और ऐसी भी जो जीवन भी देख सकती है। वह सुन्दर वस्त्र जो पश्चिमी देशों या सुदूर पूर्व से यहाँ आये, उन्होंने हमारे लाखों भाइयों और बहनों को मार डाला और हजारों बहनों का सम्मान ले लिया। सच्ची कला वह है जो आनन्द दे, शान्ति दे और पवित्रता दे। ऐसी कला के हमारे बीच आने के लिये वर्तमान समय में खादी का प्रयोग करना आवश्यक है।

और स्वदेशी प्रोग्राम के लिये केवल खादी का प्रयोग ही आवश्यक नहीं बल्कि तुम सब का खाली समय में कातना भी। मैंने लड़कों और पुरुषों को भी कातने के लिये सुझाया है। मैं जानता हूँ कि उनमें से हजारों प्रतिदिन कात रहे हैं। परन्तु कातने का विशेष भार, प्राचीन काल की भाँति तुम्हारे कन्धों पर होना चाहिये। दो सौ साल बीते जब यहाँ की स्त्रियाँ अपनी ही आवश्यकता के लिये नहीं बल्कि निर्यात के लिए भी कातती थी। वे मोटी खादी ही नहीं बल्कि संसार के अब तक के बारीक से बारीक सूत कातती थी। हमारे पूर्वज जितना महीन सूत कातते थे उतना महीन किसी मशीन ने नहीं काता है। तो यदि हम खादी की माँग की पूर्ति दो माह और उसके बाद करना चाहते हैं तो तुम्हें चाहिये कि खादी क्लब बनाओ कताई की प्रतियोगिता स्थापित करो और भारत की बाजारों में हाथ की कती हुई खादी की बाढ़ ला दो। इसके लिए तुम लोगों में से कुछ को कातने में तथा चरखा ठीक करने में सिद्धहस्त होना चाहिये। इसका अर्थ है लगातार परिश्रम। तुम कातने को रोजी का जरिया न

समझो। मध्यमवर्ग के लिये इसमे घर की आमदनी बढ़ सकता है और निस्सन्देह बहुत ग़रीब स्त्रियों को इससे रोज़ी भी मिलेगी। विधवा स्त्रियों के लिए तो चरखा एक प्रेमी-साथी की भाँति होनी चाहिये। परन्तु तुम्हारे लिए, जो इस अपील को पढ़ोगी, यह एक धर्म, कर्तव्य है। यदि भारत की सभी सम्पन्न स्त्रियाँ कुछ मात्रा में प्रतिदिन कातें तो सूत सस्ता हो जाय और अधिक से अधिक उत्तमता भी आ जाय।

इस प्रकार भारत की आर्थिक तथा नैतिक मुक्ति तुम्हारे ही हाथों में है, भारत का भविष्य तुम्हारे घुटनों पर है, क्योंकि आगामी पीढ़ी का पालन करोगी। तुम्हारे भारत की सन्तानों का सादा, ईश्वर से भय मानने वाली तथा बहादुर पुरुष और स्त्रियों के रूप में ला सकती हो। और कमज़ोर डरपोक तथा विदेश की बारीक और बहुमूल्य वस्तुओं का चाहने वाला भी बना सकती हो और अन्त में इस आदत का छूटना असम्भव ही होगा। आगे के कुछ सप्ताहों में पता चल जायगा कि भारत की स्त्रियां किस वस्तु की बनी हैं। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि तुम क्या पसन्द करोगी। तुम्हारे हाथों में, ऐसी गवर्नमेंट की अपेक्षा जो भारतवर्ष के साधनों को चूसती रही है और जिसका अब अपने में ही कुछ विश्वास नहीं रह गया है। भारत का भाग्य कहीं अधिक सुरक्षित है। हर स्त्रियों की सभा में मैं इस राष्ट्रीय प्रश्न के लिए शुभ आकाँक्षाएँ माँगता रहा हूँ और मैंने ऐसा केवल इसी विश्वास से किया है कि तुम पवित्र, सादी तथा दैवी हो और दूसरों को भी ये सब गुण दे सकती हो। अपनी शुभेच्छा की सफलता का निश्चय विदेशी वस्त्र बहिष्कार तथा खाली समय में लगातार देश के लिए कातकर कर सकती हो।

— — .

महिलाओं का कर्तव्य

कलकत्ते की स्त्रियों ने वहाँ के लोगों के लिये खादी बेचने के प्रयत्न से, रोड़े पैदा कर दिये हैं और अखबारों के एक तार मुताबिक वे गिरफ्तार भी कर ली गई है। इसमें आगामी प्रेसिडेन्ट (देशबन्धु सी० आर० दास) उनकी बिधवा बहन और उनकी भतीजी भी है। मुझे आशा थी कि प्रारम्भिक दशा में स्त्रियों को जेल जाने का गौरव न प्राप्त होगा। उन्हें उग्र सत्याग्रही नहीं बनना था, परन्तु बंगाल गवर्नमेंट ने पुरुषो और स्त्रियो में भेदभाव न करने के जोश में, तीन स्त्रियों को यह गौरव प्रदान किया है। मुझे आशा है कि सारा भारतवर्ष ... का सम्मान करेगा। भारत की स्त्रियों का स्वराज्य प्राप्त करने में उतना ही हाथ होना चाहिए जितना पुरुषों का सम्भवतः उस शान्त-युद्ध में वे पुरुषों की अपेक्षा मीलों आगे रह सकती हैं। हमें ज्ञात है कि वे पुरुषों की अपेक्षा धार्मिक उपासना के विषय में, कहीं श्रेष्ठ हैं। गौरव-पूर्ण सहनशीलता उनका चिन्ह हैं और जब कि बङ्गाल गवर्नमेंट ने उन्हें घसीट कर आग में ला खड़ा किया है तो मुझे आशा है कि, सारे देश की महिलायें इस चुनौती को स्वीकार करेंगी और अपने को संगठित करेगी। बहुत से पुरुषों के गिरफ़्तार हो जाने पर अपनी नीति की इज्जत रखने के लिये उनकी जगह भरने को स्त्रियाँ बाध्य थीं परन्तु अब उन्हें चाहिये कि पुरुषो के साथ साथ जीवन के उद्देश्य की कठिनाइयों को सहन करें। ईश्वर उनके सम्मान की रक्षा करेगा। जब. मानों पुरुषों पर व्यंग्य करने के नाते द्रौपदी की रक्षा उसके स्वभाविक संरक्षक न कर सके तो उसकी अपनी ही पवित्रता ने किया। और ऐसा सदा ही होगा। यहाँ तक कि जो शारीरिक रूप से सब से दुर्बल है वह भी अपनी इज्जत बचा सकता है। पुरुषों को स्त्रियों के बचाने में गौरव अनुभव करना चाहिये, परन्तु साथ ही

पुरुष की अनुपस्थिति में या पुरुष द्वारा उसकी रक्षा के पवित्र कर्तव्य के न पास न करने में अपने को असहाय न समझना चाहिये। जो मरना जानता है उसे अपने सम्मान की रक्षा में किसी प्रकार के भय की आशङ्का न होनी चाहिये।

मैं भारत की स्त्रियों को चाहता हूँ कि वे तुरन्त शान्तिपूर्वक उन लोगों का नाम इकट्ठा करें जो इस ज्वाला में कूदने को प्रस्तुत हैं। वे अपना नाम बङ्गाल की स्त्रियों को भेजें और बङ्गाल की स्त्रियाँ यह महसूस करें कि उनकी और दूसरी जगह की बहनें उनके उत्तम उदाहरण पर चलने को तैयार हैं। सम्भव है जेल-जीवन ग्रहण करने या इसके जो कुछ भी बर्ताव उनके साथ हो, उसे भुगतने के लिए बहुत सी स्त्रियाँ न आवें। परन्तु यदि राष्ट्र को पहली बार थोड़ी भी संख्या में स्त्रियाँ मिलेंगी तो उसके लिये लज्जा की बात न होगी।

स्त्रियों के हाथों स्वराज्य

अब चूँकि वर्किंग कमेटी ने कताई को सविनय अवज्ञा की एक अनिवार्य शर्त के रूप में मान लिया है। भारतवर्ष की स्त्रियों को देश सेवा का दुर्लभ अवसर मिला है। नमक सत्याग्रह के कारण वे हजारों की संख्या में चहारदीवारी से बाहर निकल आई थीं। उन्होंने दिखा दिया कि वे भी मर्दों के बराबर ही मुल्क के काम आ सकती हैं। उस मौके पर ग्रामीण स्त्रियों को वह गौरव मिला जो उन्हें पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ था। साम्राज्य के जुए से आज़ाद होने के लिए हिन्दुस्तान के शान्त आन्दोलन में कताई को फिर से अपना केन्द्रिय स्थान मिल जाने से यहाँ की स्त्रियों को एक ख़ास दर्जा हासिल हो जाता है। कताई में उन्हें पुरुषों की अपेक्षा स्वाभाविक सुविधा है।

अनादि काल से ही स्त्री और पुरुष के बीच श्रम विभाजन रहा है। हजरत आदम बुनते थे और हजरत हव्वा कातती थीं। यह भेद आज तक मौजूद है। कातने वाले पुरुष अपवाद स्वरूप हैं। जब मैं सन् १९२०-२१ में पंजाब के मर्दों से कातने को कहता था, तो वे जवाब दिया करते थे कि वह उनकी शान के खिलाफ है और औरतों का काम है। आज कल पुरुष गौरव के आधार पर आपत्ति नहीं करते। हजारों पुरुष ऐसे हैं जो यज्ञार्थ कातते हैं। जब से पुरुष देश सेवा की भावना से कातने लगे हैं तभी से कताई एक विज्ञान बना है। और उसमें भी दूसरे क्षेत्रों की तरह बहुत से आविष्कार हुए हैं। यह सब होते हुए भी अनुभव यही बताता है कि कताई स्त्री की विशेषता रहेगी। मैं मानता हूँ कि इस अनुभव का एक सबल कारण है। असल म कताई धीमी और एक दूसरों से शान्त क्रिया है। स्त्री त्याग की और इसीलिये अहिंसा की मूर्ति है इस कारण उसका काम युद्ध की अपेक्षा शान्ति के अधिक सहायक होना चाहिये। और है भी। अगर आज उसे हिंसात्मक युद्ध के कामों में घसीटा जा रहा है तो यह मौजूदा सभ्यता के लिए कोई शोभा की बात नहीं है। मुझे ज़रा भी शक नहीं है कि हिंसा स्त्री के लिये इतनी अशोभनीय चीज है कि वह बहुत जल्द अपनी मूल प्रवृति पर इस तरह बलात्कार किये जाने के विरुद्ध विद्रोह कर उठेगी। मुझे लगता है कि पुरुष भी अपनी इस मूर्खता पर पछतायेगा। स्त्री पुरुष की समानता का यह अर्थ नहीं है कि उनके काम भी एक से ही हों। स्त्री के शिकार खेलने या भाला चलाने पर कोई कानूनी रुकावट भले ही न हो परन्तु सहज ही उसे ऐसे काम से अरुचि होती है। जो मर्द के करने का है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को अलग अलग इसलिये बनाया है कि वे एक दूसरे के पूरक हों, उनकी आकृतियों के तरह उनके कार्य भी निश्चित कर दिये गये हैं।

लेकिन मेरे मतलब के लिए यह ज़रूरी नहीं कि स्त्री पुरुष के अलग-अलग काम होना साबित किया जाय। यह बात तो है ही और भारत में तो हर हालत में है—कि लाखों स्त्रियाँ कातने को अपना स्वाभाविक काम समझती हैं। वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव से पुरुषों का भार अपने आप स्त्रियों के कन्धों पर चला आया है। और उन्हें जौहर दिखाने का मौका मिला है। मुझे यह देख कर कितनी खुशी होगी कि मेरी भावी सेना में पुरुषों से स्त्रियाँ कहीं अधिक हैं। उस दशा में अगर लड़ाई आई तो मैं उसका बहुत अधिक आत्म-विश्वास के साथ स्वागत कर सकूँगा। पुरुषों की अधिकता हो तो यह निश्चिन्तता न होगी, मुझे उनकी हिंसा का डर रहेगा। यह कि स्त्रियाँ हिंसा में फूट पड़ने के विरुद्ध मेरी ढाल होंगी।

— —

'चरखा और स्त्रियाँ'

बिहार के खादी पर बोलते समय लोगों का ध्यान विभिन्न देशों में लोगों की प्रति दिन, प्रति-पुरुष आमदनी और आकर्षित करते हुए, गान्धी जी ने कहा —

देखो यह लम्बी लाल रेखा जो अमेरिका की आमदनी प्रति बताती है भारत की आमदनी वाली रेखा से कितनी बड़ी है। पहली १४ रुपया प्रतिदिन है और दूसरी १½ आना प्रतिदिन दूसरे देशों की आमदनी से मुकाबिला करो -- इङ्गलैंड, फ्रांस, जापान, जो क्रमानुसार ७ रुपया ६ रुपया और ५ रुपया प्रतिदिन है। और यहाँ का यह डेढ़ आना भी मध्यम है। यदि कुछ बैरिस्टरों करोड़पतियों, तनख्वाह वाले मन्त्रियों तथा कौंसिल वाले लोगों को छोड़कर कुछ लोगों की आमदनी इससे भी कम होगी। मैं पूर्ण विनम्रता से पूछता हूँ, इस थोड़ी आम-

दनी की पूर्ति का कोई तरीका बताओ। मैं सब से पूछता हूँ पर कोई सुझाव नहीं मिलता। बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करके करोड़ों लोगों के समर्थ में रहने के परिणाम स्वरूप मैंने सुझाया है कि चरखा ही ऐसा है जिससे यह आमदनी पूरी हो सकती है।

फिर उन्होंने खादी के उत्पादन और विक्रय का चार्ट लेकर विहार का बढ़ती हुई खादी की मात्रा तथा उसकी बिक्री की कमी की ओर ध्यान दिलाया।

इस उत्पादन का अर्थ है ३०००० रूपये का ३०००० विहार की निर्धन स्त्रियों में विभाजन। मेरे साथ दरभंगा के खादी केन्द्रों में आओ और देखो चरखे वे हिन्दू तथा मुसलमान स्त्रियों में कितना सुख और शान्ति भर दिया है। यदि इसे और लोगों को रोजगार नहीं मिलता तो यह मेरी नहीं तुम्हारी गलती है। यदि तुम्हें उनके हाथों की बनाई हुई चीज खरीदने का ध्यान नहीं है तो यह काम नहीं बढ़ सकता। तुम्हारे हर गज़ खद्दर खरीदने के उन स्त्रियों को कुछ पैसा मिलता है। कुछ ही पैसे ज्यादा नहीं। परन्तु इसका अर्थ जहाँ कुछ भी नहीं पहुँचता था, वहाँ कुछ पैसा पहुँचता है। मैंने बरीसाल और राजामाण्डी का पतित बहनों को देखा। एक युवती लड़की आई और बोली "गांधी, तुम्हारा चरखा हमें क्या दे सकता है? जो लोग हमारे यहाँ आते हैं वे कुछ मिनटों के लिए ५) से लेकर १०) तक देते हैं।" मैंने उनसे कहाँ, "चरखा तुम्हें उतना धन तो नहीं दे सकता, परन्तु यदि वे इस अपमान जनक कार्य को छोड़ दे तो मैं तुम्हें कातना और बुनना सिखा सकता हूँ और इस प्रकार सम्मान-पूर्वक अपनी रोजी पैदा करने में सहायता कर सकता हूँ।" उसकी बात सुनकर मेरा दिल बैठ गया और मैंने भगवान से कहा मैं भी स्त्री ही क्यों न पैदा हुआ। लेकिन अगर मैं स्त्री पैदा नहीं हुआ तो बन सकता हूँ और भारत की स्त्रियों के ही लिए जिनमें से बहुतों को

एक आना प्रतिदिन भी नहीं मिलता, मैं अपने चरखे और भिक्षा झोली लिए हुए देश भर में घूम रहा हूँ।

बुढ़ापे में जवानी का उत्साह

एक अंग्रेज बहन लिखती हैं!

मुझे आपसे एक प्यारी स्विज बुढ़िया की बात कहनी है। उसकी उम्र ७० वर्ष से भी अधिक है, पर फिर भी वह 'विलेनिव' के सामने अपना सारा समय चरखा चलाती और बुनती रहती है, मेरे पत्र के जवाब में वह (फ्रेंच भाषा) में लिखती है, जाड़े का आरम्भ काल है, बर्फ पड़ना शुरू हो गया है जो महीनों हमारे साथ रहेगा। और मुझे अब चरखे पर काम करने के लिए काफ़ी समय मिलता रहेगा। ५६ मिनट के दो टुकड़े तैयार करने के लिए मेरे पास कई दिन से फरमाइशें रखी हुई हैं। उन्हें तैयार करने के लिए मुझे ऐसे ही लम्बे समय की जरूरत थी। क्योंकि अब (७५ साल) की अवस्था में मैं जल्दी जल्दी थक जाया करती हूँ।" इस बूढ़ी माँ का जीवन संतुष्ट और शान्तिमय जीवन का एक बढ़िया से बढ़िया नमूना है जो कि प्रत्येक किसान का होना चाहिये। गरमी के मौसम में वह खेतों में काम करती है। हाँ, कभी कभी फ़ुरसत मिलने पर या बारिश आ जाने पर वह बीच बीच में चरखा या करघा भी चलाती रहती हैं। पर जाड़े में जब कि ज़मीन बरफ़ से ढक जाती है। वह सारा दिन यही कताई बुनाई करती है। आप उससे यह करघा और चरखा छुड़ा लीजिए और उसकी दशा बिगड़ी। पर इस उद्यम के कारण उस पहाड़ी के सब किसानों में वह सबसे अधिक सुखी और आनन्दी प्राणी है। क्यों? इसलिए कि उन सब में केवल उसीने इस पुराने

उद्यम को पकड़े रखा और इसलिये केवल उसी का जीवन सम्पूर्ण और सच्चा भी है। उसकी एक छोटी सी तसबीर मैं आपके पास भेजती हूँ।

एक लकड़ी के ठूंठ पर बैठी हुई वह अपने एक बकरे को प्यार कर रही है। इससे आपको उसके प्यारे, बूढ़े प्रसन्न चेहरे की कुछ कल्पना हो सकेगी। पास खड़ी हुई युवती उसकी पतोहू है।"

यह सुन्दर तसवीर मेरे पास है। पर मैं उसे यंगइंडिया में प्रकाशित नहीं कर सकता। तसबीर की न्यूनता को पाठक अपनी कल्पना से ही पूर्ण कर लेंगे। ध्यान देने की बात है कि यंत्रों के प्रभाव के नीचे दबे हुये उन पश्चिमी देशों में भी ऐसे लोग हैं, जो चरखे और करघे द्वारा जो कि एक समय प्रधान और सार्वभौम-गृहोद्योग थे, सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकते हैं और जब कि यह वृद्ध महिला इस ७५ वर्ष की अवस्था में भी इस उद्यम के कारण जवानी के उत्साह को अनुभव करती है और उससे केवल आजीविका ही नहीं बल्कि शान्ति भी प्राप्त कर रही है तब भला उस उद्यम की इस देश में कितनी अधिक आवश्यकता है जहाँ बिरली ही स्त्रियाँ ७५ वर्ष तक पहुँचती हैं। जहाँ अधिकांश बहनें ५८ वर्ष के अवस्था में ही जबरदस्ती बूढ़ी हो जाती हैं और जहाँ देश की करोड़ों बहनों को घर बैठे निर्दोष काम करके मिलने वाली शान्ति की ही नहीं बल्कि उस भूख के भेड़िये को भगाने के लिये ही किसी आजीविका की बेहद ज़रूरत है।

इस पर वह अज्ञानी निन्दक पूछता है, यदि ऐसा है तो वे भी क्यों नहीं उस प्यारी स्विज बुढ़िया की तरह चरखा चलातीं, और शान्ति को प्राप्त कर लेतीं, उन्हें यह करने से कौन रोकने जा रहा है?

१८८६ या ६० के करीब करीब इसी प्रकार का एक प्रश्न इहे कहे किन्तु असभ्य दिखाई देने वाले अँगरेज़ ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी से पूछा था। जब वे अँगरेज़ों की किसी सभा में व्याख्यान दे रहे थे। बाबू सुरेन्द्रनाथ से—बंगाल के तत्कालीन बे ताज के राजा से—उस भले आदमी ने जो कि जानबुल एन्ड कम्पनी का एक सदस्य था, पूछा कि यदि यह ठीक है कि भारत स्वाधीनता चाहता है तो उसे कौन रोक रहा है? यह कैसी बात है कि उन्होंने (शक्तिशाली जान-बुल कम्पनी के इतने सदस्यों में से किसी ने भी) सिर फूटव्वल की तो बात दूर रही, खिड़कियों का तोड़ फोड़ की तक की बात नहीं सुनी, जैसा की वे (सदस्य) अपने दिन की वस्तु न मिलने पर ऐसे मौकों पर किया करते हैं। जहाँ तक मुझे याद है अखबारों ने वक्ता के उत्तर को नहीं छापा है श्रोताओं के बीच से केवल 'क्या कहा'' ''क्या कहीं' की आवाज़ का उल्लेख है। किन्तु उस सच्चे अँगरेज़ ने सुरेन्द्रनाथ जी से जो सवाल किया था वही आज भी पूछा जा सकता है। और साथ ही यह भी हम जानते हैं कि यह सवाल स्वा-धीनता की पुकार का जवाब नहीं हो सकता। शायद हम स्वाधीनता की प्राप्ति के मार्ग को न भी जानते हों? या उसे जानकर भी उस पर अमल करने की हममें इच्छा या शक्ति ही न हो। फिर भी स्वा-धीनता की पुकार तो न्याय और स्वाभाविक ही है और चाहे वह कितनी ही नाकामयाब हो वह स्वाधीनता की पहली सीढ़ी तो ज़रूर है।

पर जब इन करोड़ों के भूखे मरने की बात कही जाती है तब ये अज्ञानी निन्दक इस बात को भूल जाते हैं कि वे करोड़ों गरीब तो काम या रोटी के लिए पुकार मचाना भी नहीं चाहते। इसीलिए तो अँग्रेज़ इतिहासकार के साथ साथ हम भी उन्हें 'गूँगे' कहते हैं। और इसीलिये हमें (और निन्दकों को भी) उनकी ओर से आवाज उठानी पड़ती है। हमें उन करोड़ों गूँगों को पहला पाठ पढ़ाना पड़

रहा है। और वे नहीं हम ही उनकी इन भयंकर गरीबी और अज्ञान के लिये जिम्मेदार हैं। वे तो बेचारे यह जानते भी नहीं कि उन्हें क्या चाहिये। क्योंकि वे जीते हुए भी मरे के समान हैं।

उन अस्पृश्यों से यह कहने की किसी में हिम्मत है, कि यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो ले लो, तुम्हें कौन रोकता है? परमात्मा बड़ा शान्तिशील और चिरसहिष्णु है। जालिम को वह उसकी कब्र खोदने देता है। हाँ, समय समय पर वह मृत्यु की चेतावनी बराबर दे दिया करता है।

हम कह सकते हैं, और न्यायपूर्वक कह सकते हैं कि यद्यपि उस अँगरेज़ का ताना सैद्धान्तिक दृष्टि से ठीक ही है। परन्तु अँग्रेजों के मुँह में यह प्रश्न शोभा नहीं दे सकता जब कि हम में से हर एक आदमी अपनी लाचारी को महसूस करते हुए भी स्वाधीनता को प्राप्त करने की अपनी स्वाभाविक इच्छा को प्रकट कर रहा है।

———

'एक बहन की कठिनाई'

एक बहन लिखती हैं :—

"साल भर हुए मैंने आपको हर एक के लिए खादी पहनने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए सुना था और फिर तै किया कि उस पर अमल किया जाय। लेकिन हम लोग गरीब हैं। मेरे पति कहते हैं कि खादी कीमती होती है। महाराष्ट्र में रहने के कारण मुझे ६ गज लम्बी साड़ी पहननी पड़ती है। यदि मैं अपनी साड़ी ६ गज से ६ गज लम्बी कर लूँ तो बहुत बचत होगी, पर बुजुर्ग लोग ऐसी बात सुनना भी नहीं पसन्द करेंगे। मैं उनसे वादविवाद करती हूँ

कि खादी पहनना सबसे महत्वपूर्ण है पहनने के ढङ्ग, और उसकी लम्बाई का कोई महत्व नहीं, परन्तु सब बेकार। वे कहते हैं मैं युवती होने के कारण इन नई विचारधारा को अपनाती हूँ। लेकिन मेरा ख्याल है कि यदि आप मेरे पास खादी पहनने पर जोर देते हुए (पहनने के ढङ्ग का विचार न करते हुए) लिखें, तो वे मान जायँगे।"

मैंने बहन को उत्तर भेज दिया है। लेकिन उस कठिनाई के के बारे में यहाँ कुछ लिख रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस प्रकार की कठिनाई बहुत सी और बहनें भी कर रही हैं। यह खत लेखिका की देशभक्ति का प्रभाव है क्योंकि बहुत सी ऐसी स्त्रियाँ नहीं है जो स्वयं पहनने के ढङ्ग को महत्व न देने की ओर रिवाजों के खिलाफ़ चलने के लिए कदम बढ़ायें, ऐसी बहनों और भाइयों की संख्या बहुत अधिक होगी की प्रसन्नतापूर्वक स्वराज्य हासिल करना चाहेंगे यदि वह बिना किसी प्रकार के कष्ट सहन किए या खर्च के और अपनी पुरानी प्रथाओं को मानते रहकर भी—चाहे वे उचित हों या नहीं—प्राप्त किया जा सके।

परन्तु स्वराज्य ऐसी सस्ती वस्तु नहीं है। स्वराज्य प्राप्त करने का अर्थ है अपने भीतर आत्म त्याग। प्रान्तीयता की भावना का त्याग करते हुए का अभ्यास है। प्रान्तीयता राष्ट्रीय स्वराज्य प्राप्त करने के ही मार्ग में बाधक नहीं, परन्तु प्रान्तीय राज्य के प्राप्त करने में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ऐसी भावनाओं के लिए अधिक जिम्मेदार हैं। वैविध किसी सीमा तक अच्छा है, लेकिन यदि सीमा पार कर जाय और संस्कार और प्रथायें विविधता के नाम पर प्रदर्शित किए जायँ तो वह राष्ट्रीयता को दमन करने वाला होगा।

दक्षिणी साड़ी एक सुन्दर वस्तु है परन्तु ऐसी सुन्दरता राष्ट्र का बलिदान करने से मिले, तो उसे समाप्त कर देना होगा। यदि पंजाब

आधी या छोटी साड़ी पहनने का कच्छ का ढङ्ग खादी को सस्ता बनावे और सब के लिए सुगम करें तो उसे ही कलात्मक समझना चाहिये। दक्षिणी, गुजराती, कच्छी, बंगाली सभी साड़ी पहनने के राष्ट्रीय ढङ्ग है और इनमें से हर एक उतनाही राष्ट्रीय है जितना दूसरा ऐसी दशा में जिस ढङ्ग में, शिष्टता का ध्यान रखते हुए, कम खादी लगे, उसे अच्छा समझना चाहिये। कच्छी ढङ्ग ऐसा है कि उसमें तीन ही गज़ कपड़ा लगता है जो गुजराती लम्बाई का लगभग आधा ही है। इस बात का ध्यान छोड़ दिया जाता है कितना कम भार ढोना पड़ता है। यदि पच्छेदों या पेटीकोट एक ही रंग के हों किसी के तुरन्त नहीं ज्ञात हो सकता कि केवल पच्छेदों है या पूरी सारी। ऐसे राष्ट्रीय ढंगों की अदला-बदली वांछनीय हैं।

सम्पाढ्य लोग अपने पास सभी प्रकार के प्रान्तीय ढङ्गों वाले कपड़े रख सकते हैं। यदि गुजराती लोग बङ्गाली अतिथियों का स्वागत बंगाली पोशाक में और बंगाली लोग गुजराती अतिथियों का स्वागत गुजराती पोशाक में करें, तो बड़ा अच्छा और राष्ट्रीय लगेगा परन्तु ऐसा केवल सनाढ्य राष्ट्रीयतावादी ही कर सकते हैं। गरीब और मध्यमवर्ग के राष्ट्रीयतावादी लोग, उसी प्रान्तीय ढङ्ग का प्रयोग करके गर्व का अनुभव कर सकते हैं जो सस्ता पड़े और खादी को सुगम बनाये। उसमें भी उन गरीब से गरीब आदमी के पहनने के ढङ्ग का ध्यान रखना चाहिए।

स्वदेशी का यह अर्थ यह नहीं कि अपनी ही गंदे तालाब में डूबे वरन् उसे समुद्र की शाखा बनाये, जिसे राष्ट्र कहा जाता है। यह तभी सम्भव है जब यह पवित्र रहे। अतएव ऐसे ही प्रान्तीय या स्थानीय रीतियों को राष्ट्र भर में विकसित करना चाहिए जो अपवित्र या अनैतिक न हों। और फिर ऐसा हो जाने पर पर राष्ट्रीयता मनुष्यता में परिवर्तित हो जाती है।

जो बात पहनावे के मामले में लागू है वही भाषा भोजन के भी विषय में। उचित अवसर पर जैसे हम दूसरे प्रान्तों के पहनावे ग्रहण कर सकते हैं उसी प्रकार भाषा का अन्य वस्तुएँ भी। परन्तु आज कल तो जान कर या वे जाने अँगरेजी को अपनी मातृ भाषा की अपेक्षा अधिक महत्व देने के निरर्थक विनाशकारी और असम्भव कार्य में तमाम शक्ति बर्बाद हो रहा है दूसरे प्रान्तों की भाषाओं की अपेक्षा तो अँगरेज़ी को कहीं अधिक महत्व दिया जाता है।

'तामिल स्त्रियों के विषय में'

तिरपती से एक बहन लिखती हैं :—

"मद्रास के अन्दोलन में सफलता सब से अधिक में बाधा डालने वाली स्त्रियाँ हैं। उनमें से बहुत सी प्रति क्रिया वादी हैं। और बड़ों घरों की बहुत सी ब्राह्मण स्त्रियाँ पश्चिमी दुगुर्णों का शिकार हो चुकी हैं। वे दिन में कम से कम तीन बार कॉफ़ी पीती है और इससे भी ज्यादा पीना फैशनेबुल समझती हैं। पहनावें के मामले में भी उनकी हैसियत इससे अच्छी नहीं। उन्होंने घरेलू सस्ते कपड़े पहनने छोड़ दिये हैं और क़ीमती बिदेशी कपड़े प्रयोग करती हैं। जवाहिरात के मामले में ब्राह्मण स्त्रियाँ सभी से आगे हैं। ब्रह्मणो में श्री वैष्णों सब से ज्यादा पाप करती हैं। जब कि पुरुष पवित्र जीवन ग्रहण करने का प्रयत्न कर रहे हैं हमारी स्त्रियाँ और भी ख़र्चीली होती जा रही हैं। पूजा के लिए मन्दिर जाते समय उन्हें सादी और सादे पहनावे का ख्याल नहीं हो I । वे अधिक से अधिक खर्चीले जवाहिरात और उससे भी खर्चीले क़ीते

इस्तमाल करती हैं । मैं ऐसी बहुत सी स्त्रियों को जानती हूँ जो केवल इसलिए मंदिर नहीं जातीं कि उनके पास वेश क़ीमती कपड़े और जवाहिरात नहीं हैं।

मुझे यह सोचने की इच्छा नहीं कि ऊपर लेखक ने जो लिखा है (जो स्वयं एक असहयोगी है वेष्णवी वकील हैं) वह पूर्ण रूप से सत्य है, मैं ऐसा मानने को तैयार नहीं कि तामिल स्त्रियाँ औरों की अपेक्षा तड़क भड़क पसन्द करने में आगे हैं। फिर भी यह पत्र तामिल स्त्रियों के लिए एक चेतावनी होना चाहिए। उन्हें चाहिए कि प्राचीन सादगी की ओर चलें और निश्चय ही ईश्वर तड़क भड़क के पहनावें वाली स्त्रियों की अपेक्षा उनसे अधिक प्रसन्न होगा जो आन्तरिक पवित्रता के द्योतक रुप से पवित्र खादी की सारी पहनेगीं । हमारे मदिर दिखावे के लिए नहीं हैं, बल्कि सादगी और विनम्रता प्रदर्शित करने के लिए जो उपासना की भावना प्रकट करते हैं। मद्रास प्रेसीडेन्सी में स्त्रियों के बीच लगातार जिस बुराई की शिकायत की गई है उसके बारे में प्रचार होना चाहिए।

'तामिल बहनों के विषय में और'

एक दक्षिणी भारत के वकील ने मुझे लिखा है : —

"तामिल में खादी का उतना प्रचार नहीं जितना और जगहों में है, क्योंकि वहाँ की स्त्रियाँ खादी नही पहनतीं ; इसी लिए चर्खा भी अधिक नहीं दिखाई देता। वहाँ विवाहित स्त्रियाँ सादे सफेद कपड़े पहन नहीं सकती। वे सिर्फ़ रंगी हुई साड़ियाँ ही पहन सकती

हैं। प्राचीन काल में स्त्रियाँ सूती ही कपड़े पहनती थी। और उन सब से ग़रीब लोगों को छोड़ कर, वे सूती साड़ी से नफ़रत करती हैं और सिल्क की साड़ी पहनती हैं। पहले तो कोरानाडू में सिल्क की साड़ियाँ बनता था, और फिर काँजी वरम में भी और वे भारतीय रंग में रंगी जाती थीं। उनका मूल्य १० से ३०, तक होता था। उनका कभी कभी प्रयोग होता था। बाद में बंगलौर की साड़ियाँ जो अँगरेज़ी या जर्मन रंगों से रंगी जाती हैं सारे बज़ारों में छा गईं जिनकी कम से कम क़ीमत ५०) होती है इसकी वजह ब्राह्मण गृहस्थों को बड़ी परेशानी है क्योंकि घर के सभी परिवारों के पहनने के लिये यही लेना पड़ता है, और रोज़ाना यही पहनने के लिए ता कई एक साड़ियाँ खरीदनी पड़ती है। शादी के मौके पर भेंट करने के लिए उपयुक्त साड़ी का दाम कम से कम १००) तक पहुँच जाता है। ख़ास कर इसी कारण बहुत से घर मिट जाते हैं। और यह विनाशकारी रोग जो ब्राह्मणों तक ही सीमित था अब और जातियों में भी फैल गया है।

खर्चे के अलावा दूसरा भी दृष्टिकोण है आराम और सहूलियत का सिल्क न सोखने वाला और भारी कपड़ा है, इससे पहन कर खाना बनाना या काम करना मौत ही का सामना है। यहाँ पर एक या दो महीनों का छोड़ कर सदा गर्मी रहती है और क़ीमती साड़ियों को ज्यादा धोया भी नहीं जाता है क्योंकि इससे उनका रंग ख़राब हो जाता है और वे सिकुड़ भी जाती है। पसीने और उसकी बदबू तो भयानक होती है।

बहुत से घर जो बरबादी के करीब हैं, आपके बड़े अनुग्रहीत होंगे यदि आप लोगों को सादगी, आराम और मितव्ययता की ओर ले जाँय।"

मैं सम्वाददाता से सहमत हूँ कि तामिल स्त्रियाँ अपनी सिल्क की साड़ी को जरूरत से ज्यादा चाहती हैं। मद्रास जैसी गर्म जलवायु वाले प्रान्त के लिए सिल्क से अधिक हानिकारक कोई वस्त्र नहीं है। और भारतवर्ष जैसे गरीब देश के लिए १००) की साड़ी व्यय करना एक अपराध है। पुरुष उनसे अच्छे नहीं। वे हाथ के बुने हुए कपड़ों (पगड़ी धोती और उपर्ण) पर गर्व करते हैं और यह नहीं सोचते कि जो सूत इसमें लगता है वह सारा का सारा विदेशी होता है। लोगों को अजनबी मालूम होगा पर खादी जो शोषक होता है, उन वस्त्रों की अपेक्षा जिसे लोग इतना पसन्द करते हैं, कहीं ठण्डी होती है। मेरी आशा है कि मेरी तामिल नैतिकता की उच्च धारणा स्वदेशी के कठिन विषय में भी फलीभूत होगी और लोग विदेशी वस्त्रों को पूर्ण बाहिष्कार की नैतिक आवश्यकता को समझेंगे और चरखे को अपनाएँगे। मद्रास और आन्ध्र के धूप से पिघलते हुए मैदानों में. चरखा संचालन से अधिक उपयुक्त कोई व्यवसाय की कल्पना नहीं का जा सकती। द्रविड़ प्रदेश से बहुत से लोगों को बाहर जाना पड़ता है और बहुत से लोग निर्धन भी हो गए हैं। चरखे के आ जाने से यह बन्द हो जायगा। यदि कुछ भी लागत न हो तो भी भारत के गरीब किसानों का पालन केवल खेती नहीं कर सकती है।

'एक सुन्दर सेविका इस संसार से उठ गई'

सन १६२१ में वेजवाड़ा की एक बड़ी स्त्रियों की सभा में मैंने अकेले खद्दर पहने एक लड़की देखी थी, जो सभा का संरक्षण कर रही थी, शान्ति स्थापित कर रही थी और बड़ी दृढ़ता पूर्वक इधर

उधर आ जा रही थी। सबसे पहले उसीने अपने सभी जेवरात, कंकण, एक भारी सोने का हार दिए थे। "तुमने अपने माँ-बाप की आज्ञा ले ली है?" मैंने पूछा जब कि वह अपने ज़ेवरात मुझे दे रहीथी। उसने उत्तर दिया, "मेरे माता-पिता मुझे नहीं रोकते और मैं जैसा चाहती हूँ, वैसा करने देते हैं।" अन्तपूर्ण देवी अँगरेज़ी खूब बोल लेती थी। उसे वे थ्युन कालेज कलकत्ता में शिक्षा मिली थी। स्त्रियों की उस बड़ी सभा में वह घूमती थी और चन्दे और ज़ेवरात ले आती थी। उस समय से लगातार वह इस आन्दोलन मे थी बल्कि उसने अपने को इसीलिए समर्पित कर दिया था। को कोनाडा की स्त्री स्वयं सेविकाओं की वह कमांडर थी, और उसके आश्चर्यजनक कार्यों को लोगों ने बड़े महत्वपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। अभाग्यवश वह इस समय अच्छे स्वास्थ्य में न थी उसका विवाह श्रीयुत मगुन्ती बापी नीडू बा० एस० सी० से हुई थी। कोयम्बटूर में यकायक उसके देहान्त के कई दिनों बाद मुझे एक तार मिला कि वह इस ससार से चल बसी थी। और इस आ० नीडू का एक पत्र भी मिला है जिसमें से ये उद्धरण मैं दे रहा हूँ:—

'आखिर में जिसकी सम्भावना थी, यह घटना घटी है। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मेरा पहला पत्र आप के पास आपके विशेष...... कार्यकर्ता और मेरे साथी अन्नपूर्णा असामयिक मृत्यु का दुखद समाचार लेकर पहुँच रहा है। आपके आखिरी मद्रास भ्रमण के दौरान में हम लोग जब श्री निवास ऐंगर के घर पर आपसे मिलने गये थे, तो (मुझे अच्छी तरह याद है) आपने मुझसे उसके स्वास्थ्य के विषय में बताते रहने को कहा था। और उसे दवा कराने के लिये अहमदाबाद भेजने की सलाह दिया था। लेकिन मैं उसके स्वास्थ्य के विषय में आपको चिन्तित करना नहीं चाहता था। आपने हम लोगों को जो सलाह दी थी। (मेरे लिए उसका सुन्दर

सेवक होना, उसके लिए अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखना और साहस रखना) उसे हम निरन्तर पालन करते रहे। जो भी मनुष्य के लिए सम्भव है, मैंने किया परन्तु व्यर्थ!

"उसके देहान्त में आपके असहयोग आन्दोलन का एक विशेष ह्रास है। उसने अपना सब कुछ बेश कीमती वस्तुयें यहाँ तक कि वह अँगूठी जो मैंने उसे विवाह में दी थी—शादी की सम्पति, सुन्दर वस्त्र, तड़कीली-भड़कीली आदतें, साहित्यिक रुचियाँ, स्वास्थ्य और अब अपना जीवन भी देश को समर्पित कर दिया।

"उसका आप में जो अनन्त विश्वास था, उसी के कारण वह आपके स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करती रही। आपकी असंतुलित फलों की ख़ूराक से, जिसे वह ६ महीने धार्मिक रूप से सेवन करती रही, उसकी सुन्दर शारीरिक गठन गिरने लगी और फिर कभी ठीक न हो सकी।

"महात्मा जी, मैं इतना निर्दयी नहीं कि आप के ऊपर दोषारोपण कर रहा हूँ मैं तो एक बात कह रहा हूँ। एन० सी० ओ० आन्दोलन में प्रचार का कार्य करने में ही उसका ध्यान स्वास्थ्य की ओर से हट गया था। उसने अपनी गलती जानी, परन्तु तब काफी देर हो चुकी थी, जिससे उसे अपने प्राण देने पड़े। आपने उसे एक खत में लिखा था।" "मैं सदा जानता था कि खद्दर प्रचार के लिए तुम बड़े चाव से काम करोगी।" मेरे संयुक्त-राष्ट्र से वापस आने पर मेरे पैरों पड़ कर उसने सबसे पहली प्रार्थना मेरे खद्दर पहनने के लिये की। अपने सूट, कमीज, निकर, तथा अन्य विदेशी वस्त्रों को मैं नहीं अपना सकता था। मुझे इतनी भीआशा न थी कि उन्हें एलोर में अपने घर में रहने दूँ। अमरीका के एक पत्र में उसने विदेशी वस्त्रों के बाहिष्कार करने की तथा आजीवन खद्दर पहनने की प्रतिज्ञा का जिक्र किया था। उसे सफलता भी मिली। आधी प्रतिज्ञा

का पालन अब मेरे लिए है। जब वह चमड़े और शरीर तक ही रह गई थी और उसे मोटी खद्दर की साड़ी से बड़ा कष्ट हो रहा था, तब भी उसने खद्दर न छोड़ा। सौभाग्य वश उसकी अन्त्येष्ठि क्रिया भी खद्दर में ही लपेट कर की गई (जैसा कि हमारी जाति का रिवाज है) । सम्भवतः वह दूसरे लोक में भी इसका प्रचार करना चाहती थी।

"जब मैं अमेरिका जा रहा था तो उसने मुझसे कहा था, "आप चाहें मुझे भूल जाँय लेकिन अपने देश को न भूलिएगा।" यदि वह अपने भयङ्कर रोग से अच्छा होना चाहती थी तो अपने देश की सेवा के लिए, अपने पति की सेवा के लिए नहीं। यही लक्ष्य था जिसके बल पर, हम लोगों के निराश हो जाने पर भी वह महीनों जीती रही। अन्त तक उसे आशा थी। आखिरी क्षण में भी ('इन्जेक्शन' से होश आने पर) वह डाक्टर को चुनौती देती रही कि वह बच जायगी, किसी भी दशा में न मरेगी। वह देश पर मरने के लिए जीवित रही और जीवित रहने के लिए मरी।

"हम चाहते हैं उसने जो कुछ स्त्रियों पर लिखा है, रामकृष्ण के उपदेशों का बंगला से अनुवाद तथा उसके कुछ पत्रों को उचित प्रकाशन मिले।

"हमारा छोटा सा झाँसी, शहर ही जो झाँसी की लक्ष्मी बाई की याद दिलाता है, हमारी शेष आशा और सहलाव का साधन है। वह सोचती थी कि वहाँ जाने से उसे विशेष स्वास्थ्य परिवर्तन होगा, और हुआ भी पर उसके देहावसान के रूप में।

"आपकी ऐसी शिष्या न रही और मेरी ऐसी आदर्श संगिनी। मेरी अर्धाङ्गिनी ने मुझे शोक ग्रसित निराश और वियोगी छोड़ दिया और उसकी कमी कभी पूर्ण नहीं हो सकती।"

इसमें सन्देह नहीं कि मेरा एक भक्त-शिष्या से कहीं बड़ा ह्रास हुआ है। मुझे भारतवर्ष भर में जिन पुत्रियों पर अधिकार का सौभाग्य प्राप्त है, उनमें से एक न रही, ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ। और वह इनमें से श्रेष्टतम पुत्रियों में से एक थी। वह कभी अपने विश्वास से न डिगी, और परितोषिक अथवा प्रशंसा की आशा किये बिना कार्य करती रही। मैं चाहता हूँ कि बहुत सी पत्नियाँ अपनी पवित्रता और एकाग्र भक्ति से असने पतियों पर वैसे ही अधिकार स्थापित करेंगी जैसी अन्नपूर्णा ने किया था। उन्होंने जो उलाहना, देश के लिए सेवा करने में अन्नपूर्णा के अपने प्राण अर्पण करने के वास्ते मुझे दी है, उसे मैं पसन्द करता हूँ। मुझे सन्देह नहीं कि पूर्व इसके कि भारत-वर्ष फिर पुरातन काल की भाँति, जैसा करोड़ों लोग विश्वास करते हैं पवित्र और स्वतंत्र हो, बहुत से युवक पुरुषों और स्त्रियों को इसका अनुकरण करना होगा और अपने प्राण समर्पित करना पड़ेगा।

'स्त्रियाँ और जवाहिरात'

एक तामिल स्त्री डाक्टर ने एक पत्र और भेंट भेजी है, जिसका जिक्र उस खत में आया है। वह पत्र भेंट का महत्व बढ़ाती हैं और दूसरों के लिए उदाहरण का काम दे सकता है मैं संक्षेप में नीचे इसे लिख रहा हूँ. (समर्पण करने वाले, राज और स्थान का नाम छोड़ दे रहा हूँ।)

"कुछ पंक्तियाँ आपके पास यह बताने के लिए लिख रही हूँ कि मैंने हीरे की अँगूठी और एक जोड़ी 'इयररिङ्ग' जो १२ वर्ष पहले मुझे राज कुमार की उत्पत्ति के अवसर पर राजा से मिली थी, का पार्सल भेजा है। मुझे यह जानकर बड़ा दुख हुआ कि राजक

का उसी स्थान से गुज़रते होने पर भी आपको बुलाने का साहस न हुआ मुझे पता चला कि ऐसा गवर्नमेंट के डर से हुआ। आप सोच सकते हैं जब आप के जाने के बाद उन जवाहिरातों को जो मेरे साथ रहे थे, देखकर मेरे हृदय में कैसी भावनायें उत्पन्न हुई होंगी। उन्हें देखकर मेरा जी गुस्से से भर गया और फिर वह गुस्सा लाखों भूखी जनता के प्रति सहानुभूति में परिवर्तित, जिनके विषय में यहाँ आप बोले थे। मैंने अपने से कहा, 'क्या ये जवाहिरात गरीबों के कैसे नहीं बने हैं? मुझे इन्हें अपने पास रखने का कौन अधिकार है? फिर मैंने उन्हें आप के पास भेज देने का निश्चय किया। आप उन्हें खादी के लिए प्रयोग कर सकते हैं जो मेरे बक्स के कोने में पड़े रहने के अपेक्षा कहीं उत्तम उपयोग है। एक मित्र ने उनका मूल्य ५,००) लगाया है इस लिए उनकी उतने की बीमा की गई है। मुझे आशा है कि परिस्थिति में ये आपके पास भेजे गए हैं, उन्हें जान कर कोई सज्जन और अधिक मूल्य देंगे। इस पत्र को आप जैसा चाहें वैसा उपयोग करें।

जहाँ भय का कोई कारण न हो वहाँ भी हमारे भीतर भय की कैसी कल्पना होती है, यह बड़ी विचित्र बात है। बहुत से राजा ऐसे हैं जिन्होंने खुले आम और स्वेच्छा से खादी का समर्थन किया है। और इस प्रकार उन गरीबों के भी मसले पर भी ज़ोर दिया है जिनसे उन्हें अपनी सम्पत्ति मिली है। इसमें सन्देह नहीं कि खादी का राजनैतिक महत्व है परन्तु हम ऐसी दशा में कभी नहीं पहुँचे हैं कि गवर्नमेंट आसानी से उसे गैर कानूनी घोषित कर दे। हर मनुष्य का भला चाहने वाला आन्दोलन राजनैतिक रूप में लाया जा सकता है, लेकिन उस दशा में भी भला चाहने वाले रूप का बहिष्कार हो तो बड़े दुःख की बात होगी। यह भी सत्य है कि केवल यही ऐसे राजा नहीं जो खादी का समर्थन करने और मेरे

जैसे जनता के सेवक के प्रति उदारता प्रदर्शन करने से डरते हो। यह भी अच्छा है कि राजा द्वारा किए गए मेरे बाहिष्कार से यह भेंट मिली। किन्तु मैं चाहता हूँ कि जो बहनें मेरे इस लेख को पढ़े वे यह अनुभव करें कि दान करने वाली इस स्त्री को अलग रखना ज़रूरी नहीं है क्योंकि इससे उसको इस बात का मौक़ा मिलता है कि भूखों मरने वाले लाखों मनुष्यों के प्रति अपने कर्तव्य का वह अनुभव कर सके बिलकुल साफ है कि जब तक बेकारी के कारण लाखों आदमी और औरतें भूख से मरते रहेंगे, बहनों को कोई अधिकार नहीं कि अपने शरीर के सजाने के लिए या सिर्फ अभिकार के ही लिए बहुमूल्य जवाहिरात का प्रयोग करें। यदि भारत की केवल सम्पन्न स्त्रियाँ ही सभी तड़कीली भड़कीला सजावट छोड़ कर खादी का प्रयोग करने लगें तो उन्हीं से खादी आन्दोलन की धन की अवश्यकता पूर्ण हो सकती है। मैं उस नैतिक परिणाम की बात नहीं कह रहा हूँ जो भारत की धनी स्त्रियों का यह क़दम, राष्ट्र या भूखी जमता पर डालेगा।

स्त्री और आभूषण

एक अख़बार में इस बात की कड़ी टीका की गई है कि मैं जहाँ तहाँ स्त्रियों से जेवर इत्यादि भेंट करने की अपील करता हूँ और इस प्रकार दान में मिली चीज़ों का नीलाम कर देता हूँ। वास्तव में, मैं तो यह पसन्द करूँगा, कि सभाओं में उपस्थित होने वाली हजारों बहनें, अगर सारा नहीं तो अपना ज्यादा से ज्यादा जेवर उतार कर मुझे दे दें। इस देश में जहाँ करोड़ों आदमी पेट की ज्वाला से जल रहे हैं, अधभूखे रहते हैं, जहाँ लग-

भग ८० फी सैकड़ा लोगों को यथेस्ट पुष्टिकर भोजन नसीब नहीं होता, वहाँ आभूषणों का पहनना आँखों को एक अपराध की तरह खटकता है। भारत में स्त्री के पास ऐसी नकद सम्पति बहुत ही कम होती है जिसे वह अपनी कह सके, जो आभूषण वह पहनती है उसके कहे तो जाते हैं पर उन्हें भी वह अपने स्वामी के अनुमति के बिना दे नहीं सकती उसे देने का साहस ही नहीं पड़ता। एक उत्तम कार्य के निमित्त अपनी खास चीज़ का दान उसे ऊँचा उठा देता है। इसके अलावा अधिकतर यह आभूषण कला विहीन ही होते हैं कुछ तो निश्चय ही भद्दे और मैल भरने वाले होते हैं बड़े गले की भारी भारी हंसलियाँ, सिर के आभूषण और पहुँची से लेकर कुहनी तक चूड़ियों पर चूड़ियाँ, ऐसे ही गहने हैं। सिर के आभूषण बालों को संवारने के लिए नहीं, बल्कि उलझे पुलझे बिना धुले और बहुधा बदबू मारते हुए बालों के शृंगार के लिए ही वे पहने जाते हैं मेरी राय में कीमती गहने पहनने से देश को साफ़ ही नुकसान पहुँचता है। इन गहनों से मुल्क की भारी पूँजी रुक जाती है। या इससे भी खराब बात यह होती है। कि यह पूँजी दिन दिन कम होती चली जाती है। मेरा मत है, कि आत्म शुद्धि के इस अन्दोलन मे स्त्री या पुरुष के आभूषण दान से देश का स्पष्ट ही हित होता है। जो बहनें गहने देती हैं वे राजी खुशी से ही देती हैं। मेरी यह शर्त अवश्य रहती है कि जो आभूषण दान कर दें वह फिर न बनवाया जाय। वास्तव में बहनो ने मुझे आशीर्वाद दिया है कि मैंने उन्हें उन व्यर्थ की चीज़ों से छुटकारा दिला दिया। जिन्होंने उन्हें गुलाम बना रखा था। और बहुत से पुरुषों ने भी मुझे धन्यवाद दिया है कि उनके घरों में सादगी लाने का मैं एक साधन रहा हूँ।

'सिंहाली स्त्रियों से'

सिंहाली स्त्रियों की एक सभा में गांधी जी ने भारत के लाखों भूखे लोगों के विषय में कहा :—

"जब महेन्द्र लङ्का आए थे तो आत्मिक या शरीरिक रूप से मातृभूमि की सन्ताने भूखी नहीं थीं, उस समय हमारा सितारा बुलन्दी पर था और तुम लोगों ने भी उस गौरव में भाग लिया था। आज वे भूखों मर रहे हैं और उन्हीं की ओर से मैं अपनी भिक्षा की झोली लेकर यहाँ आया हूँ। और अगर तुम अपने को उनसे अलग नहीं मानते, बल्कि उनसे सम्बन्ध स्थापित करने में गौरव अनुभव करते हो तो तुम मुझे केवल अपना धन ही नहीं, बल्कि जेवरात भी दो जैसा कि और जगहों में बहनों ने किया। जब मैं बहनों को ज़ेवर से लदी हुई देखता हूँ तो मेरी भूखी आँखें उन पर गौर से देखती हैं। और उनके ज़ेवरात माँगने में मेरा एक अलग उद्देश्य है कि उन्हें जेवरों के पीछे पागल होने के रोग से बचाऊँ। मैं जैसी आजादी के साथ और बहनों से व्यवहार करता हूँ वैसे ही तुम से पूछता हूँ, 'वह कौन सी चीज़ है जिसे स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अपने को अधिक सजाती है?" मेरे कुछ महिला मित्रों का कहना है कि वे ऐसा पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए करती हैं-तो मैं तुम से कहता हूँ, यदि तुम संसार में कुछ करना चाहती हो तो पुरुषों के प्रसन्न करने के लिये अपने को सजाना छोड़ दो। अगर मैं स्त्री होता तो पुरुष के किसी भी ऐसे विचार के विरुद्ध जो स्त्री को अपना खिलौना समझे आवाज उठाता। बौद्धिक रूप से तुम्हारे दिलों में पहुँचने के लिए मैं स्त्री हो गया हूँ। अपनी स्त्री के प्रति मैं जैसा व्यवहार करता रहा था, उसके विरुद्ध व्यवहार करने का जब तक निश्चय नहीं किया, मैं उसके दिल में नहीं पहुँच पाया। अतः मैंने

पति होने के कारण जो अधिकार अपने बश में कर रखे थे, छोड़ दिए और उसे उसके सारे अधिकार दे दिए। और आज तुम उसे वैसा ही सरल और सादा देखती हो जैसा मुझे। उसके शरीर पर कोई हार या बहुमूल्य वस्तु नहीं है। मैं तुम्हे भी उसी प्रकार होना चाहता हूँ। अपनी भक्त या भावनाओं के गुलाम मत बनो और न पुरुषों के ही। अपने को मत सजाओ और सुगंधित वस्तुओं तथा 'लेवेडन्र' इत्यादि का खरीदना छोड़ दो। यदि तुम्हें सच्ची सुगन्ध की चाह है तो अपने हृदय में सुगन्ध उत्पन्न करो और फिर मनुष्य नहीं, मनुष्यता तुम से प्रसन्न होगी। वह तुम्हारा जन्म सिद्ध अधिकार है। पुरुष स्त्री से उत्पन्न हुआ है। वह उसके मांस से अपना मांस उसकी हड्डियो से अपनी हड्डियाँ पाता है। तुम अपनी स्थिति को पहचानो और फिर अपना सन्देश दो।

इसके पश्चात् गांधी जी ने उनके सामने सीता की पतिव्रता का उदाहरण रखा और मिस श्लेसिन की कहानी बताई जिन्होंने अपनी पतिव्रता और निर्भीकता के बल से दक्षिणी अफ्रीका में (पठानों, डाकुओं और संदिग्ध चरित्र वाले लोगों को मिलाकर) हजारों को सुसज्जित और संगठित किया था और अन्त में यह बताया कि सच्चा समान किसमें है।

तुम्हें सत्य है खेतों और बगीचों में काम करने वाली तुम्हारी बहनों की कैसी भयानक अवस्था है? उन्हें अपनी बहन की जान कर उनके बीच में जाओ और अपनी स्वास्थ्य तथा सफाई के ज्ञान से उनकी सेवा करो। ऐसा समझो कि तुम्हारा गौरव उनकी सेवा में है और क्या सेवा का कार्य तुम्हारे निकट नहीं है। ऐसे लोग हैं जो गुण्डे हैं, पीने वाले जो समाज के लिए घातक हैं। उनके बीच में निर्भीकता पूर्वक जाओ और उनकी बुरी आदतें दूर करो जिस प्रकार 'मुक्ति-सेना' की कुछ लड़कियाँ चोरों, गुण्डों, जुआड़ियों

और मन्दरों की गुफाओं में जाकर उनके पैरों पड़ती है और अपने नाना प्रकार के यत्नों से उन्हें ठीक रास्ते पर लाती हैं। इस प्रकार की सेवा तुम्हारे जेवरों और बहुमूल्य वस्त्रों की अपेक्षा अधिक सुसज्जित करेगा। फिर तुम जो रुपया बचाओगी और गरीबों में बाँटोगी मैं उसका संरक्षक बनूँगा।

मेरी प्रार्थना है कि मेरा यह सन्देश तुम्हारे हृदय में अपना स्थान बनाए।

'विश्चित त्याग करो'

गाँधी जी के हरिजन दौरे के दरमियान मद्रास में उनके हस्ताक्षर के लिए एक लड़की ५) का एक नोट दिया।

गाँधी जी ने कहा, "नहीं एक कंकण।" उस लड़की ने अपने दोनों कंकण उतार डाले और ५) का नोट भी दिया।

गाँधी जी ने पूछा "क्या इसे देने के लिए तुमने अपने माँ बाप की आज्ञा ले ली है? अगर तुम चाहो तो अपने कंकण ले लो।" लड़की ने यह कह कर कि उसे वह निशानी के रूप में रखेगी, एक ले लिया।

"क्या तुम अपने माँ बाप से नया कंकण नहीं माँगोगी?"

लड़की ने दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया "नहीं"।

'तो मुझे ले जाने दो' और लड़की मुस्कराती हुई चली गई।

एक दूसरी लड़की ने कहा 'बिना अपने पिता आज्ञा के मैं कोई वस्तु कैसे दूँ?

"नहीं देना चाहिए, परन्तु क्या तुम्हारे पिता स्वयं सारी स्वतंत्रता का उपयोग करते हैं, तुम्हें नहीं देते?'

एक नव विवाहिता लड़की ने कहा, "मैं आपको रुपया दूँगी, परन्तु अपने जेवरात नहीं क्योंकि यदि कोई जेवर दूँ तो निश्चय ही उसकी जगह दूसरा मिल जायगा जो कि आप न पसन्द करेंगे। मैं अपने जेवरात तभी दूँगी, जब हमेशा के लिए उनसे अलग हो सकूँ।"

"तुम ठीक कहती हो, मैं तुम्हारा रुपया नहीं चाहता। रुपया तो तुम्हारे बाप से पा सकता हूँ तुमसे तो जेवर ही लेना चाहता हूँ। और शर्त यह है कि उनकी जगह दूसरे न आए। मैं शान्ति पूर्वक उस दिन की प्रतिक्षा करूँगा जब तुम स्वयं आकर मेरे हाथों म उन्हें रख दोगी?"

विजगापट्टम में स्त्रियों से त्याग करने के लिए जो शब्द कहे थे, वे विशेष गम्भीर भावनाओं से पूर्ण थे। उन्होंने कहा :—

"हरिजन का प्रश्न आग है। आग में जितना भी घी डालो, उतना ही और उतना ही और चाहती है। इसी प्रकार इस कार्य के लिए जितना ही दो, उतना ही और चाहिए। जो इसके लिये देते हैं, वे लाभ उठाते हैं उनकी हानि नही होती। और जो नहीं देते वे, हारते हैं। देने से तुम्हें यश मिलता है। और न देने से तुम अपने को ही खोती हो। क्योंकि युगों से सवर्ण हिन्दू हरिजनों को दबाते चले आए हैं और अब यदि हमारे बुरे दिन आए है तो हरिजनों के प्रति किया गया व्यवहार इसके लिये छोटा कारण नहीं है, यह मेरा विश्वास है। इसलिए भारत की स्त्रियों से मैं इस अछूत के भूत को अपने हृदय से निकाल भगाने को कहता हूँ। यह गलत है। पाप है कि हम कुछ लोगों को अपने से नीचा समझें। भगवान को धरती पर कोई ऊँचा नीचा नहीं है। हम सब उसी के प्राणी हैं, और जिस प्रकार माँ बाप की निगाह में सभी बच्चे समान होते हैं, उसी प्रकार ईश्वर की आँखों में सभी [illegible]

अवश्य समाप्त होगी । इसलिए मैं कहता हूँ कि मेरे कथन में विश्वास करो कि धर्म में अछूत के लिए कोई समर्थन नहीं । इसलिए मैं कहता हूँ, अपने पास के हरिजनों को अपने हृदय में जगह दो अपने घरों में हरिजन बच्चों का स्वागत करो । हरिजनों के घर में जाओ, उनकी देखरेख करो, और हरिजन स्त्रियों से अपनी बहनों की तरह बात चीत करो ।

यह हरिजनों का प्रश्न विशेष कर भारत की स्त्रियों के लिए है, मुझे आशा है कि तुम इस स्थान की हिन्दू स्त्रियाँ, अपना कर्तव्य करोगी । मैं आशा करता हूँ कि तुम में से जो अंशत या पूर्ण रूप से अपने जेवर देना चाहें, देंगी । अगर तुम कोई भी चीज दो तो उसकी जगह दूसरी न लेना चाहिए । मैं चाहता हूँ तुम स्वयं व्यक्तिगत रूप से अनुभव करो कि तुमने इस काम के लिए कुछ दिया है जो रुपया या नोट से नहीं कर सकती क्योंकि वे तुम्हें माँ बाप से या पति से मिलते हैं । परन्तु ज़ेवर तुम्हारी अपनी सम्पत्ति है । जब तुम बिना दूसरा लेने की इच्छा के अपने ज़ेवर मुझे देती हो तो यह निश्चित रूप से तुम्हारा निजी त्याग है । तुम में से जिन्होंने मेरे सन्देश का भाव समझ लिया है, मैं चाहता हूँ कि वे ऐसा निश्चित त्याग करें ।”

‘स्त्रियों का सच्चा आभूषण’

हरिजन दौरे में मैसूर की एक सभा में गाँधी जी ने कहा :—

‘स्त्री का सच्चा आभूषण उसका चरित्र है । धातु और पत्थर कभी सच्चे आभूषण नहीं हो सकते । अपने गुणों के कारण सीता और

दमयन्ती हमारे लिए अभी तक पवित्र हैं, (यदि पहनती भी रही हों तो भी) अपने आभूषणों द्वारा नहीं। तुम्हारे जेवर माँगने में मेरा और भी उद्देश्य है। बहुत सी बहनों ने कहा है कि अपने जेवरों से अलग होने पर उन्हें और आनन्द मिलता है।" दूसरी सभा के पहले उन्होंने कहा, "मैंने इसे कई प्रकार सुन्दर कार्य समझा और कहा है। जब तक अपनी सम्पत्ति का पर्याप्त अंश गरीबों और असहायों को न दे दे, किसी भी स्त्री को धन रखने का अधिकार नहीं है। यह एक धार्मिक और सामाजिक अनुग्रह है, और भगवद्गीता में इसे त्याग कहा गया है। जो त्याग नहीं करता वह चोर है। गीता ने कई प्रकार के त्याग कहे हैं, और गरीबों तथा असहायों की सहायता से बढ़कर कौन सा त्याग हो सकता है? हमारे लिए तो नीच ऊँच का भेद भूल जाने से तथा सभी मनुष्यों को एकसा समझने से बढ़कर कोई त्याग नहीं है। मैंने भारत की स्त्रियों को बता देना चाहता हूँ कि शरीर को धातु और पत्थरों से लादने से सजावट नहीं होती बल्कि हृदय को पवित्र करने तथा आत्मा का सौन्दर्य बढ़ाने में।"

एक अन्य अवसर पर उन्होंने स्वा० श्री अन्नपूर्णा देवी के त्याग का उदाहरण दिया जो सेवा और त्याग की मिसाल अपनी बहनों के सामने रखने में सबसे प्रथम थीं, और बोले, "जिस दिन वे मुझ से मिलीं, उसी दिन अपने सारे जेवर उतार डाले। जिन स्त्रियों ने यह दृश्य देखा, वे आश्चर्य में पड़ गईं कि क्या हो रहा था और फिर जेवरों की वर्षा होने लगी। क्या तुम्हारा यह विचार है कि जेवरों के उतार डालने पर वे कम सुन्दर लगती थीं। मुझे तो और अधिक सुन्दर मालूम पड़ती थी। अँगरेजी में एक कहावत है "सुन्दर वह है जो सुन्दर कार्य करो।"

———

'कौमुदी का परित्याग'

अपने अनुभव पूर्व व्यस्त जीवन में मुझे कई हृदय द्रावक दृश्य देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। परन्तु यह लिखते समय मुझे हरिजनों के प्रश्न से अधिककरुण दृश्य नहीं याद आ रहा है। वादाबारू में मैंने अभी अभी स्त्रियों से जेवरात भेंट करने के लिए अपील कर चुका था। उन भेंटों को व्याख्यान के बाद मैं बेंच रहा था, कि कौमुदी जो एक १६ साल की लड़की थी धीरे से प्लेटफार्म तक आई। उसने अपना एक कंकरण उतारा और मेरा हस्ताक्षर माँगा मैं उसके लिए तैयारी ही कर रहा था कि दूसरा कंकड़ भी निकल आया। हर हाथ में एक ही एक थे। मैंने कहा, "तुम्हें दोनों देने की आवश्यकता नहीं। मैं एक ही के लिये हस्ताक्षर दे दूँगा।"

उसने अपने सोने के हार से मेरी बात का उत्तर दिया। यह कोई साधारण कार्य न था। इसे लम्बे बालों के प्लेट से अलग करना था। किन्तु मालवार लड़की जैसी होती है, कौमुदी को हजारों आदमियों और औरतों की आश्चर्य भरी सभा में ऐसा करने में कोई झूठी लज्जा नहीं आई। "परन्तु तुमने अपने माँ बाप की आज्ञा ले ली है?" मैंने पूछा। कोई उत्तर नहीं मिला। उसने अभी तक अपना त्याग पूर्ण नहीं किया था। उनके हाथ स्वतः कानों पर पहुँचे और जनता की गूँजती हुई आवाज़ के बीच में उसने अपने वेश कीमती 'इयररिंग' कानों से निकाल लिये। (जनता की हर्ष ध्वनि अब एक नहीं सकती थी।) मैंने पूछा कि क्या उसे ऐसे त्याग के लिए माँ बाप की सम्मति मिल गई थी। इसके पहले कि उस शर्मीली लड़की से मुझे कोई उत्तर मिले, मुझे किसी ने बताया कि उसके पिता उस सभा में थे और नीलाम की चीजों के बेचने में सहायता कर रहे थे और वे अच्छे कामों के लिये वैसे ही उदार थे जैसे उनकी लड़की,

मैंने कौमुदी को याद दिलाया कि इनकी जगह नये जेवर न लिवे जाएँ और उसने दृढ़तापूर्वक शर्त मान ली। उसे अपने हस्ताक्षर देते समय मैं उस पर यह नोट देने से अपने को न रोक सका "तुमने जो जेवरात उतार कर अलग कर दिये हैं, तुम्हारा त्याग उनसे कहीं सुन्दर आभूषण है।" ईश्वर करे उसका यह त्याग सच्ची हरिजन सेविका होने का उद्गार हो।

'कौमुदी का महत्वपूर्ण निर्णय'

गाँधी ने एक सोलह साल की मलाबारी लड़की, कौमुदी के त्याग के विषय में लिखा है। कालीकट में गाँधी जी के ठहरने के आखिरी दिन वह अपने पिता के साथ उनसे मिलने आई। मैं बागादारा न जाने के कारण, मैंने कौमुदी को प्रथम बार देखा। उसमें कोई दिखावा न था। वह सज्जनता पूर्वक बात करती थी और गंभीर थी। उसने इंटर मीडिएट तक की शिक्षा पाई थी और वार्तालाप ठीक से समझ लेती थी। गाँधी जी उसके त्याग के विषय में और जानना चाहते थे। वह यह जानना चाहते थे कि वह सभा में यह त्याग करने का निश्चय करके आई थी, या वहीं सभा में ही ऐसा निश्चय किया था।

उसके पिता बोले, घर ही पर उसने ऐसा निर्णय किया था और उसे हम लोगों की सम्मति मिल गई थी।"

"परन्तु क्या उसकी माँ आपको बिना जेवरों के देख कर दुःखी न होंगी।"

"वह दुःखी होंगी पर मेरा विश्वास है कि फिर जेवर पहनने को विवश न करेंगी।"

"परन्तु कुछ समय बाद जब तुम्हारा विवाह होगा तो तुम्हारे पति तुम्हें बिना जेवर के देखना शायद ही पसन्द करें। तब तुम क्या करोगी? मेरे सामने नैतिक कठिनाई है। मैंने उस लेख में लिखा है कि तुम फिर कभी जेवर न पहनोगी। अगर तुम इसके लिए प्रस्तुत नहीं हो तो मुझे लेख के इस अंश को बदलना पड़ेगा या तुम्हें अपने पति का घोर विरोध करना पड़ेगा। तुम एक मलाबारी लड़की कर सको। या तुम्हें ऐसा पति चुनना होगा तो तुम्हें बिना जेवरों के ही देखने में सन्तुष्ट रहे। स्पष्ट करो तुम क्या महसूस कर रही हो।"

कौमुदी ने गांधी जी का पूर्ण उद्देश्य समझा। उसके सामने एक बड़ा पेचीदा प्रश्न था। उसे एक महत्वपूर्ण निर्णय करना था। कुछ समय तक विचार करने के पश्चात् उसने एक ही वाक्य कहा, "मैं ऐसा पति चुनूंगी जो मुझे जेवर पहनने को विवश नहीं करेगा।"

गांधी जी की आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं। मैं अन्नपूर्णा को जानता हूँ। वह विवाहित थी फिर भी उसने सभी जेवरात छोड़ दिये थे। और उसने जीवन भर अपने व्रत का पालन किया था। अब तुम मिली हो। उसके बाद स्त्रियों से कौमुदी के त्याग की चर्चा करते वे कभी नहीं थकते थे।

कौमुदी का त्याग

हरिजन सेवक के गतांक में गांधी जी उसी मलबारी षोडशी के आभूषण संन्यास के विषय में एक सुन्दर लेख लिख चुके हैं। कालीकट से जिस दिन हम लोग चलने वाले थे उस दिन कौमुदी

अपने पिता के साथ गांधी जी का दर्शन करने आई, बड़गरा में बापू के साथ मैं नहीं था, इससे मैंने पहले ही बार कौमुदी बहन को देखा। छल कपट तो वह जानती ही नहीं थी। उसने बड़ी नम्रता से बात की वह मितभाषिणी थी। इन्टरमीजिएट तक वह अंग्रेज़ी पढ़ी है बातचीत अच्छी तरह समझ लेती है उसके त्याग के विषय में गांधी जी और अधिक जानना चाहते थे। उन्होंने उनसे पूछा—क्या तू घर से ही आभूषण त्याग का निश्चय करके चली थी। या उसी क्षण वहीं सभा में वह निर्णय कर लिया था ?"

कौमुदी के पिता ने जवाब दिया—घर से ही यह निश्चय करके आई थी। हम लोगों से इसने पूछ लिया था।"

"पर यह तो बता, तेरी मां तुझे इस प्रकार आभूषण विहीन देखकर नाराज़ तो नहीं हुई ?"

"नाराज भले हो, पर मुझे विश्वास है मेरी माता गहने पहनने के लिए मुझे कभी नहीं वाध्य करेगी।"

"लेकिन विवाह तो अब होगा ही, तब तेरे पति को शायद तेरा यह आभूषण सन्यास अच्छा न लगे। उस अवस्था में तू क्या करेगी ? मेरे सामने एक नैतिक कठिनाई है। तेरे इस आभूषण त्याग पर मैं "हरिजन के लिए एक लेख लिखा है मैने उसमें लिखा है कि अब कौमुदी कभी आभूषण न पहनेगी। अगर तू ऐसा करने को तैयार नहीं है तो उस लेख का वह अंश मैं बदल दूँगा दो बातें हैं या तो अपने भावी पति की इस इच्छा का तुझे सामना करना पड़ेगा एक मलबारी बाला के लिए यह कठिन नहीं है। या फिर तुझे अपने लिए ऐसा वर ढूँढना होगा, जो तेरे आभूषण सन्यास का विरोधी न हो। स्पष्ट बात जो हो, मुझसे कह दे।"

कौमुदी ने कुछ देर तक गांधी जी के शब्दों को सुन कर मन में गुना। बात बड़ी थी। उसे उसी क्षण निश्चय करना था थोड़ी देर सोच विचार कर उसने केवल एक वाक्य कहा—हां, मैं ऐसे ही वर को पसन्द करूँगी, जो मुझे गहने पहनने के लिए बाध्य न करेगा।"

गांधी जी की आंखें डबडबा आईं। उन्होने कहा—"अब तक अन्न पूर्णा को ही मैंने ऐसा पाया था। उसका विवाह हो चुका था, फिर भी उसने अपने त्याग के अनन्तर आभूषणों का कभी स्पर्श तक नहीं किया। अन्तकाल तक उसने अपना बचन निभाया। आज मैंने कौमुदी तुझे पाया।"उस दिन से जिस किसी महिला सभा में गांधी जी जाते हैं, वहाँ कौमुदी बहन के आभूषण सन्यास का बखान करते वह कभी थकते ही नहीं।

———

"स्त्रियां और अस्पृश्यता"

निम्नांकित—गांधी जी के हरिजन दौरे के दर्मियान कई सभाओं के व्याख्यानों से उद्धृत किये गए टुकड़े हैं:—

विलासपुर में

बहनों, मैं चाहता हूँ कि विलासपुर में हरिजनों के लिए जितना दे सको दो। तुमने अपने मान-पत्र में पूछा है कि तुम हरिजनों की सेवा किस प्रकार कर सकती हो। सबसे पहले मैं चाहता हूँ अपने दिल अस्पृश्यता को जड़ से मिटा डालो और हरिजन लड़कों और लड़कियों की वैसी ही सेवा करो जैसी अपनी की। तुम्हें चाहिए कि उन्हें अपने सम्बन्धियों भाइयो बहनों एक ही भारत माँ की सन्तानों

की भाँति स्नेह करो। मैंने त्याग और सेवा की सजीव मूर्ति की, भाँति की उपासना की है। प्रकृति ने तुम्हें जो निस्वार्थ त्याग की भावना दी है उसमें पुरुष कभी तुम्हारी समता नहीं कर सकता। स्त्री का हृदय बहुत नम्र होता है जो दुःख को देखकर पिघल जाता है। यदि तुम्हारा हृदय हरिजनों का दुःख देखकर द्रवित हो जाता है और तुम उसे, छोटे बड़े के भेद-भाव के साथ मिटा दो तो हिन्दुत्व पवित्र हो जाय और आत्मिक विकास का जोर काफी बढ़ जाय। अन्त में इसका अर्थ सारे भारत यानी ३५ करोड़ जनता का भला होगा। और सारी मनुष्य जाति के पाँचवें, हिस्से के पवित्र होने से सारी मानवता पर बहुत उत्तम प्रतिक्रिया होगी। इस आन्दोलन में ऐसे दूर ले जाने वाले परिणाम हैं। यह एक बड़ा आन्दोलन है आत्म पवित्रता का मैं आशा करता हूँ कि तुम पूर्ण रूप इसमें अपना भाग लोगी।

दिल्ली में

ईश्वर जो सभी प्राणियों का कर्ता है, सभी प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है। यदि उसे नीच ऊँच में कोई भेद भाव होता तो उनमें कोई बाह्य अन्तर होता उदाहरण के लिए जैसे हाथी और चीटी में होता। परन्तु उसने सभी मनुष्यों को एकता रूप और एकसी ही स्वाभाविक आवश्यकतायें दी हैं। यदि तुम हरिजनों को स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवा के कारण अछूत समझते हो तो कौन माँ अपने बच्चे के लिए ऐसा नहीं करती? हरिजनों को, जो समाज के सबसे उपयोगी सेवक, अछूत और जाति से वहिष्कृत समझना अन्याय की हद है। मैं हिन्दू बहनों के भीतर इस पाप के विषय में चेतना जाग्रत करने के लिए भ्रमण कर रहा हूँ। हम किसी भी मनुष्य को अपने से छोटा समझें, यह तो कभी अच्छा काम नहीं हो सकता। हम सब उस

ईश्वर के उपासक हैं जिसे विभिन्न नामों से हम पूजते हैं। अतएव हम अपनी एकता का अनुभव करें और अछूत के साथ साथ मनुष्यों के बीच ऊँच नीच का भेद भाव भी छोड़ दें।

मद्रास में

यहाँ मैं तुम से एक माँग करने आया हूँ। यह बिलकुल भूल जाओ कि कुछ लोग छोटे और कुछ बड़े हैं। यह भी भूल जाओ कि कुछ स्पृश्य और कुछ अस्पृश्य हैं। मैं जानता हूँ कि मेरी ही भाँति तुम सब ईश्वर में विश्वास करते हो और पुरुष-पुरुष और स्त्री स्त्री के बीच में भेदभाव करने तक की क्रूरता भगवान में नहीं हो सकती? यह अछूत हिन्दुत्व पर सबसे बड़ा धब्बा है और मैं यह कहने से नहीं हिचकता कि यदि यह रह गया तो हिन्दुत्व समाप्त हो जायगा। यदि कोई ईश्वर के लिए मनुष्य की भाषा का उपयोग करे, तो ईश्वर हमारे साथ बहुत शान्त रहा है। परन्तु मुझे यह मानने में हिचक नहीं कि हिन्दू भारत में लोग जो यह अत्याचार करते रहे हैं, उसे देखकर उसका धैर्य भी टूट जायगा।

बंगलौर में

जब हम किसी मनुष्य को अपने से नीचा समझें, तो हमारे भीतर बहुत बड़ी बुराई है। अगर यह बुराई रह गई तो हमें ही खा डालेगी। एक हिन्दू, तपस्या करने को भी नहीं रह जायगा, और यह हमारे लिए उचित ही होगा। मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक यही चेतावनी देने के लिये दौरा कर रहा हूँ। इसलिए यदि तुम हरिजनों को सगा भाई बहन समझने लगे तो बहुत बड़ा कार्य होगा।

कुछ हरिजन बस्तियाँ देखने के बाद, जो मैसूर की अपेक्षा वहीं बुरी हालत में थी, उन्होंने दूसरी सभा में कहा :—

मेरा इस कहावत में विश्वास है कि हमें दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसा हम उनसे अपने प्रति आशा करते हैं। जिन बस्तियों को हमने अभी देखा है वे, मनुष्यों के लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं है। रहने का एक ऐसा भी धरातल है जहाँ मनुष्यता को धक्का पहुँचाये बिना हम आ सकते। ये बस्तियाँ उससे भी नीची कोटि की है। मैं चाहता हूँ कि उस स्थान पर एक सुन्दर स्थान कहा जाता है, यह धब्बा सब से पहले मिटाया जाय। मैंने सुना है कि इन भाइयों और बहनो को अच्छी रहने की जगह देने का प्रबन्ध पहले से हो रहा है। परन्तु तुम मुझ से सहमत होगे कि ऐसा करने में समय का बहुत बड़ा हाथ है। लोगों को ऐसा कहने का अवसर न दो कि ये बस्तियाँ (जो तुम बनवा रहे हो) देर से बनी।

'स्त्रियों से दो बातें'

बनारस की स्त्री-सभा में जो गांधी जी के हरिजन दौरे का आखिरी व्याख्यान था, उन्होंने अस्पृश्यता के विषय में अपनी स्थिति इस प्रकार प्रकट की :--

"यह बड़ी दुःखद बात है कि आज हमारे लिए धर्म का अर्थ यही है कि हम किसी को ऊँचा नीचा समझें और उनके खाने पीने पर रोक थाम करें। मैं कहना चाहता हूँ कि इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती। जन्म और कुछ रीति रिवाज किसी को ऊँचा या नीचा नहीं बनाते बल्कि चरित्र ही के बल से कोई ऊंचा या नीचा हो सकता है। ईश्वर ने किसी को ऊँच नीच के निशान के साथ नहीं पैदा किया है, और कोई भी धार्मिक ग्रन्थ जो जन्म से किसी मनुष्य

की ऊँचाई निचाई का निर्णय करता हो, उसमें हम विश्वास नहीं कर सकते। यह तो ईश्वर और सत्य का जो ईश्वर है, अविश्वास है। ईश्वर जो सत्य, न्याय का अवतार है, ऐसे किसी भी धर्म या नियम को नहीं स्वीकार कर सकता जो हमारी पाँचवीं आबादी को अछूत माने। अतएव मैं चाहता हूँ कि इस पैशाचिक भावना को छोड़ दो। वैसे गन्दे काम करने की अस्पृश्यता और वह तो रहेगी ही। यह हम सभी के लिये लागू है। लेकिन जैसे ही हम गन्दगी से अपनी सफाई कर डालें, वैसे ही हम अस्पृश्यता नही रह जाते। परन्तु कोई कर्म या व्यवहार किसी मनुष्य को सदा के लिये आस्पृश्य नहीं कर सकता।

हम में से सभी कुछ कम बेश पापी हैं। और सभी धार्मिक, पुस्तकें (गीता, भागवत, तुलसीरामायण इत्यादि। कहती है कि जो भी उस भगवान की शरण में जाता है, उसका नाम लेता है, पाप से मुक्ति पा जाता है। यह नियम सभी के लिये है।

इस प्रश्न के लिए एक और परख मैं बता रहा हूँ। हर मनुष्य या उससे छोटी जाति में कुछ विभाजक चिन्ह हैं जिनसे मनुष्य को पशु से, कुत्ते को गाय से, भिन्न माना जाता है। क्या अछूतों में भी कोई इस प्रकार का चिन्ह है कि वे अछूत समझे जाँय? वे उतने ही मानवी है जितने हम में से कोई और मनुष्यों से निम्न कोटि के सभी प्राणियों को हम अछूत नहीं मानते फिर यह पैशाचिक अन्याय कहाँ से और कैसे आता है! यह धर्म नहीं है, बल्कि घोर अधर्म है। मैं चाहता हूँ कि तुम यह पाप छोड़ दो (यदि तुम्हारे भीतर यह हो)।

इस सदियों के इस पाप को मिटाने का एक ही मार्ग है कि तुम हरिजनों की बस्तियों में जाओ, उनके बच्चों को अपने बच्चों की तरह अपनी छाती से लगाओ उनकी भलाई में दिलचस्पी लो, यह मालूम करो कि उन्हें खाने भर को भोजन पीने को स्वच्छ पानी मिलता है या नहीं उन्हें रोशनी और हवा जिसे तुम अपना अधिकार समझ कर

उपयोग करते हो, उन्हें भी मिलता है या नहीं। दूसरा तरीका है, कातने का काम शुरू करो और खादी की प्रतिज्ञा लो, जिससे इन लाखों दबाये गए लोगों को सहायता मिलती है। कातने के काम से तुम में और उनमें कुछ समता आयेगी और जो खादी का हर गज जो तुम पहनोगे, उससे इन हरिजनों और ग़रीबों को कुछ पैसा मिलेगा। आखिरी बात यह है कि हरिजन-फण्ड को चन्दा दो, जिसका उद्देश्य इन हरिजनों की भलाई की है।

पर्दे को फाड़ फेंको

जब कभी मैं बंगाल, बिहार और संयुक्त प्रान्त में गया हूँ, मैंने वहाँ पर्दे की प्रथा का और जगहों से अधिक कड़ा पालन देखा है। मगर जब कि मैंने दरभंगे में, रात के समय, शोर गुल से दूर, और अदम्य भीड़ों से अलग, एक सभा में भाषण किया तो मेरे सामने पुरुष थे और मेरे पीछे पर्दे की आड़ में औरतें थीं। जिनका पता मुझे तब तक नहीं चला जब तक मुझे बतलाया नहीं गया। यह समारोह था एक अनाथालय को खोलने के सम्बन्ध में मगर मुझे पर्दे के भीतर की महिलाओं से भाषण करने को कहा गया। उन पर्दे को देख कर जिनके पीछे मेरी श्रोता मंडली थी, जिनकी संख्या का मुझे कुछ पता न थ, मुझे शोक हुआ। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ और मेरी जिल्लत हुई। मैंने पुरुषों की ओर से पर्दे को बचाये रख कर हिन्दुस्तान की स्त्रियों पर किये जाते हुए अत्याचार पर विचार किया। चाहे किसी जमाने में इसका कुछ भी मतलब न रहा हो मगर अब तो यह पाशविक प्रथा बिल्कुल बेकार है इससे देश को असंख्य हानि

हो रही है। आखोरी १० वर्षों में हमने जो कुछ शिक्षा पाई है। हम पर उसका कुछ भी असर न पड़ा सा मालूम होता है क्योंकि मैं देखता हूँ कि शिक्षित परिवारों में भी पर्दा बचा हुआ है और इसलिए नहीं कि वे शिक्षित पुरुष इसमें विश्वास रखते हैं किन्तु वे इसका। मर्दानगी से विरोध न करेंगे और इसे एक बारगी ही मार न भगावेंगे। स्त्रियों की सैकड़ों सभाओं में हजारों स्त्रियों से मुझे बोलने का सुअवसर रसमिला है मगर वहाँ के शोर गुल के कारण सभा में आई हुई स्त्रियों से बोल कर कुछ प्रभाव डालना असम्भव हो जाता है। जब तक वे अपने आँगन और घर के पिंजड़े में बन्द हैं। उनसे और किसी अच्छी बात की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए जब वे अपने को एक बड़े कमरे में जमा पाती है उनसे आशा की जाती है कि वे व्याख्याता का भाषण सुनें ! जब शन्ति छा जाती है तब भी रोजमर्रे की साधारण बातों भी उनकी रुचि पैदा करना कठिन मालूम पड़ता है क्योंकि उन्हें कभी स्वतंत्रता की ताजा हवा का साँस लेने तो दिया नहीं गया मैं जानता हूँ कि यह चित्र कुछ बढ़ा कर खींचा गया है। इन हजारों बहनों की जिनसे मुझे बोलने का अवसर दिया जाता है बहुत ऊँची सुसंस्कृति को मैं ख़ूब जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि पुरुषों की स्थिति तक वे चढ़ आ सकती हैं। मुझे यह भी मालूम है कि उन्हें बाहर आने का भी अवसर मिलता है मगर यह पुरुषों के लिए तरीफ़ की बात नहीं है। सवाल यह है कि वे और बाहर क्यों नहीं आयी है ? हमारी स्त्रियों को भी वह स्वतंत्रता क्यों नहीं प्राप्त है जो पुरुष भोगते हैं।

पवित्रता कुछ पर्दे की आड़ में रखने से ही नहीं पनपती बाहर से यह लादी नहीं जा सकती। पर्दे की दीवार से उनकी रक्षा नहीं की जा सकती उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा। और

अगर उसका कुछ मूल्य होना है तो वह सभी प्रकार के बिना बुलाये आकर्षणों का सामना करने योग्य होनी चाहिए वह तो सीता की पवित्रता सी उद्धत होगी। अगर वह पुरुषों की नज़र को सहन न कर सके तो उसे बहुत ही साधारण चीज़ कहना होगा। मर्दों को अगर मर्द होना है तो उन्हें इस लायक बनना होगा कि अपनी औरतों का वे वैसा ही विश्वास कर सकें जैसा कि औरतों को उनका करना पड़ता है हमारे एक अंग में पूरा या अधूरा ही सही मगर लकवा मारे हुए न होना चाहिए। राम का कहीं ठिकाना न लगे अगर सीता भी उन्हीं जैसी स्वतंत्र और स्वाधीन नहीं होती मगर स्वतंत्रता के लिहाज़ से द्रौपदी का उदाहरण शायद ज्यादे माकूल होगा। सीता कोमलता का अवतार थी वह नाजुक फूल थी द्रौपद थी विशाल वट वृक्ष अपनी अदम्य रक्षा के आगे भीम को उसने झुका दिया उसके लिए भीम भयंकर थे मगर द्रौपदी के सामने वह भी शान्त गाय बन जाते पाण्डाओं में से किसी की भी रक्षा की उसे ज़रुरत न थी। हिन्दुस्तान के स्त्रीत्व के विकास का आज हम विरोध करके हिन्दुस्तान के पुरुषत्व के विकास को रोक रहे हैं। अपनी स्त्रियों और अछूत के प्रति हम जो कमाई करते हैं वही हज़ार गुना बढ़कर हमारे आगे आती है। हमारी निर्लता, अनिश्चयता, सकीर्णता और बेवस का यह एक कारण है। इसलिए हम एक बार महान प्रयत्न करके इस पर्दे को फाड़ फेकें।

'पर्दे की कुप्रथा'

बिहार के बहुत से प्रभाव शाली पुरुषों और लगभग उतनी ही स्त्रियों द्वारा हस्ताक्षर की गई एक अपील, पर्दे को बिलकुल समाप्त

कर देने के लिए अभी अभी निकाली गई है। पचास से अधिक स्त्रियों ने उस पर हस्ताक्षर किए है, यही प्रकट करता हैं कि यदि ज़ोरदार काम किया गया तो बिहार में पर्दा भूतकाल की चीज़ हो जायगी। यह भी एक ध्यान देने योग्य बातें हैं कि जिन स्त्रियों ने उस पर हस्ताक्षर किए हैं वे पश्चिमी रोशनी से प्रभावित नहीं हैं बल्कि कट्टर हिन्दू ! यह निश्चित रूप से तय करता है :—

"हम लोग चाहती हैं कि इस प्रान्त में स्त्रियाँ घूमने फिरने और सामाजिक जाति के जीवन में अपना उचित काम लेने के लिए उतनी ही स्वतन्त्रता हो जितनी कर्नाटक महाराष्ट्र और मद्रास में भारतीय बहनें बिना योरोपियन रङ्ग में रंगें करती हैं, क्योंकि हमारा विश्वास है कि आरोपित परतन्त्रता को छोड़कर पाश्चात्य ढङ्ग का लाना जलती कढ़ाई में से निकल कर आग में कूदना होगा और साथ ही पर्दा को अवश्य ही समाप्त करना है बशर्ते कि इन स्त्रियों को भारतीय आदर्शों के ढङ्ग से विकसित होना है। अगर हम चाहते हैं कि वे जीवन को गति और सौंदर्य तथा जीवन दें और इसका नैतिक स्वर ऊँचा करें अपने पति की सहायक संगिनी बनें घर की सुन्दर प्रबन्धक और जाति की उपयोगी सदस्य हों तो जिस रूप में हैं अवश्य ही मिट जाना चाहिए। असल में जब तक घूँघट न हटाया जायगा, कोई भी ख़ास क़दम उनकी भलाई के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता। और हमारा विश्वास है कि यदि एक बार हमारी आधी आबादी को जो कैद है, आज़ाद कर दिया गया तो ऐसी शक्ति उत्पन्न होगी जो, ठीक पथप्रदर्शन करने पर हमारे प्रान्त के लिए अपरिमित उपयोगी होगी।"

मैं जानता हूँ बिहार में पर्दे ने कितनी हानि की है। और यह आन्दोलन ठीक ही समय पर प्रारम्भ किया गया।

इस आन्दोलन का प्रारम्भ बड़ा अजीब हुआ है। बाबू रमानन्द,

मिश्र जो एक सादी के काम करने वाले हैं अपनी स्त्री को पर्दे से बचाना चाहते थे। वैसे चूँकि लोग लड़की को आश्रम (साबरमती) आने नहीं दे रहे थे, उन्होंने आश्रम से दो लड़कियाँ अपनी स्त्री की संगिनी के रूप में ली उनमें से एक राधा बहन. मगन लाल गाँधी की लड़की उसकी शिक्षिका होने वाली थी और उसके साथ स्वर्गीय दल बहादुर गिरि की लड़की दुर्गादेवी थी। विवाहित लड़की के माता पिता यह नहीं चाहते थे कि श्रीमती मिश्रा को पर्दे से अलग किया जाय। उन लड़कियों ने सभी कठिनाइयाँ झेलीं। इसी बीच मंगन लाल गाँधी अपनी लड़की को देखने तथा उससे, चाहे वह कितना .ही हठ करे, वहाँ से छिपा कर हटा ले आओ। वे उसी गाँव में जहाँ राधा बहन काम कर रही थी, बीमार हुए और पटना में उनका देहान्त हो गया। अतएव बिहार के लोगों ने पर्दे के विरुद्ध लड़ने के लिए (यह उसके सम्मान की रक्षा थी) तय्यार हो गए। राधाबहन अपना सन्देश आश्रम लाईं, उनके वहाँ आने से खलबली मच गई और उनके पति विवश हो गए कि और भी जोश के साथ इस युद्ध में भाग लें, वैसे तो वे पहले से ही तय्यार थे। इस प्रकार यह आन्दोलन व्यक्तिगत आधार पर स्थित होने के कारण बहुत आशापूर्ण दिखाई पड़ता है। इसके आगे बिहार का वह सैनिक, राजेन्द्र बाबू हैं, जो कई संग्रामों में नेता रह चुके हैं। मुझे एक भी ऐसा आन्दोलन याद नहीं जिसका उन्होंने नेतृत्व किया हो और वह बुझ गया हो।

अपील में दूसरी आठ जुलाई तारीख निश्चित की है जब इस प्रथा के प्रभावशाली संग्राम छिड़ेगा जिसके कारण बिहार की आधी आबादी पर सामाजिक सेवा में योग देने के लिए प्रतिबन्ध है और जिसके कारण उन्हें बहुत सी स्वतन्त्रता जैसे प्रकाश और वायु तक की नहीं मिलती। जितनी ही जल्द यह महसूस किया जायगा

कि ये सामाजिक प्रथायें हमारे स्वराज की ओर के विकास को रोके हैं, अपने उद्देश्य की ओर हमारी उतनी ही उन्नति होगी, और स्वराज मिलने तक के लिए समाज-सुधार रोक रखने का अर्थ 'स्वराज' का अर्थ न जानना है। यदि हम अपनी आधी आबादी को इसी प्रकार शक्तिहीन बनायें रहें, तो किसी भी जाति से अपनी रक्षा, या उससे प्रतियोगिता नहीं कर सकते।

इस लिए बिहार के नेताओं को पर्दे के विरुद्ध संग्राम में भाग लेने के लिए बधाई देता हूँ। (खास तौर से सुधारों की सफलता वैसे तो सभी सुधारों की काम करने वालों की पवित्रता पर निर्भर है। बहुत कुछ तो उन स्त्रियों पर निर्भर होगा जिन्होंने अपील पर हस्ताक्षर किए हैं। यदि वे पर्दे को हटा देने पर भी भारतीय शील को सुरक्षित रखेंगी और सभी कठिनाइयों का साहस पूर्वक मुकाबला करेंगी, तो सफलता बहुत शीघ्र मिलेगी। यदि पर्दे का आन्दोलन ठीक से चलाया जाय, तो बिहार की स्त्रियों पुरुषों को दोनों प्रकार की उचित शिक्षा भी मिलेगी।

'बिहार में पर्दा'

एक मित्र ने अपने पत्र में लिखा है कि पर्दे के विरोध में जो प्रदर्शन बिहार के बड़े बड़े केन्द्रों में इसी माह की आठवीं तारीख को किया गया था, उसका आशातीत परिणाम हुआ। पटना की 'सर्चलाइट की रिपोर्ट इस प्रकार है :—

"इसी ८ जुलाई इतवार को राधिका सिनहा इन्स्टीट्यूट में स्त्रियों और पुरुषों का बड़ा सुन्दर सम्मिलित दृश्य देखने में आया। घनघोर वर्षा होने पर भी जो सभा के ठीक समय पर बन्द हो गई, भीड़ आशा से अधिक थी। उस बड़े हाल का आधा स्त्रियों से

भरा था जिनमें से ¾ ऐसी थीं, जो एक दिन पहले नहीं, एक घण्टे पहले पर्दे में थीं।"

वहाँ निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया :—

"हम पटना के पुरुष और स्त्री, जो यहाँ एकत्र हैं, वे पर्दा की घातक कुप्रथा को बहिष्कृत कर दिये हैं जिससे देश को विशेष कर स्त्रियों को अपरिमित हानि हुई है और हो रही है। और अन्य प्रान्तों की स्त्रियों से जो सुविधे में हैं हमारी अपील है कि वे शीघ्राति-शीघ्र इसे समाप्त कर दें, और इस तरह अपना स्वास्थ्य और शिक्षा विकसित करें।

पर्दे के विरुद्ध जोरदार प्रचार करने के लिए एक अस्थायी कमेटी बनाई गई थी। स्त्री शिक्षा-प्रसार के लिए भी एक कमेटी बनी थी। एक तीसरे प्रस्ताव द्वारा हर नगर और गाँव में महिला समितियाँ बनाई गई थीं। और एक चौथे प्रस्ताव में पास किया गया था कि विभिन्न स्थानों पर महिला स्कूल खुले जहाँ कुछ समय स्त्रियाँ ठहरें और उन्हें अच्छी पत्नी-योग्य मातायें, और देश की उपयोग सेविकायें बनने की शिक्षा दी जाय। उसी स्थान पर ५,०००) देने के वादे हो गए, और मैं देखता हूँ स्त्रियों में से बहुत-सी ऐसी चन्दा देने वाली थी, जिन्होंने २५०) और २५) के बीच में कुछ धन भी दिया था। इस पत्र ने बिहार के कई स्थानों की ऐसी सभाओं की रिपोर्ट छापी हैं, यदि यह आन्दोलन सुसङ्गठित है और दिलचस्पी से किया गया तो पर्दा भूत की चीज हो जायगी। यह कोई अँगरेजी साँचे में ढला आन्दोलन नहीं। यह ऐसे कट्टर लोगों का हार्दिक आन्दोलन है जो स्वभावतः कट्टर हैं फिर भी हिन्दू समाज की बुराइयों को जानते हैं। बाबू ब्रज किशोर प्रसाद और बाबू राजेन्द्र प्रसाद जो दूर लन्दन से ध्यान पूर्वक इसे देख रहे हैं, और इसका समर्थन कर रहे हैं, भारतीय मनुष्यता के पाश्चात्य

नमूने नहीं। वे कट्टर हिन्दू और भारतीय सभ्यता और परिपाटी के मानने वाले हैं। वे पश्चिम के अन्धे अनुकरण करने वाले नहीं फिर भी उसमें जो अच्छाई है, उसे लेने में संकोच नहीं करते। इसलिये कायर और स्थिर कदम व्यक्तियों को इस बात से डरने की ज़रूरत नहीं कि यह आन्दोलन उनकी हिन्दुस्तानी संस्कृति विशेषकर स्त्रियों के सौंदर्य और शील के लिए किसी प्रकार हानि कारक सिद्ध होगा !

बर्मा की स्त्रियों से

गांधी जी ने मौलमीन की एक सभा में बर्मा के लोगों को सुझाया कि वे यदि स्वावलम्बी तथा सुखी होना चाहें, तो चरखा चलाएँ और औरतों से उन्हों ने कहाः—इस समय तुम जैसी स्वतत्रता से रह रही हो वैसी कहीं की भी स्त्रियाँ नहीं रह रही हैं। अपनी कुशलता और व्यवसाय के लिए तुम प्रसिद्ध हो। तुम्हारे भीतर संगठन की बड़ी शक्ति है और यदि तुम अपना विदेशी बहुमूल्य वस्तुओं की रुचि में सुधार करलो और सादगी को अपना लो जैसा करने के लिए मैंने अभी कहा है तो तुम्हारे जीवन में क्रान्ति हो जाय ।

धूम्रपान के भयानक रोग के विषय में कहने का मुझमें साहस ही नहीं। परन्तु मैं समझता हूँ बर्मा में मुझे कोई स्त्री या पुरुष इससे बचा न मिलेगा। हम लोग जो भारतवर्ष से आते हैं सुन्दर बर्मा की सुन्दर स्त्रियों को चरट और सिगरेट से अपने मुँह खराब करते देख कर दुःख पूर्ण आश्चर्य करते हैं। किन्तु मैं जानता हूँ कि ऐसी बुराई के विषय में कुछ कहना बहुत ही कठिन है जो सारी दुनिया में छाई हुई है। अगर तुमने टालसटाय का नाम सुना है, तो मैं उन्हीं का शब्द दुहराता हूँ, जो एक बड़े धूम्रशायी थे,

और उन्होंने अनुभव किया कि तम्बाकू से लोगों का दिमाग भद्दा हो जाता है और दूसरी शक्तियाँ भी क्षीण हो जाती हैं। सचमुच उन्हों ने उदाहरण के साथ सिद्ध किया है कि कुछ बड़े-बड़े जुर्म धूम्रपान के प्रभाव में पड़ कर किये गये हैं और अपनी एक कहानी में एक मनुष्य को उन्हों ने ख़ून करते हुए दिखाया है और ऐसा मद्यपान करके उसने नहीं किया, बल्कि धूम्रपान करके जो कि धूम्रपान के कुछ बड़े बुद्धिशाली लोग हैं इसके विरोध में भी एक शक्ति लड़ रही है और उसमें पश्चिम के बहुत उच्च कोटि के नैतिक व्यक्ति हैं।

१ पुरुष और स्त्रियाँ

(५) प्रश्न—मैं जानना चाहता हूँ कि क्या आप पुरुष या स्त्री सत्याग्रहियों का स्वच्छन्दता पूर्वक मिलना जुलना और उनका एक साथ काम करना पसन्द करेंगे अथवा अलग इकाइयों के रूप में उनका सङ्गठन करना और हरेक के कार्य क्षेत्र की स्पष्ट सीमा निर्धारित कर देना अच्छा होगा? मेरा अनुभव तो यह है कि पहले ढङ्ग से निश्चित रूप से पर्याप्त परिणाम में अनुशासन हीनता तथा भ्रष्टता पैदा होगी, और ऐसा हुआ भी है। अगर आप मुझसे सहमत हैं, तो इस सम्भावनीय बुराई का मुकाबला करने के लिए आप कौन-सा नियम सुझायेंगे?

उत्तर—मैं तो अलग इकाइयाँ रखना ही पसन्द करूँगा। औरतों के पास औरतों के बीच करने के लिए काफी से ज्यादा काम है। हमारा स्त्री वर्ग बुरी तरह अपेक्षित है, और उनके बीच काम करने के लिए विशुद्ध सच्चाई वाली सैकड़ों बुद्धिमती स्त्री कार्य कर्त्रियों की जरूरत है। सिद्धान्त की दृष्टि से भी मैं स्त्री पुरुष दोनों को अलग अलग अपना काम करने में विश्वास रखता हूँ। लेकिन इसके

लिए कोई कठोर नियम नहीं बन सकता। दोनों के बीच में सम्बन्ध पर विवेक का नियंत्रण होना चाहिए दोनों के बीच कोई अन्तराय न होना चाहिए। उनका परस्पर का व्यवहार प्राकृतिक और स्वेच्छा पूर्ण होना चाहिए।

२ स्त्री पुरुष से श्रेष्ट है

प्रश्न—क्या अविरोध अपने से शक्ति शाली व्यक्ति के सम्मुख हार मानना नहीं है ?

उत्तर—निष्कृष्य प्रतिरोध दुर्बलों के लिए है, परन्तु जिस प्रकार के प्रतिरोध के लिए मुझे बिलकुल नया नाम निकालना पड़ा था, वह शक्तिशालियों के लिए है। इसका उद्देश्य समझाने के लिए मुझे नया नाम निकालना पड़ा था। परन्तु इसका अनुपम सौंदर्य इसी में है कि गोकि यह शक्तिशाली व्यक्ति के लिए है, फिर भी शारीरिक रूप से दुर्बल अवस्था के कारण शक्ति हीन यहाँ तक कि बच्चों के भी प्रयोग के लिए है, बशर्ते कि उसका हृदय शक्ति शाली हो। और चूँकि सत्याग्रह में प्रतिरोध स्वयं कष्ट सहन करके किया जाता है, स्त्रियों के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है। गतवर्ष यह देखा गया कि स्त्रियाँ कई जगहों पर सहन शक्ति में अपने भाइयों से कही अधिक सफल रही। और दोनों ने उस आन्दोलन में बड़ा उत्तम कार्य किया, क्योंकि स्वयं सहन करने की भावना औरों में भी फैली और लोगों ने आत्म निराकरण के आश्चय जनक कार्य किए। मान लीजिए कि योरोप की स्त्री और बच्चे मानव के प्रति प्रेम की भावना से भर जाँय तो वे पुरुषों को तूफान की तरह अपने से समेट लेंगे और बहुत थोड़े समय में सैनिक वाद को नष्ट कर देंगी। इसका रहस्य यह है कि स्त्रियाँ

बच्चे और दूसरे लोगों में एक आत्मा समान शक्ति के साथ वास करती है। प्रश्न केवल सत्य की असीम शक्ति को बाहर लाने का है।

३ स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता

प्रश्न—जायदाद पर विवाहित स्त्रियों के अधिकार सम्बन्धी कानूनों के सुधार का चन्द लोग इस बिना पर विरोध करते हैं कि स्त्रियों की आर्थिक स्वतन्त्रता से उनमें दुराचार फैलेगा और गृहस्त जीवन टूट कर बिखर जायेगा। इस सवाल पर आप का क्या रुख है?

उत्तर—मैं इस सवाल का जवाब एक दूसरा सवाल पूछ कर दूँगा। क्या पुरुष की स्वतन्त्रता और मिल्कियत पर उनमें प्रभुत्व ने पुरुषों में दुराचार का प्रचार नहीं किया है? अगर तुम इसका जवाब 'हाँ' में देते हो, तो फिर औरतों के साथ वही घटित होने दो, और जब औरतों को भी मिल्कियत के अधिकार तथा बातों मे भी उनको पुरुषों जैसे हक मिल जायेंगे, तब यह पता चलेगा कि ऐसे अधिकारी के उपभोग पर उनके पाप-पुण्य की जिम्मेदारी नहीं है। जो सदाचरण किसी पुरुष या स्त्री की निस्सहायता पर निर्भर है उनमें प्रशंसा के योग्य कोई बात नहीं है। सदाचरण तो हमारे हृदयों की शुद्धता निर्मलता में बद्धमूल होता है।

४ समाज में स्त्रियों की स्थिति

प्रश्न—भारतीय स्त्रियों की राजनैतिक तथा नागरिक जागृति के कारण उनके अब तक के घरेलू कर्तव्यों तथा उनके सामाजिक कर्तव्यों के बीच संघर्ष उपस्थित हो गया है। अगर कोई स्त्री जनता की सेवा में व्यस्थ रहे, तो सम्भव है कि वह अपने बच्चों की ओर

तथा घरेलू धन्धों की ओर ध्यान न दे सके। यह गुत्थी कैसे सुलझाई जाय ?

उत्तर—अक्सर स्त्रियों का बहुत-सा समय, आवश्यक घरेलू कार्यों में नहीं बल्कि अपने अपने मालिक तथा अपने पति के अहम्पूर्ण सुख की तृप्ति करने में ही बीतता है। मेरे विचारसे स्त्रियों की यह गुलामी हमारी असभ्यता का चिन्ह है। मेरी राय में भोजनालय की भी गुलामी विशेषतः हमारी असभ्यता का अवशेष है। यही समय है कि हमारा स्त्री-समाज इस बंधन से मुक्त हो जाय। स्त्री का सारा समय घरेलू कार्यों में नहीं लगना चाहिए।

५ एक विधवा की कठिनाई

प्रश्न—मै एक बङ्गाली विधवा हूँ। अपने रंडापे दिन से—इन २४ सालों में—अपने भोजन के बारे में कठोर नियमो का पालन करने का मुझे अभ्यास है अपने ही कुटुम्ब के बीच थी मुझ विधवा का एक अलग चौका है और वर्तन भी मेरे अलग अलग हैं। मैं आपके सत्य वा अहिंसा के आदर्श में विश्वास रखता हूँ। १९३० से मैं आदतन खादी पहनती हूं। और नियमित रूप से कातती हूँ। ढाका के एक हरिजन गाँव में हमारे महिला समाज ने एक हरिजन स्कूल खोल रखा है। मैं वहाँ जाती और हरिजनों में शरीक होती हूँ। मैं अपनी मुसलमान बहनों से भी खुले तौर पर मिलती जुलती हूँ। जिनके लिए मेरे हृदय में शुभेच्छा है; लेकिन मैं हरिजनों या दूसरे अ-ब्राह्मण जातियो के साथ खा पी नहीं सकती, क्या मेरी जैसी कट्टर विधवायें सत्याग्रहियों, निस्क्रिय या सक्रिय में नही भरती हो सकतीं ?

———

हमारे प्रकाशन

(१) **विद्यार्थियों से**–[ले० महात्मा गान्धी] विद्यार्थी जीवन का पथ-प्रदर्शन करने वाला सर्वश्रेष्ट ग्रन्थ। इसका लगभग दस हजार प्रतियाँ अंग्रेजी में बिक चुकी हैं। सजिल्द एवम् सचित्र का मूल्य ४) मात्र।

(२) **महिलाओं से**—[ले० महात्मा गान्धी] कुमारियों और विवाहिता स्त्रियों के जीवन को सफल बनाने वाली दूसरी गीता तुल्य उपयोगी पुस्तक। अपनी बहू-बेटियों को अवश्य उपहार में दीजिये। सजिल्द एवम् सचित्र का मूल्य ४) मात्र।

(३) **गीतांजलि**—[रविन्द्रनाथ टैगोर] गीतांजलि का प्रमाणिक सुबोध सुलभ संस्करण। जिसपर लेखकों को एक लाख बीस हजार का नोबेल पुरस्कार मिला था। सजिल्द सचित्र का मूल्य १॥) मात्र।

(४) **त्याग का मूल्य**—[रविन्द्रनाथ टैगोर] उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचन्द्र जी के शब्दों में यह टैगोर का सर्वश्रेष्ट उपन्यास है। पृष्ठ ४०० सजिल्द सचित्र मूल्य ५) मात्र।

(५) **महारष्ट्र-प्रभात**—[आपटे] हिन्दुत्व भावनाओं से सराबोर, प्रातः स्मरणीय पूज्य शिवाजी महाराज की वीरता का सजीव चित्रण। प्रत्येक हिन्दू को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। सजिल्द सचित्र मूल्य ३॥) मात्र।